आपस्तम्बधर्मसूत्र का समीक्षात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए
प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

अनुसन्धाता
हर्षवर्द्धन मिश्र

निर्देशक
डा० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग, इ० वि० वि०
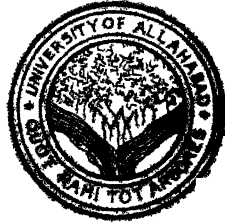
संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
१९९२

किंञ्चितप्रास्ताविकम्

विश्व वाङ्मय में संस्कृत साहित्य की प्राचीनता एवं विशालता कभी भी विवादास्पद नही रही है । विशाल सस्कृत वाङ्मय के कई पक्ष ऐसे भी है जो विव्दज्जनों के मध्य में चर्चा के विषय तो सर्वदा रहे हैं किन्तु जनसामान्य में लोकप्रिय नहीं हो सके । वैदिक साहित्य में परिणत काल में सम्बन्धित सूत्र साहित्य भी उन्हीं पक्षों में से एक है । सूत्रसाहित्य में भी धर्मसूत्रों का अपना विशिष्ट स्थान है । इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कला स्नातकोत्तरोत्तरार्ध्द ३संस्कृत३ मे दर्शन वर्ग का विद्यार्थी होने के कारण मुझे पूर्वमीमांसा पढ्ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ महर्षि जैमिनि के " अथातो धर्मजिज्ञासा " सूत्र के पढ्ने के अनन्तर ही मेरे मन में धर्म के स्वरूप की जिज्ञासा उत्पन्न हुई ।

धर्मसूत्र मनुष्य की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक स्थिति के आचरण का प्रतिपादन करता है, व्यक्ति के सामाजिक,पारिवारिक, वैयक्तिक और पारिलौकिक सभी पक्षों पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म रुप से विचार करता है । धर्मसूत्र की दृष्टि सुख- दु:ख सम्पत्ति तथा विपत्ति पर भी है । यह व्यक्ति के लिए कर्त्तव्यों की दिशा देता है, जीवन के लक्ष्यों को प्रदर्शित करता तथा मनुष्य की शक्तियों और उनके अनुसार दायित्ववोध का महनीय कार्य करता है ।

गुरुजनों की प्रेरणा से जब मेरी प्रवृत्ति शोध कार्य में हुई तो मुझे "आपस्तम्ब धर्मसूत्र का समीक्षात्मक अध्ययन" विषय पर शोध कार्य सम्पादित करने का अवसर मिला ।

प्रकृत शोध प्रबध में मेरा लक्ष्य यही है कि धर्मशास्त्रीय विचारों के व्यापक बोध में कुछ योगदान कर सकूं । प्राचीन मान्यताओं का अध्ययन कर उनकी युगसापेक्ष व्याख्या करने से ही हमारी अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान हो सकता है । अतीत के ऐतिहासिक अध्ययन का यह अर्थ कदापि नही है कि परिवर्तन के पहिए को पीछे घुमाने का निष्फल प्रयास किया जाय । अपितु परम्परागत धर्मशास्त्रीय सिध्दान्तों की उपयोगिता उनके उत्तम पहलू एवं नैतिकता के जीवनदर्शन को समझने एवं व्यवहार में अनूदित करने में ही निहित है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सूत्रधार पदवाक्य प्रमाणज्ञ विव्दद्वरेण्य परम श्रध्देय गुरुवर्य प्रो०सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव जी, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय हैं। जिन्होंने अपने अत्यधिक व्यस्त समय में से मेरे लिए समय निकाल कर मेरे इस कार्य को सरल एवं दीप्तिपूर्ण बना दिया।आपके अमूल्य निर्देशन का ही परिणाम है कि मै प्रकृत शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर सका। उन पूज्यपाद के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापित करूं भावातिरेक में शब्दों एव भावों की अभिव्यक्ति अवरुध्द

सी प्रतीत होती है । तथापि उनके पुत्रवत् वात्सल्य एवं पवित्र ज्ञान दान का स्मरण कर, धन्य हूं ।

मैं परमादरणीय व्याकरण एवम् दर्शन के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् डा० राम किशोर शास्त्री जी प्राध्यापक, सस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय के चरणों में नत हूं जिन्होंने अपने बहुमूल्य सुझावों को देकर मेरे प्रति अपने वात्सल्य भाव को प्रकट किया है ।

किसी भी व्यक्ति के जीवन में सर्वाधिक योगदान उसके माता-पिता का होता है । इस सर्वस्वीकृत मान्यता का मैं भी अपवाद नहीं हूं । आज मैं प्रकृत शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर पा रहा हूं, यह वस्तुत. मेरे पूज्यपाद पिता डा० वेदपति मिश्र एवम् पूजनीया माता श्रीमती सिया मिश्रा के सहज-स्नेह का ही परिणाम है । इस सन्दर्भ में किसी भी प्रकार की औपचारिकता का निर्वाह इसके निस्सीम गौरव एवम् सहजता का विघातक होगा।

श्रध्देय डा० ब्रजनाथ सिह यादव जी, अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एव अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के प्रति मैं कृतज्ञता से श्रध्दावनत हू, जिन्होंने शोध कार्य में आने वाली अनेक समस्याओं का समाधान किया एवं अपने पुस्तकालय में से दुर्लभ पुस्तकों की यथेच्छ

सुविधा प्रदान की ।

अग्रज डा0 राम सेवक दुबे जी के प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने समय- समय पर प्रोत्साहन देकर मुझे अपने शोध कार्य में निरन्तर गतिशील रखा ।

इसके अतिरिक्त संस्कृत विभाग के शोध छात्रव्दय श्री रवि राज प्रताप मल्ल, श्री अरविन्द मिश्र तथा श्री जय शंकर मिश्र एवं श्री प्रभाकर मिश्र का आभारी हूं जिन्होंने अपने अनुजत्व का सम्यकरूपेण निर्वाह किया है । यही नहीं, शोध कार्य को निर्विघ्न सम्पादित करने में मेरी अव्दितीया सहजा कुमारी राज्यश्री भी सर्वथा धन्यवादार्ह हैं, जिसे ज्ञापित किये विना मैं अपने को अनृण नहीं मान सकता ।

मैं उन समस्त परोक्ष- अपरोक्ष मनीषियों के प्रति भी मैं ऋणी एवं कृतज्ञ हूं, जिनके ग्रन्थों का इस शोध प्रबन्ध में यथेष्ट अनुशीलन एवं अनुसरण किया गया है ।

अन्त में, शोध प्रबन्ध को शीघ्रतापूर्वक सुन्दर, स्पष्ट और यथासम्भव शुध्द टङ्कण कार्य हेतु श्री कमलेश यादव को धन्यवाद देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं ।

सूत्र शैली विशिष्ट तकनीकी पारिभाषिक शब्दावली के कारण दुरूह होती है । मैने गुरुकृपा एवम् अध्यवसाय के बल पर यथाशक्य आपस्तम्ब धर्मसूत्र का समीक्षात्मक अध्ययन करने का प्रयत्न किया है । मेरा यह प्रयत्न विव्दज्जनों को कितना संतुष्ट कर सकेगा ? इस अतिप्रश्न को सुधीजनों के ऊपर छोडते हुए मै प्रकृत शोध प्रबन्ध को नीरक्षीर विवेक हेतु प्रस्तुत करने का कर्त्तव्य निभा रहा हू ।

विदुषावशंवद
हर्षवर्धन मिश्र

{ हर्षवर्धन मिश्र }
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद ।

विजयादशमी 6 अक्टूबर, 1992

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

विषय	पृष्ठ संख्या
वैदिक वाड्.मय में सूत्र साहित्य का परिचय	1-46
कल्पसूत्र के भेद	
श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, शुल्वसूत्र, धर्मसूत्र	
धर्मसूत्रों का रचनाकाल एवं उनकी संख्या	

द्वितीय अध्याय

व्यक्तित्व एव कर्तृत्व	47-70
आपस्तम्ब कल्प के रचयिता का निर्धारण, आपस्तम्ब धर्मसूत्र का काल, आपस्तम्ब का जन्मस्थान, आपस्तम्ब धर्मसूत्र के उपलब्ध संस्करण, आपस्तम्ब धर्मसूत्र में सूत्रों की पुनरावृत्ति, आपस्तम्ब धर्मसूत्र में उद्धृत एवं उल्लिखित साहित्य	

तृतीय अध्याय

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में प्रतिपादित धर्म का स्वरूप विवेचन	71-82

चतुर्थ अध्याय

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में चित्रित सामाजिक जीवन 83-180

वर्णव्यवस्था

वर्ण व्यवस्था का स्वरूप, वर्णों के कर्त्तव्य, अयोग्यताएँ एव विशेषाधिकार, शूद्र की स्थिति, वर्णसंकर जातियों का वर्णन

सस्कार

उपनयन, समावर्तन, विवाह

समाज में स्त्रियों की स्थिति

शिक्षा का स्वरूप

शिक्षा का प्रारम्भ, आचार्य की योग्यता एवं कर्तव्य, शिष्य के कर्तव्य और आचार, गुरु शिष्य सम्बन्ध, आचार्य की आय, विद्यार्थी के प्रकार, अनुशासनहीन छात्र के प्रति आचार्य का व्यवहार, अनध्यायों का विवरण

भोजन- पान

भोजन विधि, माँसभक्षण, दुग्ध प्रयोग, शाकभाजी का प्रयोग, वर्जित पक्व पदार्थ, त्याज्य भोजन, विहित भोजन एवं भोज्यान्न, भोजन

पञ्चम अध्याय

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वर्णित धार्मिक स्थिति 181-247

आश्रम

ब्रह्मचर्याश्रम

ब्रह्मचारियों के प्रकार, ब्रह्मचारियों की वेशभूषा, ब्रह्मचारियों का जीवन, ब्रह्मचारियों के धर्म

गृहस्थाश्रम

गृहस्थाश्रम के कर्म एवं दायित्व

वानप्रस्थाश्रम

वानप्रस्था के नियम एव कर्तव्य

सन्यासाश्रम

प्रायश्चित्त

अभिशस्त का प्रायश्चित्त, गुरुतल्पग का प्रायश्चित्त, सुरापान का प्रायश्चित्त, स्तेन का प्रायश्चित्त, शूद्रवध का प्रायश्चित्त शूद्रवधवत् प्रायश्चित्त, अवकीर्णी का प्रायश्चित्त, अभक्ष्य भक्षण प्रायश्चित्त, पतित सावित्रीक का प्रायश्चित्त, अन्य प्रायश्चित्त

षष्ठ अध्याय

आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे आये हुये दार्शनिक विचार 248-267

विषय प्रवेश, आत्मतत्त्व का स्वरूप, आत्मतत्त्व की व्यापकता, आत्मतत्त्व के लक्षण आत्मतत्त्व के ज्ञान का महत्त्व, स्वर्ग एवं मोक्ष की अवधारणा, मोक्ष का स्वरूप, मोक्षप्राप्ति के उपाय, आध्यात्मिक योग, आध्यात्मिक योग के साधन, उपसंहार

सप्तम अध्याय

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में चित्रित राजनैतिक एव आर्थिक विचार 268-309

राजनीतिकविचार

राजा- राजा के कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व, अमात्य, पुरोहित, सभा का स्वरूप, न्याय व्यवस्था, दण्ड व्यवस्था - आपराधिक विधि, व्यावहारिक विधि

आर्थिक विचार

व्यवसाय, कृषि, भूमि व्यवस्था, पशुपालन, आय के साधन, व्यापार, विनिमय, व्याज, रहन-बन्धक

अष्टम अध्याय

उपसंहार 310-325

सहायक ग्रन्थ सूची 326-329

संकेत-सूची

अ0वे0	-	अथर्ववेद
आ0गृ0सू0	-	आपस्तम्बगृह्यसूत्र
आ0ध0सू0	-	आपस्तम्बधर्मसूत्र
आश्व0गृ0सू0	-	आश्वलायनगृह्यसूत्र
उ0स्मृ0	-	उशनस स्मृति
ऋ0	-	ऋग्वेद
ऐ0आ0	-	ऐतरेयारण्यक
ऐ0ब्रा0	-	ऐतरेय ब्राह्मण
कौ0	-	कौटिलीय अर्थशास्त्र
काम0	-	कामन्दकीय नीतिसार
गौ0ध0सू0	-	गौतम धर्मसूत्र
छा0उप0	-	छान्दोग्योपनिषद्
तै0उ0	-	तैत्तिरीयोपनिषद्
ना0 स्मृ0	-	नारदस्मृति
तै0ब्रा0	-	तैत्तिरीय ब्राह्मण
पू0मा0सू0	-	पूर्वमीमांसासूत्र
बृ0उ0	-	बृहदारण्यकोपनिषद्
बौ0ध0सू0	-	बौधायन धर्मसूत्र
भवि0 पु0	-	भविष्यपुराण
मत्स्य0	-	मत्स्यपुराण
मनु0	-	मनुस्मृति

-

या०	–	गाज्ञवल्क्य स्मृति
वसिष्ठ०	–	वसिष्ठधर्मसूत्र
विष्णु०	–	विष्णुधर्मसूत्र
श०ब्रा०	–	शतपथब्राह्मण
शख०	–	शखस्मृति
हि०गृ०	–	हिरयपकेशिगृह्यसूत्र

प्रथम अध्याय

वैदिक वाङ्मय में सूत्र साहित्य का परिचय

प्रथम अध्याय

सूत्र साहित्य भारतीय वाड्मय का एक अनूठा वर्ग है और यह अपनी विशिष्ट शैली के कारण अन्य सभी प्रकार की रचनाओं से भिन्न है । वैदिक साहित्य में सूत्रों का काल अध्ययन और चिन्तन की परम्परा का प्रतिनिधि है । भारतीय मनीषियों के लिए अपनी समृध्द परम्परा, आचार, व्यवहार एवं कर्मकाण्ड से सबंधित ज्ञान को सतत् रखना एक समस्या थी, क्योंकि लेखन के अभाव में लुप्त होने की सम्भावना अधिक थी तथा वृहद मन्त्रों को कण्ठस्थ रखना एवं शुध्दता को बनाये रखना भी असम्भव था । अतएव इन कठिनाइयों के निराकरण स्वरूप सूत्र साहित्य की स्थापना की गई ।

सूत्र का अर्थ है धागा और सूत्रों में छोटे, चुस्त, अर्थगर्भित वाक्यों को मानो एक धागे में पिरोकर रखा जाता है । वस्तुत इस प्रकार की रचनाओं में यथासम्भव थोडे से शब्दों में सिध्दान्त को व्यक्त करना ही रचयिता का उद्देश्य होता है । सूत्र साहित्य के सन्दर्भ में अनेक आलोचनाएं प्राप्त होती हैं कि इन रचनाओं में अन्विति या अर्थ के विकास की कोई सम्भावनायें नहीं हैं, रचना की जटिलता इसकी सरलता को लुप्त कर देती है । तथा ये अत्यधिक

नीरस है । इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि सूत्रों कोव्यवस्थित रूप में संक्षिप्त शैली में प्रस्तुत किया जाता है जिससे उसे याद किया जा सके, भले ही स्पष्टता और बोधगम्यता का बलिदान करना पडे। वैयाकरण पतञ्जलि का यह कथन प्राय उद्धृत किया जाता है कि "सूत्रकार आधी मात्रा की बचत पर उतना ही आनन्दित होता है जितना पुत्रजन्म पर " ।

सूत्र रचनाओं की शैली के विषय में जितनी आलोचना क्यों न हो,इस विषय में दो मत नहीं हो सकते कि मौखिक उपदेश के समय इनकी संक्षिप्त शैली एक आवश्यकता बन गयी है और इनकी विशिष्ट शैली के कारण ही इनमें से अधिकांश की रक्षा हो सकी, अन्यथा लेखन के अभाव में इनका सर्वथा लोप हो हो गया होता । इसके अतिरिक्त प्राचीन व्याकरण के नियमों को अक्षुण्ण बनाये रखने में सूत्र शैली एक महत्वपूर्ण कारक बनी अन्यथा व्याकरण संबंधी नियमों के ज्ञान के अभाव में वैदिक साहित्य का अर्थबोध असम्भव था ।

वस्तुत. सूत्र साहित्य में   अनेक शताब्दियों के ज्ञान का भण्डार एकत्र किया गया है । वे शताब्दियों के चिन्तन, मनन और अध्ययन के परिणाम हैं और उन्हें जो रूप प्राप्त हुआ है

वह भी अनेक शताब्दियों की अनवरत परम्परा का परिणाम है ।

सूत्र साहित्य में कल्पसूत्र प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के ज्ञान के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है । कल्प को 'वेदाङ्ग' के अन्तर्गत रखा गया है । चरणव्यूह के अनुसार शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं निरुक्त छन्दो, ज्योतिषम् ये वेदाङ्ग हैं । आपस्तम्ब ने इन्हें इस क्रम में गिनाया है + "षड्ङ्गो वेद । छन्दःकल्पो व्याकरण ज्योतिषं निरुक्तं शीक्षा छन्दोविचितिरिति ।। §2/4/8/10-11§

कल्प सबसे पूर्व वेदाङ्ग है, इसके अन्तर्गत सूत्रों का विशाल भण्डार समाहित है । 'कल्प' का अर्थ है वेद में विहित कर्मों का क्रमपूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाला शास्त्र "कल्पो वेद विहितानां कर्मणामानुपूर्वेण कल्पना-शास्त्रम्"[1] फलत जिन यज्ञ यागादि का विवाहोपनयनादि कर्मों का विशिष्ट प्रतिपादन वैदिक ग्रन्थों में किया गया है । उन्हीं का क्रमबध्द वर्णन करने वाले सूत्र- ग्रन्थों का सामान्य अभिधान कल्प है । कल्पसूत्र अपने विषय प्रतिपादनों में ब्राह्मण तथा

---

1. विष्णुमित्र- ऋग्वेद-प्रातिशाख्य की वर्गद्वय वृत्ति पृ0 13

आरण्यक के साथ साक्षात् सम्बध्द है । ऐतरेक आरण्यक में ऐसे सन्दर्भ हैं जो कि शुध्द रूप से सूत्र ही है परम्परा से भी इनके प्रणेता सूत्रकार आश्वलायन और शौनक माने जाते हैं । तथा इन्हें ईश्वरीय ज्ञान भी नहीं माना जाता । उक्त के अतिरिक्त सामवेद साहित्य में कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिन्हें भ्रमवश ब्राह्मण नाम दिया गया है वस्तुत: वे सूत्र हैं ।

ब्राह्मण-युग के प्रभावानुसार यज्ञ ही वैदिक आर्यों का प्रधान धार्मिक कृत्य था , परन्तु उसके बहुत ही विस्तृत होने से याग विधान के नियमों को संक्षेप तथा व्यवस्थित रूप में ऋत्विजों के व्यावहारिक उपयोग के लिए प्रतिपादक ग्रन्थों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और इसी की पूर्ति के लिए कल्पसूत्रों का निर्माण प्रत्येक शाखा में सम्पन्न हुआ।

कल्प सूत्र के महत्व के विषय में मैक्समूलर[1] ने ठीक लिखा है "कल्पसूत्रों का वैदिक साहित्य के इतिहास में अनेक कारणों से महत्व है वे न केवल साहित्य के एक नये युग के द्योतक हैं और भारत के साहित्यिक एवं धार्मिक जीवन के एक नये प्रयोजन के सूचक हैं अपितु उन्होंने

---

1. मैक्समूलर- हिस्ट्री ऑव एंशियन्ट संस्कृत लिटरेचर पृ0 166

अनेक ब्राह्मणों के लोप में योग दिया, जितना अब केवल नाम ही ज्ञात है "।

कुमारिल ने भी कल्पसूत्र मे महत्व के विषय में कहा है --

वेदादृतेऽपि कुर्वन्ति कल्पै कर्माणि याज्ञिका: ।
न तु कल्पैर्विना केचिन्मन्त्र ब्राह्मण मात्रकात् ।।

कल्पसूत्रों के महत्व के कारण ही इनके रचयिता स्वयं नयी शाखाओं के संस्थापक बन गये और उनकी शाखा में उनके सूत्र का ही प्रधान स्थान हो गया तथा ब्राह्मण और वेद का महत्त्व कुछ सीमा तक कम हो गया ।

कल्पसूत्र मुख्यत चार प्रकार के हैं :-

§1§ श्रौतसूत्र- जिनमें श्रौत अग्नि से होने वाले बडे यज्ञों का विवेचन किया गया है ।

§2§ गृह्यसूत्र- गृह्य अग्नि में होने वाले घरेलू यज्ञ का, उपनयन विवाह आदि संस्कारों का विवेचन करने वाले सूत्र ।

§3§ धर्मसूत्र- चारों आश्रमों, चारो वर्णों तथा उनके धार्मिक आचारों का तथा राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन करने वाले सूत्र ।

§4§ शुल्वसूत्र- यज्ञ में वेदि आदि के निर्माण विधि का वर्णन करने वाले सूत्र ।

श्रौतसूत्र

श्रौतसूत्र का मुख्य विषय श्रुति- प्रतिपादित महत्वपूर्ण यज्ञों का क्रमबध्द वर्णन है । इन यागों के नाम हैं - दर्श,पूर्णमास,पिण्ड-पितृयज्ञ, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य, निरूढ- पशु, सोमयाग सत्र, गवामयन, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी अश्वमेघ, पुरुषमेध,एकाध्याग, अहीन इत्यादि एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठानों,विधिनिषेधों का वर्णन भी श्रोत सूत्र में प्राप्त होता है । अतएव श्रौतसूत्र का स्वरूप कर्मकाण्डीय है ।

ऋग्वेद से संबधित श्रौतसूत्र- ऋग्वेद से संबधित दो श्रौतसूत्र उपलब्ध है । §1§ आश्वलायन तथा §2§ शाड्.खायन ।

शाड्.खायन श्रौतसूत्र की रचना सुयज्ञ शाड्खायन ने की है वर्तमान में इसके 18 अध्याय उपलब्ध है । शाड्.खायन ब्राह्मण ग्रन्थों मे सम्बध्द यह श्रौतसूत्र विषय तथा शैली की दृष्टि से प्राचीनतर प्रतीत होता है । शाड्.खायन श्रौतसूत्र में कौषीतकि ब्राह्मण के अनेक

विषय ग्रहण किये गये है ।

आश्वलायन श्रौतसूत्र में 12 अध्याय है जो दो शतक पूर्व शतक एव उत्तर शतक में विभक्त है प्रसिद्ध है कि आश्वलायन ऋषि शौनक ऋषि के शिष्य थे तथा ऐतरेक आरण्यक के अन्तिम दो अध्यायों को गुरू और शिष्य ने मिलकर बनाया था ।

सामवेद से संबंधित 4 श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं §1§ आर्षेय श्रौतसूत्र §2§ लाट्यायन श्रौतसूत्र §3§ द्राह्यायण श्रौतसूत्र §4§ जैमिनीय श्रौतसूत्र।

आर्षेय श्रौतसूत्र अपने रचयिता के नाम पर मशक श्रौतसूत्र के नाम से भी पुकारा जाता है । लाट्यायन श्रौतसूत्र §8/9/14§ में मशक गार्ग्य का उल्लेख प्राप्त होता है । इसमें साम गानों का तत्तत् विशिष्ट् अनुष्ठानों में विनियोग का विवरण है । तथा यह प चीवश ब्राह्मण के यौगक्रम का अनुसरण करता है । तथा इससे स्पष्टत· सम्बध्द है ।

लाट्यायन श्रौतसूत्र में 10 प्रपाठक है लाट्यायन श्रौतसूत्र सामवेद से संबधित मुख्य श्रौतसूत्र है । इस सूत्र में लाट्यायन ने न केवल अपने वेद एव चरण से संबधित शिक्षा एव कर्मकाण्डीय परम्परा का

उल्लेख किया है अपितु अन्य वेदों से सम्बन्धित कर्मकाण्डीय शिक्षा एव परम्पराओं का उल्लेख किया है । लाट्यायन श्रौतसूत्र पंञ्चविश ब्राह्मणा से सम्बन्धित है । तथा अनेक स्थलो पर उसने पंञ्चविश ब्राह्मण से सम्बन्धित मन्त्रों को उद्धृत किया है । इसका सम्बन्ध कौथुमशाखा से है ।

द्राह्यायण श्रौतसूत्र राणायनीय शाखा से सम्बन्धित है तथा जैमिनीय श्रोतसूत्र का सम्बन्ध जैमिनी शाखा से है । जैमिनीय श्रौतसूत्र सबसे छोटा श्रौतसूत्र है एवं उसमें केवल 26 खण्डिका या खण्ड हैं जिनमें से अधिकाश अत्यधिक छोटे हैं ।

शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित एकमात्र कात्यायन श्रौतसूत्र प्राप्त होता है जो परिमाण में पर्याप्त बड़ा है, इसमें 26 अध्याय हैं ।इसकी प्रणाली शतपथ ब्राह्मण में निर्दिष्ट प्रयोगक्रम के अनुसार है । 2-18 अध्याय शतपथ ब्राह्मण के खण्ड 1-9 पर आधारित है एवं कात्यायन श्रौतसूत्र के अध्याय मुख्यत. प चविश ब्राह्मण के 16-25 अध्याय पर आधारित है । इस प्रकार हम देखते हैं कि कात्यायन ने अपने कृत्य को प्रामाणिक एव पूर्ण बनाने के लिये यथासम्भव उपलब्ध सामग्री का प्रयोग करने का प्रयास किया है ।

कात्यायन श्रौतसूत्र के प्रथम अध्याय में दस कण्डिकाएं है जिसमें

याग सम्बन्धी विविध विषयों का विवेचन हैव्दितोय एव तृतीय अध्या में आठ आठ कण्डिकाएं हैं जिनमें अग्न्युपस्थापन, अग्निहोत्र पिण्डपितृ यज्ञ दाक्षायणा, आग्रायण आदि विषय वर्णित हैं । पंचम अध्या में चातुर्मास्य और मित्रविंद इष्टि का विधिपूर्वक वर्णित है । षष्ठ अध्याय में निरुढ पशुबन्ध का वर्णन है । सप्तम से दशम अध्याय तक अग्निष्टोम याग का विस्तृत विवेचन है । एकादश अध्याय में ब्रह्मा नामक ऋत्विज के कार्य एंव उपयोग वर्णित हैं । व्दादश अध्याय में व्दादशाह, त्रयोदश में गवामयन, चतुर्दश में वाजपेय, पञ्चदश में राजसूय षोडश से अष्टादश तक अग्निचयन, एकोनविंश में सौत्रामणी तथा विंशति अध्याय में अश्वमेध, एकविंश में पुरुषमेध, सर्वमेध तथा पितृमेध का विधिवत् विवेचन है बाइसवें से चौबीसवें अध्याय तक एकाहअहीन ओर सत्र से सम्बन्धित विषय वर्णित हैं । पचीसवें मे प्रायश्चित्त तथा छब्बीसवें में प्रवर्ग्य याग का विवरण वर्णित है[1] ।

कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित छ श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं§। §बौधायन §2§आपस्तम्ब [3] हिरण्यकेशी §4} बैखानस §5§भारव्दाज और§6§मानव श्रौतसूत्र । इनमे से मानव श्रौतसूत्र का सम्बन्ध मैत्रायणी संहिता से

---

1. पारसनाथ व्दिवेदी- वैदिक साहित्य का इतिहास पृ0 195

तथा शेष का सम्बन्ध तैत्तिरीय संहिता से है ।

बौधायन श्रौतसूत्र का सम्पादन डा० कैलेण्ड ने किया है तथा गोविन्द स्वामी के भाष्य के साथ यह मैसूर से भी प्रकाशित हुआ है । इसमें चौदह भाग हैं ।

आपस्तम्ब कल्पसूत्र तीस प्रश्नों में विभक्त हैं । इसमें पाँच विभाग हैं- श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, गृह्यमन्त्र, धर्मसूत्र और शुल्वसूत्र । सायण से अर्वाचीन याज्ञिक विद्वान- चौण्डपाचार्य ने प्रयोग रत्नमाला में आपस्तम्बकल्प सूत्र के विषय में लिखा है -

त्रिंशत्प्रश्नात्मक सूत्रमापस्तम्बमुनीरितम् ।
श्रौतगार्हिस्मार्तकर्म वोधकं तत्रष चभि ।।

आपस्तम्ब कल्प के प्रथम तेइस प्रश्न श्रौतसूत्र हैं, 24वाँ प्रश्न परिभाषा है, 25 तथा 26 प्रश्नों में गृह्यमन्त्र कथित है । 27वाँ प्रश्न गृह्यसूत्र है । 28 तथा 29 प्रश्न धर्मसूत्र है तथा अन्तिम 30वाँ प्रश्न शुल्ब सूत्र है ।

23 प्रश्नपर्यन्त श्रौतभाग की मुख्य विषय सूची इस प्रकार है -

§1§ तीन प्रश्नों में - दर्शपूर्णमास यज्ञ

§2§ चतुर्थ प्रश्न में - याजमान

§3§ पचम प्रश्न में - अग्न्याधेय, पुनराधान

§4§ षष्ठ प्रश्न में - अग्निहोत्र

§5§ सप्तम प्रश्न में - निरुढपशुबन्ध

§6§ अष्टम प्रश्न में = वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध, शुनासीरीय और चातुर्मास्यऱ

§7§ दश से व्दादश प्रश्न में- अग्निष्टोम

§8§ त्रयोदश प्रश्न = मध्यदिन और तृतीय सवन

§9§ चतुर्दश प्रश्न में - उक्थ्य, षोडशी, आप्तोर्याम और अतिरात्र

§10§ प चदश प्रश्न में - प्रवर्ग्य

§11§ षोडश और सप्तदश में- अग्निचयन

§12§ अष्टादश में - वाजपेय और राजसूय

§13§ उन्नीसवें प्रश्न में - सौत्रामणी और काश्विष्टि

§14§ बीसमें प्रश्न में - अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेध

§15§ इक्कीसवे प्रश्न में- व्दादशाह, गवामयन

§16§ बाईसवें प्रश्न में - अहीन और सव

§17§ तेईसवें प्रश्न में - सत्र

हिरण्यकेशी श्रौतसूत्र आपस्तम्ब की अपेक्षा अर्वाचीन माना जाता है इसीलिए इसकी रचना आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के आधार पर विशेषत: प्रतीत होती है । इसे सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र भी कहते हैं । इस कल्पसूत्र में अट्ठारह अध्याय है जो नानाविध यज्ञीय विधानों से सम्बन्धित है ।

वैखानस श्रौतसूत्र, वैखानस कल्पसूत्र के प्रश्न 12-32 के अन्तर्गत है । प्रश्न 1-8 में गृह्यसूत्र है, प्रश्न 8-10 में धर्मसूत्र और प्रश्न 11 में प्रवरसूत्र हैं । इन सूत्रों की विषय वस्तु के निर्धारण एवं आपस में आये उध्दरणों से यह अनुमानित होता है कि यह सम्पूर्ण कल्पसूत्र एक ही लेखक की रचना है ।

वैखानस श्रौतसूत्र में अनेक बातें आपस्तम्ब, बौधायन और हिरण्यकेशी श्रौतसूत्र के आधार पर प्रतीत होती है ।

भारव्दाज श्रौतसूत्र के वर्तमान में 15 प्रश्न ही उपलब्ध है । तथा अनेक महत्वपूर्ण यागों का वर्णन उपलब्ध नही है यथा-अश्वमेध, राजसूय और वाजपेय । भारव्दाज श्रौतसूत्र के आन्तरिक साक्ष्यों से यह ध्वनित होता है कि इसमें मूलत. अनेक प्रश्न थे क्योंकि भारव्दाज

हिरण्यकेशी श्रौतसूत्र आपस्तम्ब की अपेक्षा अर्वाचीन माना जाता है इसीलिए इसकी रचना आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के आधार पर विशेषत: प्रतीत होती है । इसे सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र भी कहते हैं । इस कल्पसूत्र में अट्ठारह अध्याय है जो नानाविध यज्ञीय विधानों से सम्बन्धित है ।

वैखानस श्रौतसूत्र, वैखानस कल्पसूत्र के प्रश्न 12-32 के अन्तर्गत है । प्रश्न 1-8 में गृह्यसूत्र है, प्रश्न 8-10 में धर्मसूत्र और प्रश्न 11 में प्रवरसूत्र हैं । इन सूत्रों की विषय वस्तु के निर्धारण एवं आपस में आये उध्दरणों से यह अनुमानित होता है कि यह सम्पूर्ण कल्पसूत्र एक ही लेखक की रचना है ।

वैखानस श्रौतसूत्र में अनेक बातें आपस्तम्ब, बौधायन और हिरण्यकेशी श्रौतसूत्र के आधार पर प्रतीत होती है ।

भारव्दाज श्रौतसूत्र के वर्तमान में 15 प्रश्न ही उपलब्ध है । तथा अनेक महत्वपूर्ण यागों का वर्णन उपलब्ध नही है यथा-अश्वमेध, राजसूय और वाजपेय । भारव्दाज श्रौतसूत्र के आन्तरिक साक्ष्यों से यह ध्वनित होता है कि इसमे मूलत. अनेक प्रश्न थे क्योंकि भारव्दाज

श्रौतसूत्र (14/26/12) में कहा गया है कि सोम याग से सम्बन्धित अनेक कृत्यों का वर्णन राजसूय के वर्णन के समय कर दिया गया है[1] ।

मानव श्रौतसूत्र कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा से सम्बध्द है। इसमें पाच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय खण्डों में विभक्त है । प्रथम अध्याय में आठ खण्ड हैं जिनमें दर्शपौर्णमास, पिण्डपितृयज्ञ, अग्न्याधान अग्निहोत्र, आग्रयण, अग्न्युपस्थान, पुनराधान, चातुर्मास्य, पितृयज्ञ पशुबन्ध, पञ्चसावत्सारिक आदि विषयों का प्रतिपादन है । व्दितीय अध्याय के पांच खण्डों में अग्निष्टोम का विषद वर्णन है । तृतीय अध्याय के आठ खण्डों में प्रायश्चित्त, चतुर्थ अध्याय के आठ खण्डों में प्रवर्ग्य और पञ्चम अध्याय के दो खण्डों में इष्टि का वर्णन है । इसकी शैली वर्णनात्मक है और कृष्णयजुर्वेद के ब्राह्मणभाग के समान है । अन्तर केवल इतना ही है कि इसमें केवल प्रयोग विधि का ही वर्णन है, आध्यानादि का विवरण नहीं है ।

अथर्ववेद से सम्बन्धित श्रौतसूत्र वेतान श्रौतसूत्र है । इस श्रौत-सूत्र में आठ अध्याय है जो 43 कण्डिका में विभक्त है । यह श्रौतसूत्र न तो प्राचीन और न ही मौलिक माना जाता है तथा प्रतीत होता है कि यह किसी अथर्ववेदीय शाखा का श्रौतसूत्र था जिसका उद्देश्य

श्रौत परम्परा से अपने शिष्यों को अवगत कराना । वैतान नाम से भी यह सिध्द होता है । वैतान का अर्थ है- त्रिविध अग्निसम्बन्धी ग्रन्थ।

वैतान श्रौतसूत्र अनेक स्थलों पर गोपथ ब्राह्मण का अनुसरण करता है[1] ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यज्ञ यागादि विधानों को श्रौत-सूत्रों में प्रस्तुत किया गया है ।

गृह्यसूत्र

गृह्यसूत्रों में मुख्यत. उन याज्ञिक कर्मों और संस्कारों का वर्णन हैं जिनका सम्बन्ध मुख्यत: गृहस्थ से है । इनमें गर्भाधान से लेकर मृत्यु-पर्यन्त और मृत्यु के बाद किये जाने वाले संस्कारों तथा अनुष्ठान विधियों का विवरण प्राप्त होना है । उक्त के अतिरिक्त अनेक सामाजिक प्रथाओं और रीति रिवाजों के भी वर्णन गृह्यसूत्रों में प्राप्त होते हैं । पञ्च-महायज्ञ, श्राध्दकर्म तथा अभिचारिक क्रियाओं के भी वर्णन हैं ।

इस प्रकार गृह्यसूत्रों में एक ओर तो हिन्दू जीवन में गृहस्थ के व्यक्तिगत जीवन के संस्कारों का विवेचन मुख्य रूप से हुआ है किन्तु

---

1. यथा वै०श्रौ० 7/12-24= गो०ब्रा० 1/3/12, वै०श्रौ० 8/8=गो०

इनके साथ प्रात एवं सायकाल की दैनिक आहुतियो का प्रतिमास किये जाने वाले बलिकर्मों का प्रतिदिन की बलियों का वर्णन है । इनके साथ ही वार्षिक कर्मों के विवेचन को भी गृह्यसूत्रों में स्थान मिला। इस प्रकार के कर्म हैं --सर्पबलि, पृथ्वी पर शयन का आरम्भ, नये अन्नों के प्रयोग के समय किये जाने वाले कर्म, अष्टका कर्म तथा पितृकर्म ।

वार्षिक कर्मों के अतिरिक्त कुछ ऐसी क्रियाओं का विवेचन भी गृह्यसूत्रों में हुआ है जिनका जीवन के साधनों से तात्पर्य है जैसे घर बनाने के लिए भूमि का चुनाव, घर बनाने की विधि, स्तम्भ रखने की विधि, स्वाध्याय के आरम्भ की क्रिया।

इन क्रियाओं के अतिरिक्त अन्त्येष्टि और पितृकर्म की क्रियाओं के साथ साथ अभिचारिक क्रियाओं का भी वर्णन गृह्यसूत्रों में मिलता है । जैसे पुत्र या पत्नी को रोग होने पर किये जाने वाले अभिचार, पत्नी को परपुरुषगामिनी होने से बचाने के लिए अभिचार।

प्रायश्चित्तों का भी वर्णन प्राप्त होता है एवं छोटे-छोटे विभिन्न या अवसर पर किये जाने वाले अभिमन्त्रण का भी बीच-बीच में उल्लेख है ।

इस प्रकार गृह्यसूत्रों के विषयों को हम इन वर्गों के अन्तर्गत

रख सकते है -

(1) जीवन से सम्बध्द संस्कार ।

(2) दैनिक जीवन के होमकर्म तथा अन्न की बलि ।

(3) मासिक पर्वों पर किये जाने वाले कर्म ।

(4) वार्षिक कर्म ।

(5) जीवन से सम्बध्द कर्म ।

(6) श्रौतकर्म ।

(7) आभिचारिक कर्म ।

(8) प्रायश्चित्त के कर्म ।

(9) अभिमन्त्रण के निर्देश ।

ऋग्वेद से सम्बन्धित गृह्यसूत्र - ऋग्वेद से सम्बध्द प्रकाशित गृह्यसूत्र निम्न है -

(1) शाखायन गृह्यसूत्र

(2) कौषितकि गृह्यसूत्र

(3) आश्वलायन गृह्यसूत्र

शांखायन गृह्यसूत्र - शाखायन गृह्यसूत्र ऋग्वेद की शांखायन शाखा से सम्बन्धित है । वर्तमान में शाखायन गृह्यसूत्र में 6 अध्याय है । जिनमें से 5वां एव छठा अध्याय वाद का माना जाता है क्योंकि शांखायन

गृह्यसूत्र के व्याख्याकार नारायण ने शाखायन गह्यसून के पाचवें अध्याय को परिशिष्ट कहा है[1] ।

इस गृह्यसूत्र की रचना सुयज्ञ ने की है । इस सम्बन्ध में ओल्डन-बर्ग ने नारायण की एक कारिका[2] उद्धृत की है जिससे स्पष्ठ होता है कि शांखायन गृह्यसूत्र के रचनाकार सुयज्ञ है ।

इसके प्रथम अध्याय में गर्भाधानादि संस्कारों एवं पार्बण का वर्णन है । व्दितीय अध्याय में उपनयन एब ब्रह्मचर्य आश्रम का विवरण है । तृतोय में स्नान, गृहनिर्माण, गृहप्रबेश, वृषोत्सर्ग आग्रहायणी और अष्टका का वर्णन है । चतुर्थ अध्याय में श्राध्द श्रावणी, आश्व-युजी और चैत्री का उल्लेख है । पञ्चम और षष्ठ में प्रायश्चित्तों का बर्णन है ।

---

1. अथ परिशिष्टाख्य प्रचमोऽध्याय आरभ्यते ।
   - नारायण की व्याख्या सहित शांखायन गृह्यसूत्र पृ0 210

2. अत्रारणि प्रदात यदध्वर्यु कुरुते क्वचित् ।
   मतं तन्न सुयज्ञस्य मथित सोऽत्र नेच्छति ।।
   - से0बु0आ0ई0भाग 29 पृ0-3

<u>कौषितकि गृह्यसूत्र</u> - कौषितकि गृह्यसूत्र ऋग्वेद की कौषीतक शाखा से सम्बन्धित है। प्राय शाखायन और कौषीतक शाखा को एक ही माना जाता रहा है, किन्तु शाखायन शाखा के गृह्यसूत्र के अतिरिक्त कौषीतक शाखा का भी गृह्यसूत्र उपलब्ध है । यद्यपि दोनों के विषय विवेचन में समानता मिलती है तथापि दोनों सर्वथा भिन्न हैं ।

कौषितकि गृह्यसूत्र में 5 अध्याय हैं । इसके रचयिता शाम्भव्य माने गये है अतएव इस आधार पर इस गृह्यसूत्र को शाम्भव्यगृह्यसूत्र भी कहा जाता है ।

<u>आश्वलायन गृह्यसूत्र</u> - ऋग्वेद की आश्वलायन शाखा से सम्बध्द इस गृह्यसूत्र में चार अध्याय हैं, जिनका विभाजन कई खण्डों में किया गया है ।

आश्वलायन इस गृह्यसूत्र के रचयिता माने जाते हैं। परम्परा के अनुसार आश्वलायन, शौनक के शिष्य थे जिन्होंने अन्य रचनाओं के अतिरिक्त प्रथम कल्पसूत्र की रचना की । परन्तु जब आश्वलायन ने सूत्र रचना की तथा शौनक को सुनाया तब शौनक ने अपने सूत्र को नष्ट कर दिया तथा घोषित किया कि उस वैदिक शाखा के शिष्य आश्वलायन

के सूत्र को स्वीकारेंगे [1] ।

उक्त के अतिरिक्त हम आश्वलायन गृह्यसूत्र में नम शौनकाय का तथा शौनक के मत का उद्धरण पाते हैं[2] ।

उक्त से यह स्पष्ठ है कि आश्वलायन, शौनक के शिष्य थे।

आश्वलायन गृह्यसूत्र के प्रथम अध्याय में विवाह, पार्वण, पशुयज्ञ चैत्ययज्ञ, गर्भाधानादि संस्कारों का वर्णन है । व्दितीय अध्याय में श्रावणी, आश्वयुजी, आग्रहायणी, अष्टका, गृहनिर्माण और गृह प्रवेश का वर्णन है। तृतीय अध्याय में वेदाध्ययन के नियम एवं श्रावणी का वर्णान है । चतुर्थ अध्याय में अन्त्येष्टि और श्राध्द का विवेचन है । इस पर जयन्तस्वामी, देवस्वामी, नारायण एवं हरदत्त की व्याख्या, वृत्ति एव भाष्य है ।

---

1. शौनकस्य तु शिष्योऽभूद् भगवानाश्वलायन ।स तस्माच्छ्रुत-सर्वज्ञ.सूत्रं कृत्वा न्यवेदयत।। प्रबोधपरिशुद्ध्यर्थ शौनकस्य प्रियं त्विति।सहस्त्रखण्डं स्वकृतं सूत्रं ब्राहमण-सन्निभम्।। शिष्याश्वलायनप्रीत्यै शौनकेन विपाटितम । उक्तं तत्तत्कृतं सूत्रमस्य वेदस्य चास्त्विति ।। व्दादशाध्यायकं सूत्रं चतुष्कं गृह्यमेव च चितुर्थारण्यकं चेति हयाश्वलायनसूत्रकम्।। षड्गुरशिष्यस्य।
   -मैक्समूलर, हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ0।20 में उद्धृत

2. नोध्दरेत् प्रथमं पात्रं पितृणामर्च्यपातितम्।आवृतास्तत्र तिष्ठन्ति पितर शौनको ब्रवीत्।।

सामवेद से सम्बन्धित गृह्यसूत्र - सामवेद से सम्बन्धित निम्न गृह्यसूत्र इस समय उपलब्ध है -

(1) गोभिलगृह्यसूत्र

(2) खदिर गृह्यसूत्र

(3) जैमिनीय गृह्यसूत्र

गोभिलगृह्यसूत्र - सामवेद से सबध्द गृह्यसूत्रों में गोभिलगृह्यसूत्र प्रमुख यह सामवेद की कौथुमशाखा से सम्बध्द है । इसमें सामवेद और मन्त्र-ब्राह्मण के मन्त्रों के उध्दरण है । इसमें चार प्रपाठक हैं । प्रथम प्रपाठक मे ब्रह्मयज्ञ, दर्शपूर्णमासादि का वर्णन है । व्दितीय में विवाह तथा गर्भाधानादि संस्कारों का विवेचन है । तृतीय में ब्रहमचर्य गोपालन, गोयज्ञ, अश्वयज्ञ,श्रावणी आदि का वर्णन हे । चतुर्थ में अष्टका, गृह निर्माणादि विधियों का वर्णन है ।

खदिरगृह्यसूत्र - खदिर गृह्यसूत्र राणायनीय शाखा से सम्बध्द है । यह गोभिल गृह्यसूत्र से मिलता जुलता है । ओल्डनबर्ग के अनुसार यह गोभिल गृह्यसूत्र का संक्षिप्त संस्करण प्रतीत होता है[1] ।

---

1. से0बु0आ0ई0 भाग 29 पृ0- 372

जैमिनीय गृह्यसूत्र – यह गृह्यसूत्र सामवेद की जैमिनीय शाखा से सम्बध्द है। यह गृह्यसूत्र दो खण्डों – पूर्व एवं उत्तर में विभक्त है। प्रथम खण्ड में 24 कण्डिकाये है और द्वितीय खण्ड में 9 कण्डिकायें हैं इसमें सामवेद के अनुसार ही मन्त्रों के उद्धरण हैं। इसे डा० कैलेण्ड ने सुबोधिनी टीका और विस्तृत भूमिका के साथ 1922 में लाहौर से प्रकाशित किया है।

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित गृह्यसूत्र – कृष्णयजुर्वेद के नौ गृह्यसूत्र हैं –

(1) बौधायन गृह्यसूत्र,

(2) आपस्तम्ब गृह्यसूत्र,

(3) भारद्वाज गृह्यसूत्र,

(4) हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र,

(5) वैखानस गृह्यसूत्र,

(6) काठक गृह्यसूत्र,

(7) वाराहगृह्यसूत्र,

(8) मानव गृह्यसूत्र,

(9) बाधूल गृह्यसूत्र,

बौधायन गृह्यसूत्र– बौधायन गृह्यसूत्र कल्पसूत्र का ही एक भाग है इसमें चार प्रश्न है, किन्तु पश्चिम भारतीय संस्करण में 4 के स्थान पर 9

प्रश्न मिलते हैं । इसके रचयिता बौधायन ऋषि थे । यह मैसूर गवर्नमेण्ट ओरियन्टल लाइब्रेरी संस्कृत सीरिज से 1920 ई० में गोविन्द स्वामी के भाष्य के साथ प्रकाशित है ।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र :- आपस्तम्ब कल्पसूत्र का 27वां प्रश्न गृह्यसूत्र है । यह 8 पटलों में विभक्त है तथा इन पटलों के अन्तर्गत 23 खण्ड है । आपस्तम्ब गृह्यसूत्र का प्रथम संस्करण जर्मन विव्दान, विण्टरनित्स ने 1887 में वियना से प्रकाशित कराया । जर्मनी के ही डा० ओल्डेनबर्ग ने सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट ग्रन्थमाला के अन्तर्गत इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया । हरदत्त की अनाकुला वृत्ति और सुदर्शनाचार्य की तात्पर्य दर्शन टीका के साथ 1928 ई० में आपस्तम्ब गृह्यसूत्र का संस्करण चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस में प्रकाशित हुआ ।

भारव्दाज गृह्यसूत्र - कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का गृह्यसूत्र भारव्दाज गृह्यसूत्र है । यह लाइडेन के डा० सालोमन व्दारा 1913ई० में प्रकाशित हुआ । इस गृह्य सूत्र में तीन प्रश्न हैं ।

हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र- कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र भी सम्बन्धित है । हिरण्यकेशी कल्पसूत्र का उन्नीसवां और बीसवां अध्याय हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र है । इसको सत्याषाढ गृह्यसूत्र

भी कहते हैं। इसका प्रथम संस्करण डा० क्निष्ठे ने वियना से निकाला था और इसका अंग्रेजी अनुवाद भी सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट ग्रन्थमाला में हुआ है एव मातृदन्त की व्याख्या एव परिशिष्ट के साथ 1889 ई० में प्रकाशित हुआ ।

वैखानस गृह्यसूत्र - यह भी तैत्तिरीय शाखा से सम्बध्द है । यह परवर्तीयुग की रचना मानी गई है क्योंकि इस गृह्यसूत्र के अन्तर्गत ऐसे विषयों का समावेश है जो परिशिष्ट के अन्तर्गत आते हैं । डा०कैलेण्ड ने इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है ।

काठक गृह्यसूत्र.- काठक गृह्यसूत्र कठशाखा से स्पष्टत अपना सम्बन्ध रखता है । इसे लौगाक्षि गृह्यसूत्र भी कहते हैं । इसमे दो प्रकार के विभाग मिलते हैं- एक विभाग के अनुसार इसमे आरम्भ से लेकर अन्त तक 73 कण्डिकायें हैं, दूसरे प्रकार में इसमें पांच अध्याय हैं । इसी पंचाध्यायी विभाग के कारण इसका लोकप्रिय नाम गृह्य पञ्चिका है। इसकी तीन टीकाये उपलब्ध हैं । इन तीन टीकाओं के सारांश के साथ डा० कैलेण्ड ने इसका संस्करण लाहौर से प्रकाशित कराया था।

वाराहगृह्यसूत्र - वाराहगृह्यसूत्र मैत्रायणी शाखा से सम्बध्द है । इस गृह्यसूत्र में केवल आधे गृह्यकृत्यों का वर्णन है तथा इसका बहुत

सा अंश मानवगृह्यसूत्र तथा काठक गृह्यसूत्र के समान है ।

बाधूल गृह्यसूत्र .- बाधूल गृह्यसूत्र का रचयिता अग्निवेश है अत इसे अग्निवेश्य गृह्यसूत्र भी कहते हैं यह कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बध्द है । भाषा, शैली और विषय चयन के आधार पर यह अन्य गृह्य सूत्रों से भिन्न है।

शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित गृह्यसूत्र :- शुक्ल यजुर्वेद का एक मात्र प्रकाशित गृह्यसूत्र पारस्कर गृह्यसूत्र है । यह कातीय गृह्यसूत्र भी कहलाता है । इसमें तीन काण्ड हैं । प्रथम काण्ड मे आवसथ्य अग्नि का आधान तथा गर्भधारण से आरम्भ कर अन्नप्राशन तक का वर्णन है । व्दितीय काण्ड में चूडाकरण, उपनयन, समावर्तन, पञ्चमहायज्ञ, श्रवणाकर्म, सीताकर्म का विवरण है । अन्तिम काण्ड में श्राध्द, अवकीर्ण प्रायश्चित्त की विधियों का वर्णन है । इस गृह्यसूत्र की कई व्याख्यायें हुई हैं । इसके पांच व्याख्याकार हैं कर्क, जयराम, हरिहर, गदाधर तथा विश्वनाथ पाचो भाष्यों के साथ इसका एक संस्करण 1917 ई0 में गुजराती प्रेस बम्बई से प्रकाशित है ।

अथर्ववेद से सम्बन्धित गृह्यसूत्र :- अथर्ववेद से सबध्द केवल कौशिक गृह्यसूत्र उपलब्ध है । यह शौनक शाखा से सम्बध्द है । इसमें 14 अध्याय हैं । इस गृह्यसूत्र की दो व्याख्यायें उपलब्ध होती हैं ।

जिनके लेखक हारिल और केशव है । इसमें प्राचीन काल के जादू की अनेक क्रियाओं का वर्णन हैं एव वैधक शास्त्र के विषयों पर भी इस गृह्यसूत्र से प्रकाश पडता है । इसका संस्करण ब्लूमफील्ड ने 1890 में अमेरिका से प्रकाशित कराया। ब्लूमफील्ड के अनुसार यह गृह्यसूत्र दो प्रकार के सूत्रों - गृह्यसूत्रों एव अथर्व सूत्रों का मिश्रण है यह ज्ञान इसके सूत्रों की शैली विषयवस्तु के आधार पर ज्ञात होती है ।[1]

शुल्ब सूत्र

शुल्बसूत्र कल्पसूत्र का प्रमुख अंग है । शुल्ब शब्द का अर्थ है- रज्जु अर्थात रज्जु के व्दारा मापी गई वेदि की रचना शुल्बसूत्र का प्रतिपाद्य है। यह भारतीय ज्यामिति शास्त्र का सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है ।शुल्ब सूत्रों में ज्यामिति का सम्पूर्ण विषय रेखा, त्रिभुज,चतुर्भुज वृत्तादि प्रमेय आदि का वर्णन प्राप्त होता है ।

सिध्दान्त की दृष्टि से तो प्रत्येक वैदिक शास्त्र का अपना विशिष्ट शुल्बसूत्र होता है,परन्तु व्यवहारत: ऐसी बात नही है सम्प्रति केवल युजुर्वेद

---

1. कौशिक सूत्र, भूमिका पृ0 2।

से सम्बध्द शुल्ब सूत्र मिलते हैं ।

शुक्ल यजुर्वेद से सम्बध्द केवल कात्यायन शुल्ब सूत्र उपलब्ध है । इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग में सात कण्डिकाएं और नब्बे सूत्र हैं । इसमें वेदियों की रचना के लिए आवश्यक रेखा गणितीय तथ्य, वेदियों का स्थानक्रम तथा उनके परिमाण का पूर्ण वर्णन प्राप्त होता है । व्दितीय भाग श्लोकात्मक है इसमे 40 या 48 श्लोक मिलते हैं । यहां नापने वाली रज्जु का वेदिनिर्माता के गुणों एव कर्त्तव्यों का वर्णन है तथा साथ ही प्रथम भाग में वर्णित रचना पध्दति का भी विवरण प्राप्त होता है । इसके उपर दो टीकायें उपलब्ध होती हैं -

§1§ महीधर §2§ राम या रामवाजपेय

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बध्द छ. शुल्ब सूत्र उपलब्ध हैं- बौधायन , आपस्तम्ब मानव, मैत्रायणीय, वाराह और वाधूल । इनके अतिरिक्त आप-स्तम्ब शुल्ब §1.1/1.1§ टीका में करविन्द स्वामी ने यशक शुल्ब तथा हिरण्य-केशी-शुल्ब का उल्लेख किया है जो आज कल उपलब्ध नही है ।

बौधायन शुल्ब सूत्र इन उपलब्ध शुल्ब सूत्रों में सबसे बडा तथा सम्भवत सबसे प्राचीन शुल्ब सूत्र है । इसके तीन परिच्छेद हैं । प्रथम परिच्छेद

में 16 व्दितीय में 86 तथा तृतीय में 323 सूत्र हैं । इसके प्रथम परिच्छेद में मगलाचरण के अनन्तर शुल्ब में प्रयुक्त विविध मानों, यज्ञवेदियों के निर्माण के लिए रेखागणित सम्बन्धी तथ्य एव वेदियों के स्थान एवं आकार का वर्णन है । व्दितीय परिच्छेद में 86 सूत्र हैं, जिनमे वेदियों के निर्माण के नियम एव मन्त्रों व्दारा निर्मित वेदि के वर्णन प्राप्त होते है । तृतीय परिच्छेद में 323 सूत्र है। इनमें काम्य दृष्टियों के 17 प्रभेदों के लिए वेदि के निर्माण का विशद् विवरण है । डा० थीबो ने अंग्रेजी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन किया है । इसके प्रमुख टीकाकार व्दारकानाथ यज्वा एव वेंकटेश्वर दीक्षित हे।

आपस्तम्ब शुल्बसूत्र आपस्तम्ब कल्प का अन्तिम और तीसवां प्रश्न है । इसमें 6 पटल, 21 अध्याय तथा 223 सूत्र है । प्रथम पटल में वेदियों को रचना के आधारभूत रेखागणितीय सिध्दान्तों का निर्वचन हे । व्दितीय पटल मे वेदि के क्रमिक स्थान तथा उनके सूत्रों का वर्णन है । अन्तिम चार पटलों में काम्य दृष्टि के लिए आवश्यक विभिन्न वेदियों के आकार प्रकार का विशद विवेचन है । इसके उपर- {1} कपर्दिस्वामी {2} करविन्द स्वामी {3} सुन्दर-राज {4} गोपाल की टीकायें उपलब्ध हैं ।

इसके अतिरिक्त मानव शुल्बसूत्र भी उपलब्ध होता है जो गद्य तथा पद्य से मिश्रित छोटा ग्रन्थ है इसमें अनेक नवीन वेदियों का वर्णन मिलता है जो पूर्वोक्त ग्रन्थों में नही मिलता । इसमें सुवर्ण चिति नामक प्रसिध्द वेदि

का बर्णन है ।

उक्त के अतिरिक्त मैत्रायणीय और बाराह शुल्ब सूत्र भी प्राप्त होते है । मैत्रायणीय शुल्ब सूत्र बाराह शुल्ब सूत्र, मानब शुल्ब सूत्र के ही समान है । इसमें विषय की समानता के साथ- साथ श्लोकों की समानता भी प्राप्त होती है । सम्भवत कृष्णयजुः से सम्बध्द होने के कारण इन तीनो मे समानता है ।

धर्मसूत्र

धर्मसूत्र वैदिक साहित्य के एक महत्वपूर्ण अंग हैं क्योंकि धर्मसूत्र सामाजिक जीवन के नियमों, रीति रिवाजों, धार्मिक क्रिया कलापों आचार बिचारों एबं राजाओं के कर्त्तव्यों का बिवेचन करते हैं । भारतीय कानून के ये आदि ग्रन्थ हैं । इनमें बर्णाश्रमधर्म, चारों बर्णों के आचार एवं कर्तव्य, प्रजा के साथ राजा का व्यबहार, प्रायश्चित्त विधान, व्यबहारनिरूपण आदि विषयों का विस्तृत विवेचन है । राज्य व्यबस्था कर विधान, दाय भाग, स्त्रीधन, उत्तराधिकार दण्ड व्यवस्था आदि धर्मसूत्रों के मुख्य विषय हैं । इनके अतिरिक्त खान पान की व्यबस्था, आत्मा का स्वरूप, पुनर्जन्म का सिध्दान्त का विवेचन भी धर्मसूत्रों मे प्राप्त होता है । लौकिक आचार एबं व्यबहार की सामग्री भी इसमें पर्याप्त मात्रा मे है ।

धर्मसूत्रों का रचनाकाल

धर्मसूत्रों के रचनाकाल के सन्दर्भ में विभिन्न मत प्राप्त होते हैं । कतिपय उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि श्रौत एवं गृह्यसूत्रों से पहले धर्मसूत्र विद्यमान थे । श्रौतसूत्र में यज्ञोपवीत धारण की विधि नहीं बतायी गयी है और इसका सङ्केत किया गया है कि यह विधि धर्मसूत्र से ज्ञात है । इसी प्रकार मुखशुद्धि (आचमन) और सन्ध्यावन्दन के नियमों के ज्ञात होने का सङ्केत हैं । परन्तु ये तर्क निर्बल हैं ।

निरुक्त (3/4/5) से प्रकट होता है कि यास्क से पहले पुत्री के रिक्था-धिकार के प्रश्न पर विवाद उत्पन्न हुए थे । इस सन्दर्भ में यास्क ने वैदिक मन्त्र को उद्धृत किया है और एक ऐसे श्लोक का निर्देश किया है जिससे धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का पहले विद्यमान होना स्पष्ट है[1] ।

इस तर्क के आलोक में श्रीकाणे ने निष्कर्ष निकाला कि "धर्मशास्त्र यास्क के पूर्व उपस्थित थे, कम से कम ई0पू0 600-300 के पूर्व तो वे थे ही और ईसा पूर्व की द्वितीय शताब्दी में वे मानव आचार के लिये सबसे बड़े प्रमाण माने जाते थे।"[2]

---

1. तदेतादृक् श्लोकाभ्यामभ्युक्तम् । अङ्गादङ्गात्सम्भवसि स जीव शरदः शतम्। अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः । मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
2. धर्मशास्त्र का इतिहास पृ0 9

ई0पू0 600-300 के पूर्व धर्मशास्त्रों की उपस्थिति इस तर्क से पुष्ट हो जाती है कि धर्मसूत्रों में प्राचीनतम धर्मसूत्र गौतम, बौधायन एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्रों में धर्मशास्त्र और धर्मशास्त्रकारों का बहुश उल्लेख हुआ है। उदाहरणार्थ मनु के मत का नामत उल्लेख हुआ है[1]। इसी प्रकार राजा के व्यवहार के साधन बताते समय कहा गया है कि राजा के व्यवहार के साधन है- वेद धर्मशास्त्र, वेदांग, उपवेद और पुराण[2]।

एवं गौतम ने कई स्थलों पर दूसरे आचार्यों के मतों का निर्देश एके एवं आचार्या कहकर किया है[3]।

गौतम धर्मसूत्र के अतिरिक्त अन्य धर्मसूत्रों में भी धर्मशास्त्रकारों के उल्लेख प्राप्त होते है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे भी कण्व, काण्व, कुणिक, कुत्स, कौत्स, पुष्करसादि, वार्ष्यायणि, श्वेतकेतु, हारीत आदि ऋषियों के नाम आते है।

बौधायन ने भी धर्मशास्त्र शब्द का प्रयोग किया है[4]।

---

1. त्रीणि प्रथमान्यनिर्देश्यान्मनु0 गौ0ध0सू0 3/3/7
2. तस्य च व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राराय गा न्युपवेदा पुराणम् गौ0ध0सू0 2/2/19
3. गौ0ध0सू0 1/2/15, 1/3/35, 1/4/18
4. तदेतध्दर्मशास्त्रं ना भक्ताय ना पुत्राय ना शिष्याय ना संवत्सरो षिताय दद्यात् 4/5/9

उक्त के अतिरिक्त पत जलि ने 'धर्मशास्त्र च तथा' एवं जैमिनि ने भी पूर्वमीमांसा॰ §6/7/6§ में शुद्रस्य धर्मशास्त्रत्वात् कहकर धर्मशास्त्रों के अस्तित्व को स्वीकारा है ।

उक्त के अतिरिक्त प्राचीन धर्मसूत्रों गौतम, बौधायन एवं आपस्तम्ब में अपाणनीय शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है इससे सिध्द होता है कि ये धर्मसूत्र पाणिनि से पूर्ववर्ती थे । पाणिनि का समय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने पांचवी शती ई०पू० के मध्य माना है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र एवं बौधायन तथा गौतम धर्मसूत्र में निश्चित रूप से अनेक वर्षो का अन्तर रहा होगा ऐसा उनमे वर्णित सामाजिक स्थिति के अध्ययन से पता चलता है । अतएव गौतम बौधा-यन इत्यादि धर्मसूत्रों की उपरी समय सीमा 800 ई० के आस पास रखना असं-गत न होगा ।

वसिष्ठ धर्मसूत्र ने म्लेच्छभाषा के शिक्षण का निषेध किया है- न म्लेच्छभाषा शिक्षेत §6/41§ इससे भासित होता है कि यूनानानियों का सम्पर्क जब भारत से हुआ, उस समय वे विद्यमान थे। यूनानी भाषा से संस्कृत को श्रेष्ठ ठहराने का प्रयोजन और क्या हो सकता है । इस प्रमाण से इस धर्मशास्त्र का समय ई०पू० 300 के आस पास रखा जा सकता है ।

याज्ञवल्क्य ने 20 धर्मवक्ताओं के नाम दिये है[1] । याज्ञवल्क्य का समय 100 ई0पू0 से 300 ई0 माना गया है । अतएव धर्मसूत्र की निचली समय सीमा 200 ई0पू0 तक मानी जा सकती है ।

गौतम धर्मसूत्र

उपलब्ध धर्मसूत्रों में गौतम धर्मसूत्र प्राचीनतम माना जाता है ।इसकी प्राचीनता के कई प्रमाण हैं । यद्यपि गौतम धर्मसूत्र में कोई प्रमाण ऐसा प्राप्त नहीं होता कि जिससे उसकी तिथि निश्चित की जा सके । अपितु आन्तरिक एवं बाह्य प्रमाणों के आधार पर हम उसकी केवल ऊपरी एवं निचली समय सीमा ही निर्धारित कर सकते है । सर्वप्रथम गौतम धर्मसूत्र कार वेदाग पुराण, उपनिषद, वेद, वेदान्त आदि से अनभिज्ञ न थे इनका हवाला गौतम धर्मसूत्र में कई जगह मिलता है । यथा "उपनिषदो वेदान्त· सर्वच्छन्द.स संहिता मधून्यघमर्षणमथर्वशिरो रुद्रा पुरुषसूक्त राजतरौहिणे सामनी बृहद्रथन्तरे पुरुषगतिर्महानाम्न्यो महावैराजं महादिवाकीर्त्यं ज्येष्ठसाम्नामन्यतमद् बहिष्पवमानं कूष्माण्डानि पावमान्य सावित्री चेति पावमाननानि"[2] ।

---

1. मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिरा ।
यमापस्तम्बसंवर्ता. कात्यायनबृहस्पती ।।
पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगौतमौ ।
शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजका.।।
—या0स्मृ0 1/4-5

पुराण का उल्लेख प्राप्त होता है -

लोकवेदवेदाङ्गवित् ।

वाकोवाक्येतिहासपुराणकुशल [2]

अन्य धर्माचार्यों में केवल मनु के मत का उल्लेख महापातकों का वर्णन करते समय गौतम ने किया है ।

" त्रीणि प्रथमान्यनिर्देश्यान्यनु"[3]

इसके आधार पर कहा जा सकता है कि गौतम धर्मसूत्र का प्रणयन मनुस्मृति के पश्चात् हुआ परन्तु मनुस्मृति के आन्तरिक प्रमाण के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान में उपलब्ध मनुस्मृति वह मनुस्मृति नहीं है जिसका उल्लेख गौतम ने किया है क्योंकि मनुस्मृति (3/15) में गौतम का उल्लेख किया गया है और उन्हें उतथ्य का पुत्र बताया गया है ।

गौतम धर्मसूत्र (1/4/17) में यवन शब्द का प्रयोग हुआ है जिससे यह भासित होता है कि गौतम धर्मसूत्र सिकन्दर के आक्रमण की तिथि अर्थात्

---

1. गौ०ध०सू० 1/8/5
2. वही 1/8/6
3. वही 3/3/7

326 ई0पू0 के बाद की रचना है पर अब यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि यवनों से इस देश के लोगों का परिचय 1000 ई0पू0 से ही था।

सिकन्दर का आक्रमण 326 ई0पू0 में हुआ किन्तु प्लेटे के (479 ई0 पू0) युध्द में भारतीय फौजें डेरियस की सेना की अंग थी । इतना ही नही सिकन्दर के आक्रमण से शताब्दियों पहले आर्यो को शक (सीदियन) मद या मद्ग (मीड्स), असुर या असूर्य (असीरियन) पारसीक और पल्लव (पार्थियन) ज्ञात थे ।

जहां तक गौतम के काल का प्रश्न है यह विबादास्पद है किन्तु निम्न तर्कों के आधार पर उसके प्रणयन काल का अन्दाज लगाया जा सकता है।

(1) गौतम का सर्वप्रथम उल्लेख बौधायन धर्मसूत्र में मिलता है[1] ।यहा तक कि गौतम धर्मसूत्र का उन्नीसवा अध्याय विना परिवर्तित रूप में बौधायन धर्मसूत्र में मिलता है और दोनों के बहुत से सूत्र एक दूसरे से मिलते जुलते हैं-यथा

बौधायन 3/10	गौतम 3/1
उक्तो वर्णधर्मश्चाश्रमधर्मश्च (1)	उक्तो वर्णधर्मश्चाऽऽश्रमधर्मश्च ।
अथ खल्वयं पुरुषो याप्येन कर्मणा (2)	अथ खल्वयं पुरुषो याप्येन कर्मणा लिप्यते---(2)
तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न कुर्यादिति (4)	तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न कुर्यादिति मीमांसन्ते (3)
न हि कर्म क्षीयते इति (5)	न हि कर्म क्षीयत इति (5)

इसी प्रकार बौधायन ने गौतम के सूत्रो को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया तथा समूचा अध्याय उद्घृत कर दिया है । इसके अतिरिक्त बौधायन धर्म-सूत्र के 1/3/24-34 तक के सूत्रों से मिलते जुलते है । इससे स्पष्ट होता है कि बौधायन धर्मसूत्र गौतम धर्मसूत्र के बाद के समय की रचना है ।डा० काणे ने बौधायन का समय 500-200 ई०पू० माना है । अत इससे गौतम की निचली समयसीमा निर्धारित होती है ।

§2§ वसिष्ठ धर्मसूत्र में भी गौतम धर्मसूत्र से सामग्री ली गयी है जिससे यह अनुमान किया जाता है कि यह गौतम के बाद की रचना है ।वसिष्ठ धर्मसूत्र में दो स्थानो 4/34 एव 4/36 में गौतम का उल्लेख है एव गौतम धर्म-सूत्र का उन्नीसवां अध्याय अल्पपरिवर्तित रूप में वसिष्ठ धर्मसूत्र में मिलता है । इसके अतिरिक्त वसिष्ठ धर्मसूत्र के कई सूत्र गौतम धर्मसूत्रों में आये हुए सूत्रों के समान हैं । अत॰ वसिष्ठ धर्मसूत्र गौतम धर्मसूत्र से बाद की रचना है । वसिष्ठ ने अपने धर्मसूत्र मे म्लेच्छ भाषा के शिक्षण का निषेध किया है " न म्लेच्छभाषां शिक्षेत §6/4।§ इससे स्पष्ट होता है इस धर्मशास्त्र का समय ई०पू० 300 के आस पास रखा जा सकता है । अतएव उक्त से स्पष्ट है कि गौतम धर्मसूत्र 300 ई०पू० से पहले की रचना है एवं गौतम धर्मसूत्र मे कई एक अपाणिनीय रूप पाये जाते है,यथा व्दाविंशात् के स्थान पर व्दाविंशते॰ आया है।

1॰ गौ० ध० सू० 1/2/14

एवं गौतम धर्मसूत्र में ब्राह्मणवाद पर बुध्द अथवा उनके अनुयायियों व्दारा किये गये धार्मिक आक्षेपों की ओर कोई संकेत नहीं मिलता ।

उक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि गौतम धर्मसूत्र ई०पू० 400-600 के पहले रचा जा चुका था । कुमारिल भट्ट के अनुसार गौतम धर्मसूत्र का सम्बन्ध सामवेद से था[1] । गौतम का सामवेद से सम्बन्ध आन्तरिक प्रमाणों से भी पुष्ट होता है । गौतम धर्मसूत्र के अध्याय 26 के सूत्र शब्दशः सामवेद के सामविधान ब्राह्मण से उद्धृत किये गये हैं एवं गौतम धर्मसूत्र में §1/52§ में पाच व्याहृतियां साम से उद्धृत की गयी हैं ।

एवं चरणव्यूह §3/1§ की टीका से पता चलता है कि गौतम साम-वेद की राणायनीय शाखा के नौ उपविभागों में से एक उपविभाग के आचार्य शाखाकार थे । एवं सामवेद के गोभिलगृह्यसूत्र ने भी गौतम को प्रमाण स्वरूप माना है एव सामवेद के लाट्यायन श्रौतसूत्र तथा द्राह्यायण श्रौतसूत्र§1/4/17, 9/3/15§ में गौतम का उल्लेख मिलता है । उक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि गौतम धर्मसूत्र का सामवेद के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था ।

गौतम धर्मसूत्र का कई बार प्रकाशन हुआ है । डा०स्टेन्जलर ने इसका सम्पादन दि इंस्टीट्यूटस आफ गौतम नाम से लन्दन से 1876 में किया और

---

1. तन्त्रवार्तिक §बनारस संस्करण§ पृ० 179

कलकत्ता से भी 1876 में आनन्दाश्रम संस्करण जिसकी हरदत्त की टीका है। प्रकाशित हुआ। इसका एक संस्करण मैसूर से भी निकला जिसमें मस्करी का भाष्य है एव गौतम धर्मसूत्र का अंग्रेजी अनुवाद ब्यूहलर की भूमिका के साथ सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट सीरीज की दूसरी जिल्द में प्रकाशित है [1]। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य टीकाकारों का भी उल्लेख पाया जाता है। हारलता में अनिरूध्द ने जो अद्भुत सागर के लेखक नगराज बल्लालसेन के गुरु थे, लिखा है कि असहाय ने गौतम धर्मसूत्र पर एक भाष्य लिखा है एव याज्ञवल्क्यस्मृति के टीकाकार विश्वरूपने भी यही बात कही है[2]।

बौधायन धर्मसूत्र

बौधायन धर्मसूत्र के रचयिता के विषय में यह उल्लेखनीय है कि स्वय इस धर्मसूत्र में बौधायन के नाम का कई स्थानो पर उल्लेख हुआ है [3]। तथा बौधायन धर्मसूत्र में एक स्थल पर भगवान विशेषण का प्रयोग बौधायन के लिये हुआ है [4]। एव एक स्थल पर (2/9/14) कण्व बौधायन का नामोल्लेख भी हुआ है। इससे स्पष्ट है कि बौधायन धर्मसूत्र की रचना के पहले कण्व बौधायन नाम

---

1. काणे- धर्मशास्त्र का इतिहास पृ0 10

2. काणे- धर्मशास्त्र का इतिहास पृ0 66

3 . बौ0ध0सू0 1/5/13, 1/6/16, 3/5/8

4. बौ0ध0सू0 3/6/20

के आचार्य हो चुके थे । अतएव धर्मसूत्र मे बौधायन के अनेकश. नामोल्लेख होने से यह भासित होता है कि इस धर्मसूत्र का रचयिता कण्व बौधायन का वंशज था । गोविन्द स्वामी ने भी बौधायन को काण्वायन कहा है[1] ।

गौतम धर्मसूत्र के बाद की रचना बौधायन धर्मसूत्र को माना गया है क्योंकि इस धर्मसूत्र में दो बार गौतम का नामोल्लेख है । प्रथमत उत्तर और दक्षिण की प्रथाओं के सन्दर्भ में गौतम के इस मत को उद्धृत किया गया है कि देश में प्रचलन के आधार पर नियम प्रामाणिक नही होते[2] । एव आपत्काल के सन्दर्भ मे गौतम के मत का उल्लेख किया गया है [3] । उक्त के आधार पर हम बौधायन की ऊपरी सीमा निर्धारित कर सकते है । जहां तक निचली समय सीमा का प्रश्न है उसका निर्धारण निम्न तर्कों के आधार पर किया जा सकता है ।

बौधायन धर्मसूत्र में पाणिनि के नियमों का परिपालन हर स्थल पर नही किया गया है ।एवं इस सूत्र का प्रभाव आपस्तम्ब धर्मसूत्र पर पड़ा है जो इसके बाद की रचना मानी जाती है एंव जिसका समय 600 ई० पू० से 300 ई० पू० माना जाता है ।

---

1. बौ०ध०सू० 1/5/13 पर गोविन्द स्वामी की टीका

2. बौ०ध०सू० 1/2/7

3. बौ०ध०सू० 2/5/17

ब्यूहलर ने बौधायन धर्मसूत्र को आपस्तम्ब की अपेक्षा लगभग 200 वर्ष पहले का माना है । इस प्रकार सामान्यत. बौधायन धर्मसूत्र का समय 500-200 ई0पू0 माना गया है ।

बौधायन कहाँ के निवासी थे इस सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है । ब्यूहलर[1] ने निम्न तर्कों के आधार पर दक्षिण भारत का माना है ।

§1§ बौधायनीय ब्राह्मण दक्षिण भारत में पाये जाते हैं ।

§2§ बौधायन ने समुद्रयात्रा एव समुद्र व्यापार पर लगने वाले कर का उल्लेख किया है[2] ।

§3§ बौधायन ने समुद्र सयान को पतनीय कर्म माना है जिन्हें उत्तर के लोग करते हैं[3] ।

डा0 काणे का विचार है कि "बौधायन ने दक्षिणापथ के लोगों को मिश्रित जातियों मे गिना है, अत वे दक्षिणी नही हो सकते, क्योंकि वे अपने को नीच जाति मे क्यों रखते" परन्तु यह मत समीचीन नहीं है अपितु बौधायन दक्षिण भारतीय थे क्योंकि दक्षिण भारत के अनेक राजाओं ने बौधायनीय शाखा में ब्राह्मणों के नाम कई दान पत्र लिख हैं । इससे बौधायनीयों

---

1. सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट खण्ड 14 पृष्ठ 13

2. बौ0ध0सू0 1/18/13

का दक्षिण भारतीय होना सिध्द होता है एवं बौधायन ने तैत्तिरीय आरण्यक के आध्र पाठ का ही उपयोग किया है ।

सर्वप्रथम 1884 ई0 में डा0 हूल्श ने लिपजिंग मे बौधायन धर्मसूत्र प्रकाशित किया । आनन्दाश्रम स्मृति संग्रह । मैसूर संस्करण 1907 में छपा । इस संस्करण में गोविन्द स्वामी की विवरण नामक टीका समविष्ट है एव इसका अग्रेजी अनुवाद भूमिका के साथ ब्यूहलर ने किया है जो सेक्रेड बुक आंफ दी ईस्ट सीरिज के भाग 14 में प्रकाशित है ।

हिरण्यकेशि धर्मसूत्र

हिरण्यकेशि धर्मसूत्र हिरण्यकेशि कल्प का 26वां एव 27वा प्रश्न है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र से अनेकों सूत्र ज्यों के त्यों हिरण्यकेशि ने अपने धर्मसूत्र में ग्रहण कर लिये है । अत यह स्वतन्त्र सूत्र ग्रंथ नही कहा जा सकता ।

डा0 काणे के अनुसार[1] "हिरण्यकेशियों का सम्बन्ध तैत्तिरीय शाखा के खाण्डिकेय भाग के चरण से है । इनकी शाखा आपस्तम्बीय शाखा के बाद की है । चरणव्यूह के भाष्य में उध्दृत महार्णव के अनुसार हिरण्यकेशी लोग सह्य पर्वत तथा परशुराम क्षेत्र {अर्थात् कोंकण} के निकट के समुद्रतट से दक्षिण

---

1. डा0 काणे- धर्मशास्त्र का इतिहास पृ0 20

पश्चिम दिशा में पाये जाते थे । आज के रत्नागिरि जिले के बहुत से ब्राह्मण अपने को हिरण्यकेशी कहते हैं।"

परन्तु हिरण्यकेशि सूत्र में दक्षिण भारत के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं प्राप्त होता है अपितु हिरण्केशि गृ०सू० ने सीमन्तोनयन संस्कार के सन्दर्भ में गंगा का उल्लेख किया है[1] ।

वसिष्ठ धर्मसूत्र

मनु एवं याज्ञवल्क्य ने वसिष्ठ को धर्म प्रमाण माना है और स्मृतिकार एवं टीकाकारों ने बहुधा इस धर्मसूत्र से धर्म के सन्दर्भ में उद्धरण दिये हैं ।

गौतम, बौधायन एवं आपस्तम्ब की श्रृंखला में यह धर्मसूत्र एक बाद की कड़ी है क्योंकि वसिष्ठ धर्मसूत्र ने अपने से पूर्व रचे गये उक्त धर्मसूत्रों से अनेक सामग्रियां ग्रहण की है ।

यह धर्मसूत्र अनेक तथ्यों का संग्रह है । वैदिक संहिताओं के अलावा ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् एवं वेदाङ्गों से उद्धरण लिये हैं एवं व्याकरण, ज्योतिष, आचार एवं व्यवहार का अद्भुत समन्वय इस सूत्रग्रन्थ में है ।

---

1. सोम एवं नो राजे व्याहुर्ब्राह्मणी: प्रजा: ।
विवृन्तचक्रा आसीनास्तीरे तुभ्यं गंगे ।। हि०गृ० 2/1/3

कुमारिल के मतानुसार वसिष्ठ धर्मसूत्र का अध्ययन विशेषत ऋग्वेद के विद्यार्थी किया करते थे । काणे के अनुसार मूलत वसिष्ठ धर्मसूत्र एक स्वतन्त्र रचना थी कालान्तर में ऋग्वेद के विद्यार्थियो ने उसको अपना लिया क्योंकि ऋग्वेद के केवल आश्वलायन श्रौत एव गृह्यसूत्र मिलते है[1] ।

वसिष्ठ धर्मसूत्र में गौतम धर्मसूत्र से सामग्री ली गयी है । इसमे दो स्थानों 4/34 एवं 4/36 में गौतम धर्मसूत्र का उद्धरण है । इसके अतिरिक्त गौतम धर्मसूत्र का उन्नीसवाँ अध्याय वसिष्ठ धर्मसूत्र में बाइसवें अध्याय के रूप में आता है । इससे यह सिध्द होता है कि वसिष्ठ धर्मसूत्र गौतम धर्मसूत्र से बाद का है ।

इसी प्रकार वसिष्ठ धर्मसूत्र आश्वलायन,शाखायन श्रौतसूत्र एव पार-स्कर गृह्यसूत्र के बाद की रचना सिध्द होती है कि क्योंकि उक्त रचनाओं के बहुत से सूत्र वसिष्ठ धर्मसूत्र में प्राप्त होते है ।

एवं वसिष्ठ ने अपने धर्मसूत्र में म्लेच्छ भाषा के शिक्षण का निषेध किया है- न म्लेच्छभाषा शिक्षेत (6/41) इससे ज्ञात होता है कि यूनानी आक्र-मण के बाद यूनानियों का सम्पर्क जब भारत से हुआ, उस समय वे विद्यमान थे अतएव उनका समय ई0पू0 300 के आस पास रखा जा सकता है ।

बिष्णु धर्मसूत्र

विष्णु धर्मसूत्र में 100 अध्याय है । यह धर्मसूत्र परमदेव व्दारा प्रणीत माना गया है जब कि यह बात अन्य धर्मसूत्र के साथ नही पायी जाती है । यह धर्मसूत्र यजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बन्धित है ।

विष्णु धर्मसूत्र का काल निर्धारण अत्यन्त दुरुह कार्य । यह महत्व-पूर्ण है कि मनुस्मृति और इस धर्मसूत्र में 160 स्थल बिल्कुल समान हैं ।इसलिए कुछ विव्दान यह मानते है कि मनुस्मृति से अनेक उदधरण बिष्णु ने लिये है । इसी प्रकार बिष्णु धर्मसूत्र के बहुत से सूत्र याज्ञवल्क्यस्मृति के समान है । इस सम्बन्ध में डा० जाली का मत है कि विष्णु से याज्ञवल्क्य ने शरीर बिज्ञान सीखा, किन्तु सच्चाई यह है कि चरक एव सुश्रुत पहले ही शरीर शास्त्र पर अपना ग्रन्थ लिख चुके थे । सम्भव हो सकता है इन दोनो ने चरक एव सुश्रुत संहिता से शरीर विज्ञान सम्बन्धी सूत्र उद्धृत किये हों । वस्तुत यह मनु एवं याज्ञवल्क्य के बाद की रचना है क्योंकि बिष्णु धर्मसूत्र के बहुत से अध्याय यथा तृतीय एव चतुर्थ से मनु एवं याज्ञवल्क्य से मिलते सिध्दान्त के सूत्र निकाल दिये जायें तो बिष्णु धर्मसूत्र के इन अध्यायों में कोई महत्वपूर्ण बात नही रह जायेगी ।

बिष्णु धर्मसूत्र की वैजयन्ती नामक टीका जिसके लेखक नन्द पण्डित है एकमात्र ज्ञात टीका है । परन्तु काणे ने मत व्यक्त किया है कि कदाचित

को बातें सरस्वती विलास ने कई बार उध्दृत की है [1] ।

अन्य लघु धर्मसूत्र

(1) हारीत धर्मसूत्र - धर्मसूत्रों की परम्परा में हारीत का नाम प्रमुख धर्मशास्त्रकारो के साथ आदर पूर्वक लिया जाता है । बौधायन, आपस्तम्ब एव वसिष्ठ जैसे सूत्रकारो ने भी हारीत के सूत्रों को प्रमाण स्वरूप उद्धृत किया है [2] ।

हारीत धर्मसूत्र पूरा नहीं प्राप्त है फिर भी इसकी प्राचीनता एवं विशिष्टता का आभास इससे मिल जाता है । कुमारिल ने तन्त्र - वार्तिक में गौतम के साथ हारीत की गणना की है । इससे लगता है कि यह प्रमुख धर्मसूत्र रहा होगा।

हारीत धर्मसूत्र में कफेल्ल नामक कश्मीरी शब्द आया है जिस आधार पर हारीत को कश्मीरवासी माना जाता है [3] । डा0 पी0वी0काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में लिखा है कि एक हस्तलिखित प्रति हारीत धर्मसूत्र की

---

1. काणे- धर्मशास्त्र का इतिहास पृ0 30
2. धर्मशास्त्र का इतिहास पृ0 25
3. पालङ्क्या -नालिका-पौतीक-शिगु-सुमुक-वार्ताक-भूस्तृण-कफेल्ल माष-मसूर-कृतलवणानि च श्राध्दे न दद्यात् (हारीत)इस पर हेमादि का कथन है-कफेल्ल

नासिक निवासी स्व0 वामनशास्त्री इस्लामपुरकर को मिली थीक जो अभी तक प्रकाश में नहीं आई है ।

हारीत को कृष्ण यजुर्वेद का सूत्रकार माना जाता है, किन्तु उन्होंने सभी वेदों से उध्दरण लिये हैं । इससे ज्ञात होता है कि वे किसी एक वेद से सम्बन्धित नही थे ।

हारीत धर्मसूत्र में गद्य के अनुष्टुब एव त्रिष्टुब् छन्द का प्रयोग है । इसका रचनाकाल 500 ई0 पू0 से 300 ई0 पू0 माना गया है [1] ।

बैखानस धर्मप्रश्न

महादेव ने सत्याषाढ-श्रौतसूत्र पर लिखित अपनी वैजयन्ती नामक व्याख्या में कृष्ण यजुर्वेद के छः श्रौतसूत्रों के अन्तर्गत बैखानस की चर्चा की है। अन्य धर्मसूत्रों में बैखानस शब्द वानप्रस्थ के लिए आया है [2]। किन्तु मनु के

---

1. डा0 काणे धर्मशास्त्र का इतिहास पृष्ठ 25
2. ब्रह्मचारी गृहस्थोभिक्षुर्वैखानस ﴾गौ0ध0सू0 3/2/1﴿

अनुसार वैखानस वह है जो वैखानस शास्त्र का मानने वाला हो[1] । इस धर्मसूत्र में तीन प्रश्न है एवं 41 अध्याय है । प्रथम प्रश्न में चारो वर्णों, चारो आश्रम और ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ के कर्त्तव्य वर्णित है । दूसरे प्रश्न में वानप्रस्थ आश्रम का विस्तार पूर्वक वर्णन है । तीसरे प्रश्न में गृहस्थ एव सन्यासी के आचार नियम वर्णित हो ।

उक्त धर्मसूत्रों के अतिरिक्त अत्रि, उशना, कण्व एव काण्व, कश्यप, गार्ग्य, च्यवन, जातूकर्ण्य, देवल, पैठनसि, बुध, बृहस्पति, भरद्वाज एव शातातप के धर्म सूत्रकार के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है ।

---

1. वैखानसमते स्थित । मनु 6/21

द्वितीय अध्याय

व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

द्वितीय अध्याय

आपस्तम्ब धर्मसूत्र का सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से है । आपस्तम्बीय कल्पसूत्रों के समग्र सकलन में तीस प्रश्न है । प्रश्न । से 24 तक श्रौतसूत्र, प्रश्न 25 में परिभाषा । प्रश्न 26 में गृह्यसूत्र के मन्त्र प्रश्न 27 में गृह्यसूत्र एवं प्रश्न 28-29 में धर्मसूत्र एव प्रश्न 30 में शुल्बसूत्र है ।

शुक्ल यजुर्वेद से सम्बध्द चरणाव्यूह के अनुसार आपस्तम्ब शाखा खाण्डिकीय शाखा की पाच शाखाओं में से एक थी -तत्र खाण्डिकेया नाम पचभेदा भवन्ति कालेता, हैरण्यकेशी, भारव्दाजी, आपस्तम्बी च(चरण व्यूह)।

अब आपस्तम्ब धर्मसूत्र पर विचार करने से पहले यह प्रश्न उठता है कि क्या आपस्तम्ब के नाम से उपलब्ध श्रौत, गृह्य तथा धर्मसूत्रों का रचयिता एक ही व्यक्ति है । इस विषय पर पाश्चात्य लेखकों ने भ्रष्ट एव भ्रामक कल्पनायें की है वे गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र एवं धर्मसूत्र आदि के रचयिताओं को पृथक - पृथक आचार्य मानते थे। उनके मत मे आपस्तम्बाचार्य, सम्पूर्ण कल्पसूत्र के रचयिता नहीं है । पाश्चात्यो के ये मत श्रध्देय एवं विश्वसनीय नही है । अपितु आपस्तम्ब सम्पूर्ण कल्प के रचयिता है । इसकी पुष्टि मे निम्न तर्क

दिये जा सकते हैं -

§1§ गृह्यसूत्रों में सामान्यत आने वाले अनेक विषय आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में संक्षिप्त रूप से आये हैं एवं अनेक विषयों को छोड़ दिया गया है ।

§2§ धर्मसूत्र में अनेक स्थलों[1] पर यथोक्तम्, यथोपदेशम्,यथापुरस्तात् आदि शब्दों का प्रयोग गृह्यसूत्र को सन्दर्भित करता है ।

1.§क§ अग्निमिध्वा परिसमूह्य समिध आदध्यात्सायम्प्रातर्यथोपदेशम्

- आ०ध०सू० 1/1/4/16

§ख§ उभयत परिषेचनं यथा पुरस्तात्

- आ०ध०सू० 2/2/3/17

§ग§ समावृत्तं चेदाचार्योऽभ्यागच्छेत्तमभिमुखोऽभ्यागम्य तस्योपसङ्गृह्य न बीभत्समान उदकमुपस्पृशेत् पुरस्कृत्योपस्थाप्य यथोपदेशं पूजयेत्

- आ०ध०सू० 2/2/5/4

§घ§ अथाप्युदाहरन्ति

- आ०ध०सू० 2/7/17/7

﴾3﴿ इसी प्रकार गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र को अनेक स्थलों पर सन्दर्भित करता है । यथा मासिक श्राध्द के सम्बन्ध में गृह्यसूत्र ﴾8/21/1﴿ में आया है- " मासि श्राध्दस्यापरपक्षे यथोपदेश काला ।।" अर्थात् मासिक श्राध्दकर्म के लिए उत्तरपक्ष में जैसा विधान किया गया है उसके अनुसार समय होता है । परन्तु गृह्यसूत्र में मासिक श्राध्द के विधान का कोई उल्लेख नहीं मिलता अपितु धर्मसूत्र ﴾2/7/16/4-22﴿ में उक्त कथित मासिक श्राध्दकर्म के सम्बन्ध में विस्तृत विधान मिलता है ।

﴾4﴿ गृह्यसूत्र तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अनेक सूत्र अक्षरश एक है यथा आपस्तम्ब धर्मसूत्र ﴾1/1/2/38 में ब्रह्मचारी के दण्ड का वर्णन "पालाशो दण्डो ब्राह्मणस्य नैयग्रोधस्कन्धजोऽवाङ्ग्रो राजन्यस्य बादर औदुम्बरो वा वैश्यस्य वार्क्षो दण्ड इत्यवर्णसंयोगेनैक उपदिशन्ति ।।" मिलता है । यह सूत्र आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में अक्षरश. वर्णित है । इसी प्रकार आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनेक सूत्र ﴾1/1/1/8, 1/1/4/14﴿ का आपस्तम्ब गृह्य सूत्र के सूत्रों से साम्य है ।

﴾5﴿ आपस्तम्ब ने अपने गृह्यसूत्र में उपनयन के सम्बन्ध में केवल मुख्य मुख्य बाते कहीं है जब कि उपनयन गृह्यसूत्रों का एक मुख्य वर्ण्य विषय है ।

परन्तु आपस्तम्ब अपने धर्मसूत्र में उपनयन की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करते हैं ।

﴾6﴿ इसी प्रकार श्रौतसूत्रों एवं धर्मसूत्र में भी अनेक समानता है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/2/5/17 एव आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 8/4/6 अक्षरशः एक है ।

अतएव उक्त तर्कों के आधार पर यह कथन कि सम्पूर्ण आपस्तम्ब कल्प के रचयिता एक ही व्यक्ति हैं असंगत न होगा।

<u>आपस्तम्बधर्मसूत्र का काल</u> - आपस्तम्ब सूत्र का वास्तविक काल निर्णय एक दुरूह कार्य है परन्तु हम उसकी ऊपरी एवं निचली समय सीमा निर्धारित कर सकते हैं । आपस्तम्ब के समय निर्धारण में निम्न तर्क प्रस्तुत हैं जिनके आलोक में एक मोटी समय सीमा निर्धारित की जा सकती है ।

﴾1﴿ आपस्तम्ब, गौतम धर्मसूत्र के बाद की रचना है । ऐसा आप-स्तम्ब के आन्तरिक साक्ष्य से स्पष्ट है । यद्यपि आपस्तम्ब ने गौतम का नामत. उल्लेख नहीं किया है तथापि गौतम के मत की ओर संकेत कई स्थानों पर किया गया है यथा गौतम धर्मसूत्र ﴾1/2/1﴿ में कहा गया है "प्रागुपनयात्कामचार. कामवाद॰ कामभक्ष." किन्तु आपस्तम्ब इसका विरोध करते हुए कहते हैं कि "श्रुतिर्हि बलीयस्यानुमानिकदाचारात्" इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्मसूत्र के

कई सूत्र गौतम धर्मसूत्र से मिलते जुलते हैं यथा-

आपस्तम्ब धर्मसूत्र	गौतम धर्मसूत्र
काषायं चैके वस्त्रमुपदिशन्ति ।। -1/1/2/41	काषायमप्येके ।। -1/2/19
दृष्टो धर्मव्यतिक्रमस्साहसं च पूर्वेषाम्।। -2/6/13/7	दृष्टो धर्मव्यतिक्रम साहसं चमहताम्। -1/1/3
वत्सतन्तीं च नोपरि गच्छेत् ।। -1/11/31/15	नोपरि वत्सतन्तीं गच्छेत् ।। -1/9/52
ज्वलितां वा सूर्मि परिष्वज्य समाप्नुयात ।। -1/9/24/2	सूर्मी वा श्लिष्येज्ज्वलन्तीम्।। - 2/5/9

अतएव गौतम धर्मसूत्र के बाद की रचना आपस्तम्ब धर्मसूत्र है गौतम धर्मसूत्र का रचना काल 600-400 ई०पू० माना जाता है[1] ।

इसी प्रकार बौधायन धर्मसूत्र भी आपस्तम्ब से पूर्ववर्ती है इसका प्रबल प्रमाण यह है कि आपस्तम्ब ने बौधायन के कई मतों की आलोचना की

---

1. डा०काणे- धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 1 पृ० 13

है एवं आपस्तम्ब व्दारा उपदिष्ट विचार बौधायन के विचारों की अपेक्षा अर्वाचीन और विकसित हैं । उदाहरणार्थ पुत्र के उत्तराधिकार के विषय में बौधायन ने जो मत व्यक्त किये हैं उसकी आलोचना आपस्तम्ब ने की है नियोग के सम्बन्ध में भी आपस्तम्ब का मत बौधायन की अपेक्षा विकसित है क्योंकि बौधायन नियोग की अनुमति देते हैं [1] । परन्तु आपस्तम्ब इस प्रथा का विरोध करते हैं ।

एव आपस्तम्ब धर्मसूत्र एव बोधायन धर्मसूत्र के अनेक सूत्रों में समानता है ।

नाप्सु श्लघमानस्स्नायात्- बौ0ध0सू0- 1/2/3/40

नाप्सुश्लाघमान· स्नायाद्यदि स्नायाद्दण्डवत् प्लवेत्।।

- आ0ध0सू0 1/1/2/30

मिथ्येवदिति हारीतो दधिधानीसधर्मा. स्त्रियस्स्युर्यो हि

दधिधान्यामद्यायत मय आतच्च मन्थति न तच्छिष्टा

धर्मकृत्यॉेंप्युप-भोजयन्ति।। बौ0ध0सू0 2x1/2/11

मिथ्येतदिति हारीत·। दधिधानीसधर्मा स्त्रीभवति ।।

-आ0ध0सू0 1/11/29/13-13

---

1. बौ0ध0सू0 2/4/8

अतएव बौधायन धर्मसूत्र के बाद की रचना आपस्तम्ब धर्मसूत्र है ।

डा०काणे ने बौधायन धर्मसूत्र का समय 500 ई०पू० से 200 ई० पू० माना है [1]।

आपस्तम्ब पूर्वमीमांसासूत्र से परिचित थे । मीमांसा के बहुत से पारिभाषिक शब्द एवं सिध्दान्त इस धर्मसूत्र में पाये जाते हैं अतएव पूर्व मीमांसा आपस्तम्ब धर्मसूत्र से पहले की रचना है ।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अनेक अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं तथा पाणिनि के विदादि गणपाठ (4/1/104) में आपस्तम्ब का नामोल्लेख प्राप्त होता है जिसके आधार पर यह मत प्रमाणित होता है कि आपस्तम्ब पाणिनि से पूर्ववर्ती थे । पाणिनि का समय डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने पांचवीं शताब्दी ई०पू० के मध्य माना है इससे यह स्पष्ट है कि आप-स्तम्ब धर्मसूत्र 500 ई०पू० के पूर्व अस्तित्व में था ।

एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र में श्वेतकेतु का उल्लेख अवर के उदाहरण के रूप में किया गया है[2]। इससे प्रतीत होता है कि वे आपस्तम्ब से बहुत

---

1. डा० काणे धर्मशास्त्र का इतिहास पृ० 16

2. तस्मादृषयो वरेषु न जायन्ते नियमातिक्रमात्।यथा श्वेतकेतु.।।

-आ०ध०सू० 1/2/5/4 6

पहले के नहीं है ।

इस के अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्मसूत्र में बौध्द धर्म का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता है । अत इस आधार पर यह निष्कर्ष निकालना असंगत नहीं होगा कि यह भारत में बौध्द धर्म का परिचय होने से पूर्व की रचना है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में यवनों, कम्बोजों, शकों पह्लवा आदि यूनानी आक्रमण के बाद, भारत के सम्पर्क में आने वाली जातियों का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। इससे यह निष्कर्ष निकालना समीचीन होगा कि यह 300 ई० पू० से पहले की रचना है ।

याज्ञवल्क्यस्मृति ﴾1/4﴿ में आपस्तम्ब को धर्मशास्त्रकारों में गिनाया गया है । याज्ञवल्क्यस्मृति की पर्वीय सीमा द्वितीय शताब्दी ई०पू०मानी गयी है[1] ।

अतएव उक्त विवेचन के आधार पर आपस्तम्ब धर्मसूत्र की समयसीमा

---

1. डा०लक्ष्मी दत्त ठाकुर प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन- पृ० 32

600 ई० पू० से 300 ई०पू० मानना असंगत नहीं होगा ।

<u>आपस्तम्ब का जन्मस्थान</u>.- जन्मस्थान के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है । ब्यूहलर ने आपस्तम्ब को आंध्रदेशीय माना है[1] । इस कथन के प्रमाण में वे निम्न तर्क देते हैं -

§1§ चरणव्यूह में महार्णव नाम की रचना से उद्धृत पद्यों के अनुसार आपस्तम्ब शाखा नर्मदा के दक्षिण में प्रचलित थी-

नर्मदादक्षिणे भागे आपस्तम्बाश्वलायनी ।
राणायनी पिप्पला च यज्ञकन्याविभागिन ।।
माध्यन्दिनी शाङ्खायनी कौथुमी शौनकी तथा।

उक्त के अतिरिक्त महार्णव में आपस्तम्बीय शाखा को स्पष्टत आन्ध्रदेशीय बताया गया है -

आन्ध्रादिदक्षिणाग्नेयी गोदासागर आवधि ।
यजुर्वेदस्तु तैत्तिर्या आपस्तम्बी प्रतिष्ठिता ।।

---

1. सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट भाग 2 भूमिका पृ० 33

(2) आपस्तम्ब के धर्मसूत्र में[1] श्राध्द के प्रकरण में ब्राह्मणों के हाथ में जल गिराने की प्रथा उत्तर के लोगों में प्रचलित है, कहा गया है ।

परन्तु उक्त तर्कों के आधार पर आपस्तम्ब का आन्ध्रदेशीय होना सिध्द नहीं होता है अपितु तन्त्रकाल में आन्ध्र जनपद में आपस्तम्ब शाखा प्रचलित थी केवल यही तथ्य महार्णव से ज्ञात होता है ।

जहा तक उदीच्य शब्द का प्रश्न है ब्यूलहर ने इसका अर्थ नर्मदा के उत्तर के रूप में किया है परन्तु इसका कोई सबल प्रमाण नहीं है । अपितु अमरकोशकार (2/1/6-7) के अनुसार उदीच्य भूमि शरावती नदी के उत्तर पश्चिम में स्थित थी । इसकी पुष्टि काशिका वृत्ति से भी होती है[2] ।

---

1. उदीच्यवृत्तिस्त्वासनगतानां हस्तेषूदपात्रानयनम् ।।

- आ०ध०सू० 2/7/17/17

2. प्रागुदंचौ विभजते हंस क्षीरोदके यथा ।

विदुषां शब्दसिद्ध्यर्थं सा न पातु शरावती ।।

-का०वृ० 1/1/75

इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि शरावती के आधार पर उदीच्य शब्द का अर्थ निर्धारण किया जा सकता है । डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने शरावती का तादात्म्य दृषद्वती के साथ किया है जो आजकल घग्घर या चितांग नदी हो सकती है जो पंजाब के अम्बाला जिले से बहती है[1] ।

अतएव यह कहना कि आपस्तम्ब आन्ध्रदेशीय थे संगत नहीं है अपितु आपस्तम्ब गृह्यसूत्र से यह ज्ञात होता है कि आपस्तम्ब का जन्म स्थान युगन्धर जनपद था क्योंकि गृह्य सूत्र में आपस्तम्ब ने निम्न श्लोक पढ़ा है -

यौगन्धरिरित्येव नो राजा शाल्वीरवादिषु ।
निवृत्तचक्रा आसीनास्तीरेण यमुनेतव ।।

अर्थात् हे यमुने । यौगन्धरि हमारा राजा है, ऐसा गीत विशाल क्षेत्र (चक्र) वाली शाल्वस्त्रियां यमुना के तट पर बैठकर गाती थीं।

प्राचीनकाल में शाल्व जनपद के 6 अवयव थे[2] उदम्बर, तिलखल मद्रकार युगन्धर, भुलिंग और शरदण्ड ।

---

1. डा०अग्रवाल पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० 32

2. उदुम्बरास्तिलखला मद्रकारा युगन्धरा. । × काशिका 4/1/173

महाभारत से विदित होता है कि युगन्धर श्रेष्ठ राज्य था और उन्होंने पाण्डवों के साथ युध्द में भाग लिया था । मेगस्थनीज ने युगन्धर का गन्दरितन नाम से उल्लेख किया है जो भद्रकारो (पारिभद्रक = पालिबोथ्रा) के साथी थे । इन्हीं प्रभुद्रक या परिभद्रक जनपद में किसी चन्द्रकेतु राजा के यहां मेगस्थनीज रहा था। युगन्धरों ने प्रभद्रकों के साथ सिकन्दर से युध्द किया था । ये सभी वर्तमान पंजाब और हरियाणा प्रदेश के अन्तर्गत है[1] ।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि आपस्तम्ब का सम्बन्ध उत्तर भारत से था न कि आंध्र प्रदेश से ।

---

1. द्रष्टव्य- भारतवर्ष का बृहद् इतिहास भाग 2 पृ0 182

तथा पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ0 71-74

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के उपलब्ध संस्करण :-

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के दो संस्करण उपलब्ध है एक ब्यूहलर द्वारा सेक्रेड बुक्स आँफ दी ईस्ट भाग 2 में अंग्रेजी अनुवाद के साथ तथा दूसरा हरदत्त की उज्ज्वला वृत्ति के साथ बनारस से प्रकाशित है । दोनों के सूत्रों की संख्या में अनेक कण्डिकाओं में विभेद है । यथा -

प्रश्न-1

कण्डिका संख्या	ब्यूलहर सूत्र सं०	बनारस संस्करण सूत्र सं०
1	36	37
2	41	41
3	45	45
4	29	29
5	26	26
6	38	37
7	31	31
8	30	31
9	28	28

कण्डिका सं0	व्यूलहर सू0 सं0	बनारस संस्करण सूत्र सं0
10	30	30
11	38	34
12	15	15
13	22	22
14	31	28
15	26	23
16	33	33
17	39	39
18	33	33
19	15	15
20	16	16
21	20	20
22	8	8
23	6	14
24	25	26
25	13	14
26	14	15

कण्डिका स०	ब्यूलहर सू० स०	बनारस संस्करण सू० स०
27	11	11
28	21	21
29	18	18
30	23	26
31	23	27
32	29	29

प्रश्न-2

1	23	23
2	9	11
3	23	23
4	27	28
5	19	18
6	20	20
7	17	17
8	24	14
9	13	13

कण्डिका सं0	व्यूलहर सू0सं0	बनारस संस्करण सू0सं0
10	16	17
11	20	20
12	23	23
13	12	12
14	20	20
15	25	25
16	28	27
17	25	24
18	19	20
19	20	16
20	23	23
21	21	20
22	24	24
23	12	12
24	14	17
25	15	15

कण्डिका सं०	व्यूलहर सू०सं०	बनारस संस्करण सू०सं०
26	24	24
27	21	21
28	13	14
29	15	16

इस प्रकार हम देखते है कि 35 कण्डिकाओं में सूत्र संख्या में कोई अन्तर नही है जब कि 26 कण्डिकाओं में सूत्र संख्या भिन्न है ।

कण्डिका सं0	ब्यूलहर सू0सं0	बनारस संस्करण सू0सं0
26	24	24
27	21	21
28	13	14
29	15	16

इस प्रकार हम देखते है कि 35 कण्डिकाओं में सूत्र संख्या में कोई अन्तर नही है जब कि 26 कण्डिकाओं में सूत्र संख्या भिन्न है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में सूत्रों की पुनरावृत्ति -

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अधोलिखित सूत्रों की पुनरावृत्ति हुई है ।

सूत्र		पुनरावृत्त सू०सं०के रूप में
अथाऽध्याप्य ॥	1/1/1/31	1/1/2/4
प्रोष्य च समागमे॥	1/2/5/14	1/4/14/8
मनसा चाऽनध्याये॥	1/2/5/25	1/3/11/24
स्वैरिकर्मसु च ॥	1/2/8/4	1/3/11/10
तच्छास्त्रैर्विप्रतिषिध्दम्॥	1/4/13/21	2/6/14/10
त्रिरित्येके ॥	1/5/16/4	1/5/16/6
पच्चाऽन्यत् परिचक्षते॥	1/5/17/27	1/11/32/29
नाऽत्यन्तमन्ववस्येत् ॥	1/6/18/7	1/7/21/3
एवमुभौलोकावभिजयति॥	1/7/20/9	2/8/20/23
मिथ्यैतदिति हारीत.॥	1/10/28/16	1/10/29/12
अतएव ब्रह्मचर्यवान् प्रव्रजति॥	2/9/21/8	2/9/21/19
ततोऽथमूले फलै पर्णैस्तृणैरिरिति वर्त रेत्॥ अन्नत. प्रवृत्तानि ॥ ततोऽपो वायुमाकाशमित्यभिनिश्रयेत्॥ तेषामुत्तर उत्तरस्संयोग: फलतो विशिष्ट ॥	2/9/22/2-5	2/9/23/2

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में उद्धृत एव उल्लिखित साहित्य.- आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पूर्ववर्ती व्यापक साहित्य के उल्लेख या उध्दरण मिलते हैं । यद्यपि ऋग्वेद और सामवेद से उद्घृत मन्त्रों की सख्या अत्यल्प है तथापि सभी वेदों के मन्त्र इस धर्म सूत्र में उद्घृत या निर्दिष्ट हैं । जहां तक ऋग्वेद एवं सामवेद के उध्दरणों का सम्बन्ध है निम्न उदाहरण दृष्टव्य हैं:-

सप्तभिः पावमानीभि र्यदन्ति यच्च दूरक इत्येताभिर्यजुष्पवित्रेण सामपवित्रेणाऽऽङ्गिरसेनेति[1] ।।

त्रिमधुस्त्रिसुपर्णा [illegible] चिकेतश्चतुर्मेध· प चाग्निर्ज्येष्ठसामिको वेदाध्याप्यनूचानपुत्र. श्रोत्रिय इत्येते श्राध्दे भुञ्जाना. षड् क्तिपावना भवन्ति[2] ।।

अथर्ववेद का आथर्वण वेद नाम से उल्लेख है-

आथर्वणास्य वेदस्य शेष इत्युपदिशन्ति[3] ।।

---

1. आ०ध०सू० 1/1/2/2

2. वही 2/7/17/22

3. वही 2/11/29/12

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब के तैत्तिरीयचरण का आचार्य होने के कारण, तैत्तिरीय संहिता के अनेक मन्त्रों को आपस्तम्ब ने उद्धृत किया है । यथा-आपस्तम्ब धर्म के सूत्र 1/2/2/2, 2/6/14/11, 1/9/26/7 क्रमश: तैत्तिरीय संहिता के सूत्र 1/2/1, 3/9/4, 2/5/2 पर आधारित है ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण और आरण्यक के मन्त्रों को भी उद्धृत किया गया है । यथा 2/2/3/16, 2/2/4/1-9 ।

वाजसनेयचरण आपस्तम्ब का प्रतिद्वन्दी था, अत आपस्तम्ब ने वाजसनेयों के मतों के उध्दरण दिए हैं । वाजसनेयी ब्राह्मण का निम्न उध्दरण दृष्टव्य है - अथापि वाजसनेयिब्राह्मणाम् ब्रम्हयज्ञो ह वा एष यत्स्वाध्यायस्तस्यैते वषट्कारा यत्स्तनयति यध्दिद्योतते यदवस्फूर्जति यध्दातो वायति । तस्मात् स्तनयति विद्योतमानेऽवस्फूर्जति वाते वा वायत्यधीयीतैव वषट्काराणामच्छम्बट्कारायेति[1] ।।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में उपनिषदों का भी उल्लेख प्राप्त होता है-

सर्वविद्यानामप्युपनिषदामुपाकृत्या नध्ययनं तदह[2] ।।

---

1. आ०ध०सू० 1/4/12/3

2 वही 2/2/5/1

आपस्तम्ब ने निम्न आचार्यों का अपने धर्मसूत्र में स्मरण किया है- काण्व ‹1/6/19/7›, कण्व ‹1/6/19/3›, कुत्स ‹1/6/19/7›, कौत्स ‹1/6/19/4›, पुष्करसदि ‹1/10/28/1›, 1/6/19/7 › , वार्ष्यायणी ‹1/6/19/5›, हारीत ‹1/4/14/11›, श्वेतकेतु ‹1/2/5/6›, मनु ‹2/6/14/11›, प्रजापति ‹2/10/24/7› ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में निम्न ग्रन्थों का भी उल्लेख प्राप्त होता है- ब्राह्मण ‹1/2/7/7, 1/2/7/11, 1/3/10/8, 1/4/12/1, 1/4/12/13, 1/5/17/28, 1/6/18/26, 1/7/20/11, 2/7/17/11, 2/3/7/11, 2/3/7/15, 2/6/13/5›, पुराण ‹1/6/19/13, 1/10/29/7, 2/9/22/24, 2/9/23/3›, भविष्यत्पुराण का नामतः उल्लेख है और उसके श्लोक धर्म सूत्र ‹2/9/24/6› में उदाहृत हैं -

अथ पुराणे श्लोकावुदाहरति-

अष्टाशीतिसहस्त्राणि ये प्रजामैषिर ऋषय:।

दक्षिणेनार्यम्ण: पन्थानं ते श्मशानानिभेजिरे ।

अष्टाशीतिसहस्त्राणि ये प्रजा नैषिर ऋषय.।

उत्तरेणाऽर्यम्ण: पन्थानं तेऽमृतत्व हि कल्पते।।

"पुनस्सर्गे बीजार्था भवन्तीति भविष्यत्पुराणे"

इसी प्रकार उपनिषदों का भी उल्लेख इस सूत्र में मिलता है- "सर्वविधानामप्युपनिषदामुपाकृत्या नध्ययनं तदह " 2/2/5/1. अध्यात्मपटल की अधिकांश सामग्री उपनिषदों से गृहीत है । और वेद के छः अङ्गों के विषय में भी आपस्तम्ब को निश्चित रूप से ज्ञान है 2/4/8/10-11 "षडङ्गो वेद ।" "छन्द.कल्पो व्याकरणं ज्योतिषं निरुक्त शीक्षाच्छन्दोविचितिरिति"।

इसके अतिरिक्त निम्न पद्य महाभारत, अनुशासनपर्व का आपस्तम्ब ने धर्मसूत्र §2/7/7/8§ में उदाहृत किया है-

सम्भोजनी नाम पिशाचभिक्षा नसा पितृन् गच्छतिनो ध देवान्।
इहैव सा चरति क्षीणपुण्या शालान्तरे गौरिव नष्टवत्सा ।।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अध्यात्मपटल में आत्मा के स्वरूप पर जिस प्रकार विचार किया गया है उससे सामान्यत. यह धारणा भी बनती है कि आपस्तम्ब वेदान्त दर्शनपध्दति से भी परिचित थे ।

किन्तु सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं आपस्तम्ब का पूर्वमीमांसा और न्याय के सिध्दान्तों से सम्बध्द उल्लेख । इन सूत्रों में न्यायविद: या न्याय-वित्समय: प्रयोग द्रष्टव्य हैं -

अङ्गानां तु प्रधानैरव्यपदेश इति न्यायवित्समयः

2/4/8/13

अथापि नित्यानुवादमविधिमाहुर्न्यायविदः

2/6/14/13

इस अंशों से मिलते- जुलते सूत्र जैमिनि के पूर्वमीमांसा सूत्रों में भी मिलते हैं, उदाहरणार्थ--

अर्थवादो वा विधिशेषत्वात्तस्मान्नित्यानुवादः

पू०मी०सू० 6/7/30

इसी प्रकार इन दो उदाहरणों की समानता भी दृष्टव्य है--

तस्यां क्रयशब्दः संस्तुतिमात्रम् धर्माध्दि सम्बन्धः। आ०ध०सू० 2/6/13/11	क्रयस्य धर्ममात्रत्वम् पू०मी०सू० 6/1/15
विद्यां प्रत्यनध्यायः श्रूयते न कर्मयोगे मन्त्राणाम्। वही 1/4/12/9	विद्यां प्रति विधानाद्वा सर्वकालं प्रयोग स्यात्कर्मार्थत्वात्प्रयोगस्य 13/3/19
श्रुतिर्हि बलीयस्यानुमानिकादाचारात् वही 1/1/4/8	विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्
यत्र तु प्रीत्युपलब्धितः प्रवृत्तिर्न तत्र शास्त्रमिति	यस्मिन्प्रीतिः पुरुषस्य तस्य लिप्सार्थ-लक्षणाविभक्तत्वात्

इन समानताओं के आधार पर डा० काणे ने यह मत प्रस्तुत किया है कि आपस्तम्ब जैमिनि के मीमासासूत्र से परिचित थे । सभव है कि वे जिस मीमासासूत्र से परिचित थे वह उस समय तक वर्तमान रूप न प्राप्त कर सका हो ।

उक्त के अतिरिक्त पूर्ववर्ती धर्माचार्यों के मतों का उल्लेख आपस्तम्ब ने एके शब्द के प्रयोग द्वारा किया है इस सम्बन्ध में निम्न सूत्र द्रष्टव्य हैं -

1/1/2/41, 1/1/4/17, 1/2/5/22, 1/2/6/4, 1/2/6/33, 1/2/7/21, 1/2/8/7, 1/3/9/3.10.24, 1/3/10/7.12, 1/3/11/3.22.24, 1/4/13/14, 1/4/14/21, 1/5/13/19, 1/5/16/4.6.13 1/6/18/3 , 1/7/21/10.8, 1/11/30/1.3, 2/3/6/8.9.11, 2/5/12/15.23 , 2/6/14/6.9, 2/6/15/10, 2/7/17/14, 2/9/21/12, 2/9/22/6.15, 2/9/23/18, 2/11/29/16

एवं अथाप्युदाहरन्ति शब्द का प्रयोग भी निम्न सूत्रों में प्राप्त होता है -

2/6/19/15. 1/9/25/10. 1/11/30/26. 1/11/32/23

इस प्रकार हम देखते हैं कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र. पूर्ववर्ती साहित्य के अनेक उध्दरणों एवं उल्लेखों से संवलित है ।

तृतीय अध्याय

धर्म का स्वरूप

तृतीय अध्याय

भारतीय संस्कृति का मूलाधार धर्म है जो भारतीयों के वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में पूर्णरूप से प्रतिबिम्बित है । अब यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह धर्म क्या है ?

धर्म शब्द धृ धारणे धातु से मन् प्रत्यय लगाने से बनता है । विव्दान् इसकी व्युत्पत्ति तीन ढंग से करते है ।

(1) ध्रियते लोक: अनेन, अर्थात् धर्म वह है जिससे लोक का धारण किया जाय।

(2) 'धरति धारयति वा लोकम्' अर्थात् धर्म वह है जो संसार को धारण करे ।

(3) 'ध्रियते लोक यात्रा निर्वाहार्थ य. स: धर्म:' अर्थात् धर्म वह है जिसे लोकयात्रा निर्वाहार्थ सभी धारण करे ।

इस प्रकार 'धर्म' शब्द अपने शब्द का परिचय स्वयं देता है । फिर भी विविध शास्त्रों मे इसकी प्रशंसित परिभाषायें पायी जाती हैं ।

ऋग्वेद की ऋचाओं में 'धर्म' शब्द विशेषण या संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुआ है । प्राय: यह शब्द 'धर्मन्' है और इसका प्रयोग नपुंसकलिग में हुआ है[1]। बहुत कम ऋचाओं में पुलिङ्ग रूप में धर्मशब्द प्रयुक्त है ।

अधिकतर वैदिक साहित्य में धर्म का अर्थ है- धार्मिक विधि,धार्मिक क्रिया, निश्चित्त नियम, आचरण नियम जैसा कि इन प्रयोगों से स्पष्ट है-

(1) आ प्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोक देव:,
कृणुते स्वाय धर्मणे[2] ।

उक्त स्थल पर धर्म अलौकिक शक्ति का बोधक है ।

(2) अचित्ती यत्र व धर्मा युयोपिम मा
नस्तस्मादेनसो देव रीरिष:[3]।

---

1. धर्मन् शब्द का प्रयोग निम्नलिखित स्थलों पर हुआ है- ऋग्वेद-1/22/18, 1/16/4, 43,50 , 3/3/1, 3/17/1, 3/60/6, 5/26/6, 5/63/7, 5/72/2, अर्थववेद में 14/1/5। वाजसनेयि संहिता में 10/29 इत्यादि।
-दृष्टव्य गौतम धर्मसूत्र की भूमिका पृ015

2. ऋ0 वे0 4/53/3

3. वही 7/89/5

यहां धर्म नियम या व्यवस्था का द्योतक है । इससे आचरण सम्बन्धी नियम की द्योतित होता है ।

अथर्ववेद में धर्म शब्द का प्रयोग धार्मिक संस्कारों से अर्जित गुण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[1]।

उपनिषद् साहित्य में वैदिक अर्थों के अतिरिक्त धर्म शब्द वर्णाश्रम धर्म के अर्थ में प्रयुक्त हुआ और इस शब्द से आश्रम के आधार एवं नियमों का बोध होने लगा। यह तथ्य छान्दोग्योपनिषद् से सिध्द होता है[2]। ऐतरेय ब्राह्मण में धर्म शब्द समस्त धार्मिक कर्त्तव्यों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[3]।

---

1. ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमोधर्मश्च कर्म च ।
   भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलंजले ।।
   -अथ० 11/9/14

2. त्रयोधर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एवेति व्दितीयो ब्रह्मचार्याचार्य कुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्य कुलेऽवसादयन्।
   सर्व एते पुण्यलोका भ वन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृत त्वमेति ।।
   -छा०उ० 2/23/1

3. धर्मस्य गोप्ता जनीति तमभ्युत्कृष्ठमेवविदभि वेक्ष्यन्नेतयर्चाभि मन्त्रयेत्।।
   -ऐ०ब्रा० 8/7

कालक्रम से धर्मन् शब्द का अर्थ व्यापक होता गया एवं आर्य जाति के आचार विचार का परिचायक बन गया। मानव जीवन के लिए कोई अधिकार, कर्त्तव्य हो, अनुशासन एवं आचरण संहिता हो, समस्त नैतिक कार्य धर्म के अर्थ में समाहित हो गये । अमरकोषकार की दृष्टि में धर्म शब्द के अनेक अर्थ हैं- स्याध्दर्मम स्त्रियां पुण्य श्रेयसी सुकृतंवृष: धर्मस्तु तव्दिधि: धर्मा. पुण्य-मन्यायस्वभावाचारसोभषा ।

निरुक्त ने धर्म शब्द का अर्थ 'नियम' बतलाया है । कणाद ने धर्म को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिसके व्दारा लौकिक सुख और अंतिम लक्ष्य की सिध्द हो सके वही धर्म है[1]।

उक्त के अतिरिक्त मीमांसा सूत्रकार महर्षि जैमिनि ने धर्म की व्याख्या करते हुए वेदविहित प्रेरक लक्षणों को धर्म के रूप में स्वीकार किया है[2]।

श्रीमद्भागवतकार के अनुसार वेद ने जो नियम बनाया है वही धर्म है, उसके विपरीत अधर्म है ।

---

1. यतोऽभ्युदय नि श्रेयससिध्दि: स धर्म:।।

2. चोदना लक्षणो धर्मो धर्म:।।

- पू0मी0सू0 1/1/2

उक्त के अतिरिक्त हमारे शास्त्रकारों ने बार- बार उद्घोषित किया है कि "यागादिरेव धर्मः", "वेद प्रतिपाद्य प्रयोजनवदर्थो धर्मा ", "श्रुति प्रमाणको धर्म.", श्रुति स्मृति विहितो धर्मः" ।

अतएव इस प्रकार भारतीय धर्म का मूल वेद स्मृति को ही माना जाता है । इनके आधार पर जो आचरण आचरित होते हैं, वे ही धर्म हैं ।

आपस्तम्ब ने भी इसी अर्थ में धर्म को लिया है । उनके अनुसार धर्म को जानने वाले, वेद का मर्म समझने वाले व्यक्तियों का मत ही वेद का प्रमाण है [1]। इससे यह भासित होता है कि आपस्तम्ब ने यद्यपि धर्म का मूल प्रमाण वेद को ही माना है तथापि उसके साथ ही धर्मज्ञों की संविदा या सहमति व्दारा की गई आचार व्यवस्था को मुख्य रूप से प्रमाण माना है परन्तु इसके साथ ही आपस्तम्ब ने आचार के सम्बन्ध में सदैव विवेक से काम लेने की सलाह दी है क्योंकि महान पुरुषों में भी कई दुर्बलताएँ होती हैं । पूर्वजों या ऋषियों के कर्मों मे धर्म उल्लघन तथा साहस कर्म का उदाहरण देखने को मिलता है किन्तु उनमें अधिक तेज होने के कारण उनका कर्म पापकर्म नही होता है परन्तु सामान्य मनुष्य में तेज का अभाव होता है इसलिए सामान्य मनुष्य को उनके उदाहरण का अनुकरण नहीं करना चाहिए । उनका अनुकरण करने से

---

1. धर्मज्ञ समय· प्रमाणम्, वेदाश्च ।।

मनुष्य पाप का भागी होता है । अतः सदैव धर्म के सम्बन्ध में स्वविवेक का आश्रय लेना आवश्यक है[1]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म के सम्बन्ध में आपस्तम्ब का विचार अधिक आधुनिक और व्यावहारिक है उनकी दृष्टि में वेद, स्मृति का अन्धानुकरण आचरण मात्र धर्म नहीं अपितु स्वविवेक का आश्रय लेकर उसके पक्ष एवं विपक्ष पर सम्यक्रूपेण विचार करना ही धर्म है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र[2] में धर्म के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि धर्म का आचरण केवल सांसारिक उद्देश्य से अर्थात् यश, लाभ, सम्मान के लिए नहीं करना चाहिए क्योंकि जब धर्म का आचरण इस ध्येय से किया जाता है तब वह फल देने के समय निष्फल हो जाता है । जिस प्रकार फल के लिए आम का पेड़ लगाया जाता है किन्तु उससे छाया और सुगन्धि भी प्राप्त होती है, इसी प्रकार धर्म का आचरण करने पर लौकिक फल भी गौण रूप से उत्पन्न

---

1. दृष्टो धर्मव्यतिक्रम स्साहसं च पूर्वेषाम् । तेषां तेजोविशेषेण प्रत्यवायो न विद्यते । तदन्वीक्ष्य प्रयुञ्जानस्सीदत्यवर ।।

-आ०ध०सू० 2/6/13/7-9

2. वही 1/7/21/1-3

होते हैं । अतएव यदि उक्त प्रकार धर्म का आचरण करने पर लौकिक फल उत्पन्न हो जाते हैं तो सूत्रकार का मन्तव्य है कि इस प्रकार के उत्पन्न लौकिक फल ,यश, लाभ,सम्मान आदि को गौण रूप में ही स्वीकार करना चाहिए प्रमुख फल के रूप में नही । अपितु प्रमुख फल तो आत्मा का साक्षात्कार है ।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब का कथन है कि यदि धर्मों के आचरण से लौकिक फल नहीं उत्पन्न होते तो भी धर्म की हानि नही होती अपितु धर्म का आचरण धर्म के लिए करना चाहिए । इससे यह स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में यदि व्यक्ति अपने आचरण में तत्पर रहता है और उसे यश लाभ, सम्मान इत्यादि लौकिक फल प्राप्त नहीं होते हैं तो यह नहीं समझा जा सकता है कि वह अपने धर्म में निष्ठ नहीं है ।

आपस्तम्ब ने अपने धर्मसूत्र में धर्म का आडम्बर करने वालों से सतर्क और सावधान किया है । उनका कथन है कि दुष्टों, शठों,नास्तिक, वेद-ज्ञानहीन व्यक्तियों के वचनों से कुपित नहीं होना चाहिए और उनके धोखे में नही पड़ना चाहिए[1] ।

---

1. अनसूयुर्दुष्प्रलम्भः स्यात् कुहकशठनास्तिकबालवादेषु ।।

-आ०ध०सू० 1/7/20/5

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्म एवं अधर्म के पार्थक्य में स्वविवेक पर जोर देते है क्योंकि उनके अनुसार धर्म अधर्म स्वयं आकर इस प्रकार नहीं कहते हैं कि हम यहाँ है अर्थात् धर्म और अधर्म अपना परिचय स्वयं नहीं देते धर्म एवं देवता गन्धर्व और पितृगण भी यह नहीं बताते कि यह धर्म और यह अधर्म तथा धर्म और अधर्म का स्वरूप प्रत्यक्ष आदि से नही जाना जाता[1] है ।

अब यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि धर्म एवं अधर्म में पार्थक्य कैसे सम्भव है जिसके आधार पर कपट आचरण करने वालों के वचनों से बचा जा सके । इसका समाधान करते हुए आपस्तम्ब का कथन है कि जिस कार्य को आर्य लोग उत्तम कहते है, वह धर्म है और जिस कार्य की निन्दा करते हैं वह अधर्म है[2]।

---

1. न धर्माधर्मौ चरत 'आवं स्व' इति, न देवगन्धर्वा न पितर इत्याचक्षतेऽयं धर्मोऽयमधर्म, इति ।।

   -आ०ध०सू० 1/7/20/6

2. यत्त्वार्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मो, यं गर्हन्ते सोऽधर्मः।।

   -वही 1/7/20/7

इससे स्पष्ट है कि आर्य लोगों की दृष्टि में जो उत्तम आचरण है वे धर्म है तथा जिन आचरणों की वे निन्दा करते हैं वह अधर्म है ।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्मसूत्र में धर्म उस आचार को माना गया है, जिसे सभी स्थानों पर विनयशील वृध्द, जितेन्द्रिय, लोभहीन, दम्भहीन आर्यों व्दारा एकमत से स्वीकार किया गया हो[1]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आपस्तम्ब की दृष्टि में धर्म की आधार शिला आचार है ।

भारतीय संस्कृति का मूल आधार आचार ही माना गया है । आचार के आधार पर ही हिन्दू समाज का निर्माण हुआ था और जब तक व्यावहारिक जीवन में इस आधार को प्राधान्य मिला तब तक समुन्नति तथा समृध्द का समय बना रहा । वस्तुत: सम्मान दीर्घ जीवन एव सुख का कारण आचार ही है । इसी कारण हमारे धर्मशास्त्र बार-बार आचारवान् बने रहने की शिक्षा देते हैं[2] ।

---

1. सर्वजनपदेष्वेकान्तसमाहितमार्याणां वृत्तं सम्यग्विनीतानां वृध्दानामात्मवतामलोलुपानामदाम्भिकानां वृत्तसादृश्यं भजेत।।

   -आ०ध०सू० 1/7/20/8

2. आचारो भूति जनन आचार: कीर्ति वर्धन.।आचाराद् वर्धते ह्यायुराचारो हन्त्य लक्षणम्।।

ऋषियों की वाणी से यह सिध्द है कि आचार हमारी स्वाभाविक शक्ति का सम्वर्धन करता है । सदाचार से पुष्ट शरीर की प्राप्ति होती है बुध्दि का संमार्जन होता है । चित्त की चंचलता का निवारण होता है । मनु का कथन है कि-

सर्वलक्षणहीनोऽपि य: सदाचारवान्नर: ।
श्रद्धानो नसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ।।

-मनु० स्मृ० 4/158

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिता. प्रजा:।
आचाराध्दनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।।

- मनु०स्मृ० 4/156

वस्तुत. इसी कारण "आचार: परमोधर्म ।।" व०ध०सू० 6/1 कहा गया है ।

इसी कारण से आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी सदाचार पर अत्यधिक जोर दिया गया है और सूत्रकार ने कहा है कि क्रोध, रोष, लोभ, मोह, दम्भ, द्रोह, असत्य भाषण, अतिभोजन, दूसरे पर मिथ्या दोष रोपण, दूसरे के गुणों से जलना, काम, व्देश, इन्द्रियों को वश मे न रखना, मन को समाहित न करना

प्राणियों को विनाश करने वाले दोष हैं और इन दोषों को दूर करने के लिये योग को माध्यम बताया है तथा क्रोधहीनता, हर्ष का अभाव रोष न करना, अलोभ, मोह का अभाव दम्भ का न होना, द्रोह न करना, सत्य वचन भोजन में संयम, पर-दोष कथन से विमुख होना, असूया का अभाव, स्वार्थहीन उदारता, दान आदि न लेना, सरलता, कोमलता भावावेगों का शमन, इन्द्रियों को वश में करना, सभी प्राणियों के साथ प्रेम आत्मा के चिन्तन में मन को समाहित करना, आर्यों के नियम के अनुसार आचरण, क्रूरता के त्याग, सन्तोष को श्रेष्ठ आचरण बताया है तथा कहा है कि जो व्यक्ति इन उक्त सद्आचरणों का शास्त्रोक्त विधि से आचरण करता है वह विश्वात्मा को प्राप्त करता है[1]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आपस्तम्ब ने आचरण को ही परम-लक्ष्य (मोक्ष) का साधन माना है । यही कारण है कि उनके धर्मसूत्र में सदाचार पर अत्यधिक जोर दिया गया है ।

पाप और प्रायश्चित्त की धारणा के पीछे भी आचार के अति-रिक्त क्या हो सकता है ? समाज में जीने और दूसरों को जीने देने का मन्त्र ही

---

1. आ०ध०सू० 1/8/23/5-6

इस लोक में कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकता है । हमारे धर्मसूत्र में व्यक्ति को पर्याप्त महत्व मिला है । किन्तु इस महत्व की शर्त यह है कि वह आचार या धर्म का पालन करे यदि वह आचार का उल्लघन करता है तो उसे जीने का अधिकार नहीं, उसे पाप से तभी मुक्ति मिल सकती है, जब वह प्रायश्चित्त करे, अर्थात् पाप गम्भीर हो तो जीवन का अन्त कर दे, क्योंकि ऐसा व्यक्ति समाज के अन्य लोगों के लिए एक बुरा उदाहरण प्रस्तुत करेगा। प्रायश्चित्त के पीछे सूत्रकार की यह भावना है कि तप, उपवास, होम, धर्म में आस्था उत्पन्न करके पुन: उत्तम आचरण की प्रेरणा देता है ।

वस्तुत. आपस्तम्ब ने प्रत्येक प्रसंग में आचरण की शुध्दता पर जोर दिया है जैसा कि हम आश्रम व्यवस्था के वर्णन एवं वर्णों के कर्त्तव्यों के प्रसंग में देखेंगे ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र में धर्म का स्वरूप कोरा आदर्शवादी नही है बल्कि नैतिकता, सदाचारिता, ज्ञानता और बौध्दिकता का समन्वय है ।

चतुर्थ अध्याय

सामाजिक जीवन

चतुर्थ अध्याय

वर्ण व्यवस्था

भारतीय सामाजिक इतिहास में वर्णव्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है, जो सामाजिक विधान के रूप में हमें आज भी उसका निदर्शन कराता है। वर्ण व्यवस्था की कल्पना भारतीय मनीषियों ने समाज को संगठित करने अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति हेतु किया है क्योंकि मनुष्य अपने वर्णगत कर्म का अनुसरण करके समाज निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है। वह अपना वर्ण के उचित अपने वर्णानुकूल कर्मों को स्वीकार करके सर्वहित वातावरण का निर्माण करते है। जिससे, लोक वर्ण सामाजिक निवृत्ति के मार्ग पर निर्द्वन्द्व होकर निर्विरोध अग्रसर होता है तथा वर्ण धर्म के आधार पर नैतिक एवं व्यावहारिक नियमों का अनुपालन करते हुए अभीष्ट तथा परम पद की प्राप्ति का मार्ग पाता है। इसी पर अग्रसर होकर वह परमानन्द की अनुभूति करता है। अतएव समुदाय समाज और देश के निर्माण तथा अनु-सन्धान में वर्ण व्यवस्था का योगदान अत्यन्त गरिमामय है। वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध मे तीन मत प्रचलित हैं। प्रथम के अनुसार केवल जन्म ही वर्ण का निर्धारक है। द्वितीय मतानुसार कर्म से ही वर्ण का निर्धारण होना चाहिए अर्थात् जिस किसी व्यक्ति में जिस वर्ण के गुण कर्म होंगे वह उसी वर्ण का माना जाय। तृतीय मत दोनों स्थितियों को आवश्यक मानता है। इसके अनुसार जन्म भी उसी वर्ण में होना चाहिए तथा उसी वर्ण के अनुरूप गुण और कर्म होने चाहिए।

ने इस प्रकार से अपने कर्त्तव्य कर्म को करता हुआ वैश्यादि वर्णों को प्राप्त नहीं कर पाता है। हाँ यदि वह इस जन्म में अपने कर्त्तव्य कर्मों का सम्यक्तया निर्वाह करे तो जन्मान्तर में वैश्य हो सकता है। उस जन्म में भी अपने धर्म का निर्वाह करता हुआ पुनः जन्मान्तर में क्षत्रिय हो जाता है, और उस जन्म में भी यथावत् अपने कर्त्तव्य का पालन करता हुआ अगले जन्म में ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य भी ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकते हैं। इसके विपरीत आपस्तम्ब के अनुसार अधर्म का आचरण करने पर श्रेष्ठ वर्ण के व्यक्ति अगले जन्म में उत्तरोत्तर अपने से हीन वर्ण में उत्पन्न होते हैं[1]।

इससे यह भासित होता है, आपस्तम्ब वर्ण का आधार कर्म भी मानते थे परन्तु आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अनेक स्थलों पर जन्म के आधार पर वर्ण-विभेद परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त वर्णपरिवर्तन कितने जन्म जन्मान्तरों में होता है, इस विषय में आपस्तम्ब सर्वथा मौन हैं एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अन्दर कर्म के आधार पर जात्युत्कर्ष और जात्यपकर्ष का एक भी उदाहरण उपलब्ध नहीं होता है। इससे यह निष्कर्ष निकालना असंगत नहीं होगा कि

---

1. अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।।

—आप०ध०सू० 2/5/11/11

आपस्तम्ब ने वर्णव्यवस्था का आधार मात्र जन्म माना है तथा वहां विन्तना पर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के कर्तव्यों एवं अधिकारों का वर्णन किया है ।

वर्णों के कर्त्तव्य, योग्यताएँ एवं विशेषाधिकार - आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वर्णों के कर्त्तव्यों एवं विशेषाधिकारों के विषय में विशिष्ट वर्णन मिलता है ।

आपस्तम्ब ने अध्ययन, यज्ञ करना एवं दान देना ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए आवश्यक कर्त्तव्य माने हैं । अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ कराना तथा यज्ञ करना, दान देना तथा दान लेना, धन का उत्तराधिकार तथा खेतों में अन्न के कणों को बीनना आपस्तम्ब के अनुसार ब्राह्मण के धर्मसम्मत कर्म हैं[1] । क्षत्रिय के कर्म विवेचन में क्षत्रिय के लिये अध्ययन, यज्ञ करना, दान देना, उत्तराधिकार तथा खेतों में अन्न के कणों को बीनना, दण्ड देना एवं युद्ध करना, आपस्तम्ब ने धर्मसम्मत कर्म माने हैं[2] । उक्त के अतिरिक्त अध्ययन, यज्ञ करना, दान देना, उत्तराधिकार तथा खेतों में अन्न के कणों का बीनना

---

1. स्वकर्म ब्राह्मणस्याऽध्ययनमध्यापनं यज्ञो याजनं दानं प्रतिग्रहणं दायाद्यं शिलोञ्छ ॥

—आ०ध०सू० 2/5/10/5

2. एतान्येव क्षत्रियस्याऽध्यापनयाजनप्रतिग्रहणानीति परिहाप्य दण्डयुद्धाधिकानि

खेती पशुपालन तथा व्यापार को वैश्य का धर्म बताया है[1]।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि अध्ययन करना, यज्ञ करना, दान देना, उत्तराधिकार तथा खेतों में अन्न के भागों का जानना किस शास्त्र से धर्म कर्त्तव्य का कर्म हैं। किन्तु अध्यापन, यज्ञ कराना, दान लेना ब्राह्मणों के एवं युद्ध करना एवं दण्ड देना क्षत्रियों के तथा कृषि पशुपालन व्यापार वैश्यों के विशेषाधिकार हैं।

अध्यापन - आपस्तम्ब ने अध्यापन ब्राह्मणों का विशेषाधिकार माना है[2] परन्तु उन्होंने ब्राह्मण छात्र को आपत्ति काल में क्षत्रिय या वैश्य से विद्याध्ययन की अनुमति दी है[3]। इससे यह विदित होता है कि क्षत्रिय एवं वैश्य आचार्य

---

1. क्षत्रियस्य वैश्यस्य दण्डयुद्धवर्जं कृषिगोरक्षवणिज्याऽधिकम्।।

—आ०ध०सू० 2/5/10/8

2. ब्राह्मण आचार्य स्मर्यते तु।।

—वही 2/2/4/25

3. आपदि ब्राह्मणेन राजन्ये वैश्ये वाऽध्ययनम्।।

—वही 2/2/4/26

ना दार्शनिक भी थे किन्तु वे आपस्तम्ब निम्न प्रतिष्ठा के मानते हैं । उक्त कथन से स्पष्ट है कि आपस्तम्ब ने ऐसे ब्राह्मण शिष्य को जो क्षत्रिय या वैश्य गुरु से शिक्षा पा रहा है उसको तब गुरु के पीछे- पीछे चलने की अनुमति दी है जब तक वह उनका शिष्य रहे । अध्ययन समाप्ति के पश्चात् उसे अपने क्षत्रिय या वैश्य गुरु के आगे चलने का निर्देश किया है [1]। ये दो नियम गौतम मनु में भी पाये जाते हैं [2] ।

आपस्तम्ब ने अध्यापन कार्य के अतिरिक्त दान देना एवं दान लेना भी ब्राह्मण के विधिसम्मत कर्म माने हैं । यद्यपि आपस्तम्ब ने अपने धर्म में वर्तमान तीन वर्णों (ब्राह्मण ,क्षत्रिय एवं वैश्यों) से ही दान लेने की अनुमति दी है [3] परन्तु आपस्तम्ब ने आपत्ति के समय अपने धर्म में वर्तमान शूद्र का अन्न भोज्य बताया है[4]। इससे यह ध्वनित होता है कि यदि ब्राह्मण आपत्तिकाल में है तो ऐसा शूद्र जो स्वधर्म का पालन करता है से दानग्रहण किया

---

1. अनुगमन च पश्चात् । तत ऊर्ध्वं ब्राह्मण एवाऽग्रे गतौ स्यात्।।

-आ0ध0सू0 2/2/4/27-28

2. गौ0ध0सू0 7/1/3, मनु0स्मृ0 10/2, 2/241

3. सर्ववर्णानां स्वधर्मे वर्तमानानां भोक्तव्यं शूद्रवर्जमित्येके।।

-आ0ध0सू0 1/6/18/13

4. तस्याऽपि धर्मोपनतस्य ।।

-वही 1/6/18/14

जा सकता है ।

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने सभी पुण्य आचरण वाले व्यक्तियों, दानशील व्यक्तियों से दान लेने की अनुमति दी है[1] । यहां यह दृष्टव्य है कि पुण्य आचरण का तात्पर्य, प्रत्येक वर्ण का स्वधर्म में वर्तमान होना है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के मत से यदि दान बिना मांगे मिले तो स्वीकार नहीं करना चाहिए भले ना वह पाप कर्म करने वाले व्यक्ति द्वारा दिया गया हो । परन्तु आपस्तम्ब ने इस सम्बन्ध में यह प्रतिबन्ध लगाया है कि इस प्रकार के दान की घोषणा करने से न हो एवं चिकित्सक, बहेलिया, शल्यकृन्तक, पाशिन कुलटा स्त्री और नपुंसक द्वारा देय दान अस्वीकार कर देना चाहिए[2] । उक्त से यह ध्वनित होता है कि समाज में बहेलिया, कुलटा स्त्री, चीड़ फाड़ करने वालों की सामाजिक स्थिति अत्यन्त हेय थी तभी तो जहां पाप, कर्म करने वालों का अन्न भोज्य बताया है वहीं उक्त व्यक्तियों का अन्न अभोज्य कहा है ।

---

1. पुण्य इति कौत्स । यः कश्चिद्दद्यादिति वार्ष्यायणि ।।

   -आ० ध० सू० 1/6/19/4-5

2 चिकित्सकस्य मृगयोश्शल्यकृन्तस्य पाशिन । कुलटायाष्षण्डकस्य च तेषामन्नमनाद्यम् ।।

   - वही 1/6/19/14-15

आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने दान देना एक आवश्यक कृत्य माना है तथा आपस्तम्ब ने व्यवस्था दी है कि यदि कोई आचार्य के लिए, दक्षिणा, विवाह, यज्ञ, माता तथा पिता के भरण पोषण का इच्छा, उपनयन आदि के लिये दान मांगे तो दान अवश्य देना चाहिए[1] परन्तु उन्होंने दान क्रिया के उपर प्रतिबन्ध भी लगाया था तथा लिखा है कि अपने आश्रितों [बिना] भरण पोषण करना अपना विशिष्ट उत्तरदायित्व है[] नौकरों एवं दासो की चिन्ता न करके अतिथियों को भोजन बांट देना अनुचित है[2]।

आपस्तम्ब के अनुसार सभी प्रकार के दानों में दल प्रयोग होता है [केवल वैदिक यज्ञों को छोडकर, जिनमें वैदिक उद्धरणों के अनुसार कृत्य किये जाते हैं], सभी प्रकार के दानों में दक्षिणा देना भी अनिवार्य है[3]।

---

1. भिक्षणे निमित्तमाचार्यो विवाहो यज्ञो मातापित्रोर्बुभूर्षाऽर्हतश्च नियम विलोप ।।

 -आ०ध०सू० 2/5/10/1

2. आ०ध०सू० 2/4/9/10-12 द्रष्टव्य, बौ०ध०सू० 2/3/19, या०ज्ञ० 2/175, मनु 11/9-10

3. यथाश्रुति विहारे । ये नित्या भाक्तिकास्तेषामनुपरोधेन संविभागो विहित.।।

 -आ०ध०सू० 2/4/9/9-10

[illegible], पौरोहित्य एवं ज्ञान वृत्तियाँ ही ब्राह्मणों की वृत्ति के बाहर नहीं था। [illegible] ब्राह्मण अन्य लौकिक जीवन वृत्तियों के अतिरिक्त अन्य साधन भी अपनाते थे। आपस्तम्ब ने इस सम्बन्ध में व्याख्या की है।

प्राचीन काल से कुछ ब्राह्मणों को युद्धरत देखा जाता है। गौतम एवं बौधायन ने ब्राह्मणों को आपत्काल में क्षत्रियवृत्ति करने की अनुमति दी है[1] परन्तु आपस्तम्ब का कथन है कि परीक्षा के लिए भी ब्राह्मण को आयुध नहीं ग्रहण करना चाहिए[2]। इससे यह स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब ब्राह्मण द्वारा आपात्स्थिति में भी क्षत्रिय वृत्ति अपनाने के पक्ष में नहीं है परन्तु तत्समय ब्राह्मण क्षत्रियवृत्ति अपनाते थे क्योंकि आपस्तम्ब ने एक स्थल पर[3] क्षत्रिय कर्म करने वाले ब्राह्मण- पुत्र का उल्लेख किया है।

---

1. गौ०ध०सू० 1/25, बौ०ध०सू० 2/2/30

2. यो हिंसार्थमभिक्रान्तं हन्ति मन्युरेव मन्यु स्पृशति न तस्मिन् दोष इति पुराणे ।।

   -आ०ध०सू० 1/10/29/7

3. श्वित्रिशिपिविष्ट. परतल्पगाम्यायुधीयपुत्रशूद्रोत्पन्नो ब्राह्मण्यामित्येते श्राध्दे भुञ्जानाः पङ्क्तिदूषणा भवन्ति।।

   - वही 2/7/17/21

ता ब्रोह्मण कृषि कर सकते थे। धर्मशास्त्र साहित्य में इस सम्बन्ध में एकता नहीं है। यद्यपि ऋग्वेद[1] में ब्राह्मण को छूट प्राप्त है परन्तु मनु (10/83/84) बौधायन 1/5/10/। ने कृषि कर्म से ब्राह्मण को पृथक रहने की सलाह दी है। जहाँ तक आपस्तम्ब धर्मसूत्र का प्रश्न है उसमें ब्राह्मण द्वारा कृषि निषेध का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है अपितु एक सूत्र[2] में स्वयं उत्पादित मूंग, फल आदि के विक्रय को धर्मसम्मत माना है जिससे ध्वनित होता है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में ब्राह्मण द्वारा कृषि कर्म बर्ज्य न था।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब द्वारा ब्राह्मण को आपत्काल में व्यापार एवं वाणिज्य की अनुमति प्रदान की है परन्तु वस्तु विक्रय के सम्बन्ध में अनेक नियन्त्रण थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि ब्राह्मण आपत्ति के समय में उन्हीं वस्तुओं का व्यापार करे जिनका विक्रय करना विहित है एवं जिन वस्तुओं का क्रय विक्रय विहित नहीं है उनका व्यापार न करें[3]।

---

1. ऋग्वेद- 10/34/13

2. अक्रीतपण्यैर्व्यवहरेत ।।

-आ०ध०सू० 1/7/20/16

3. आपदि व्यवहरेत पण्यानामपण्यानि व्युदस्यन्*।

- वही 1/7/20/11

आपस्तम्ब ने इस सम्बन्ध में ऐसी सूची दी है जिनका विक्रय ब्राह्मण के लिए निषिद्ध है यथा- मनुष्य (दास, दासी), रस, रंग, सुगन्धि, अन्न, चमड़ा, गौ, लाख, जल, तिल तथा अन्न (तन्दुल), उमोर उठी (फेनिल) हुई वस्तुएँ (किण्व, शराब या सुरा) पीपर, मरिच, धान्य, माँस, आयुध और अच्छे कर्म करने के कारण उपाधि, प्रशस्ति पत्र आदि के विक्रय की आशा[1]। इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने तिल एवं चावल के विक्रय की विशेष रूप से वर्जना की है[2]। ये सब नियम गौतम (7/8-14) मनु (10/92) बौधायन (2/1/77-78) में भी पाये जाते हैं।

विनिमय के विषय में भी आपस्तम्ब ने उपर्युक्त नियमों के समान नियम बनाये हैं एवं वर्जित वस्तुओं का विनिमय भी वर्जित माना गया है[3] किन्तु आपस्तम्ब ने इस सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट छूटें भी दी हैं यथा अन्न से अन्न का मनुष्यों से मनुष्यों का रसों से रसों का गन्धों से गन्धों का, विद्या से विद्या का[4]। इसी प्रकार कुछ उलट फेर एवं नयी वस्तुओं को सम्मिलित

---

1. मनुष्यान् रसान् रागान् गन्धानन्नं चर्म गवां वशां श्लेष्मोदके तोक्मकिण्वे पिप्पलीमरीचे धान्य मासमायुध सुकृताशां च ।।

   -आ0ध0सू0 1/7/20/12

2. तिलतण्डुलांस्त्वेव धान्यस्य विशेषेण न विक्रीणीयात्।।

   - वही 1/7/20/13

3. अविहितश्चैतेषां मिथो विनिमय ।।

   - वही 1/7/20/14

जाय जहाँ सैनिक उसका वध करें तो ऐसा अपराधी पाप से मुक्त होगा[1]।

उक्त के अतिरिक्त ब्राह्मण के लिये अन्य वर्णों की अपेक्षा प्राय-श्चित्त की अवधि भी कम थी । यथा ब्राह्मण के लिये पर स्त्री से मैथुन करने पर अन्य वर्ण के व्यक्ति के लिये विहित बारह वर्षों के प्रायश्चित्त के स्थान पर केवल 3 वर्षों के प्रायश्चित्त का उल्लेख है[2] ।

उक्त के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना असंगत नहीं होगा कि समाज में ब्राह्मण को सर्वप्रमुख स्थान प्राप्त था तथा अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे परन्तु इतना सब होते हुए भी आपस्तम्ब की दृष्टि में उक्त विशे-षाधिकार केवल योग्य ब्राह्मण के लिये है तभी तो एक स्थल पर उन्होंने कहा है कि जो ब्राह्मण वेदाध्ययन से सम्पन्न न हो उसे बैठने का स्थान, जल तथा अन्न देना चाहिए किन्तु उसके आने पर उठकर उसके प्रति सम्मान न प्रदर्शित किया जाय[3] ।

---

1. प्रथमं वर्णं परिहाप्य प्रथमं वर्णं हत्वा सङ्ग्रामं गत्वा प्रतिष्ठेत तत्रैनं हन्युः।।

   - आ०ध०सू० 1/9/25/12

2. सवर्णायामन्यपूर्वायां सकृत्सन्निपाते पादः पततीत्युपदिशन्ति।।

   - वही 2/10/27/11

शूद्र की स्थिति :- धर्मसूत्रों का अवलोकन करते समय वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में जो बात सबसे अधिक खटकने वाली है वह है शूद्र के प्रति उनका अन्याय और भर्त्सना से भरा हुआ दृष्टिकोण । वैदिक काल से ही शूद्र इच्छानुसार पीटा और मारा जाने वाला तथा केवल सेवावृत्ति मे नियुक्त किया जाने वाला बताया गया है । उसके जीवन की यह नगण्य स्थिति धर्मसूत्रो मे और भी अधिक तुच्छ बन जाती है और वह अपने समूचे अधिकारो से वंचित कर दिया जाता है और अन्य वर्णों की सेवा ही उसका धर्म घोषित कर दिया गया[1]। इसमें भी वैश्य की शुश्रूषा से क्षत्रिय की शुश्रूषा और उसकी अपेक्षा ब्राह्मण की शुश्रूषा शूद्र के लिये अधिक पुण्य देने वाली बतायी गयी है[2] ।

धर्मशास्त्र युग में वेदों का अध्ययन शूद्रों के लिये निषिध्द हो गया था जब कि वैदिक युग मे उसको यह अधिकार प्राप्त था । यजुर्वेद वाज-सनेयी[3] संहिता मे आता है- प्रभु कहते है कि मेरे भक्तों । तुम ऐसा मार्ग पकडो जिससे मेरी यह पवित्र कल्याणी वेदवाणी मनुष्यमात्र तक पहुंचे ।

---

1. शुश्रूषा शूद्रस्येतरेषां वर्णानाम् ।।

- आ०ध०सू० 1/1/1/7

2. पूर्वस्मिन् पूर्वस्मिन् वर्णे निःश्रेयसं भूयः ।।

- वही 1/1/1/8

3. यजु० सं० 26/2

ब्राह्मण ,क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य तुम्हारे अपने और पराये सब तकपहुंचे । इस प्रकार हम देखते हैं कि यहां पर वेदों के अध्ययन का अधिकार विशिष्ट रूप से शूद्रों को दिया गया है ।

आपस्तम्ब के अनुसार शूद्र को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था वस्तुत उनकी दृष्टि में वेदाध्ययन का अधिकार उनको ही प्राप्त था जिनका उपनयन संस्कार हो चुका हो । उन्होंने स्पष्टत: शूद्र के लिये उपनयन संस्कार का निषेध किया है[1]। इतना ही नहीं आपस्तम्ब ने शूद्र की सन्निधि में अध्ययन का निषेध किया है और शूद्र को श्मशानवत् कहकर उसको निन्दित ठहराया है [2] ।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने शूद्र के लिये अग्नि आधान का निषेध किया है[3] । इससे स्पष्ट होता है कि शूद्र वैदिक यज्ञ नहीं कर सकते थे।

शूद्रों के अपराध करने पर अन्य वर्ण के व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक दण्ड

---

1. अशूद्राणामदुष्टकर्मणामुपायनं वेदाध्ययनमग्न्याधेयं फलवन्ति च कर्माणि।।

-आ०ध० सू० 1/1/1/6

2. श्मशानवच्छूद्रपतितौ ।।

- वही 1/3/9/9

3. - वही 1/1/1/6

दिया जाता था[1]। वहाँ शूद्र वर्ण के पुरुष व्दारा अन्य वर्ण की स्त्री से मैथुन करने पर मृत्युदण्ड का विधान था वहीं अन्य वर्ण के पुरुष व्दारा शूद्र वर्ण की स्त्री से मैथुन करने पर केवल देश निकाला का विधान था[2]।

इतना ही नहीं शूद्र जीवन नगण्य माना जाता था जहाँ क्षत्रिय हत्या पर 1000 गायों व बैल का दान एवं वैश्य हत्या पर 100 गायों तथा बैल के दान का विधान था वहीं शूद्र की हत्या का प्रायश्चित्त था केवल 10 गायों तथा बैल का दान[3]। इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने शूद्र के जीवन को पशु पक्षियों के जीवन के तुल्य स्वीकारा है। तथा आपस्तम्ब का कथन है कि कौआ, गिर-गिट, मोर, चक्रवाक, हंस, कुत्ता आदि के मारने पर शूद्र के वध के समान प्राय-श्चित्त करना चाहिए[4]।

---

1. पुरुषवधे स्तेये भूम्यादान इति स्वान्यादाय वध्यः। चक्षुनिरोधस्त्वेतेषु ब्राह्मणस्य।।

   - आ०ध०सू० 2/10/27/16-17

2. नियमारम्भणो हि वर्णीयानभ्युदय एवमारम्भणादयत्वात्। नाश्य आर्यशूद्रायाम्।।

   - वही 2/10/27/7-8

3. क्षत्रियं हत्वा गवां सहस्रं वैरयातनार्थं दद्यात्। शतं वैश्ये। दश शूद्रे। ऋषभश्चाऽत्राधिकः सर्वत्र प्रायश्चित्तार्थः।।

   -वही 1/9/24/1-4

4. आ०ध०सू० 1/9/25/14 एवं 1/9/26/1

उक्त के अतिरिक्त प्रथम तीन वर्णों के गुणवान व्यक्ति की निन्दा करने या उसको अपशब्द कहने पर आपस्तम्ब ने जीभ काटने का उल्लेख किया है[1]। आपस्तम्ब ने कहा है कि जो शूद्र अन्य वर्णों के पुरुषों के साथ वार्त्तालाप में,मार्ग में, चलने में शय्या पर बैठने के आसन पर तथा अन्य कर्मों में समानता का व्यवहार करे उसे डण्डे से पीटने का दण्ड दिया जाना चाहिए[2]। उक्त से स्पष्ट होता है कि समाज में शूद्र की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गयी थी।

इतना सब होते हुए भी आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अनेक स्थलों पर शूद्र के प्रति उदारता एवं मानवता के दर्शन होते हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र[3] का कहना है कि ब्राह्मण को अपवित्र शूद्र के द्वारा लाया हुआ भोजन नहीं करना चाहिए परन्तु साथ ही वह शूद्र को अपने उच्च वर्ण के स्वामी के लिए किसी

---

1. जिह्वाच्छेदनं शूद्रस्याऽऽर्य धार्मिकमाक्रोशतः।।

— आ०ध०सू० 2/10/27/14

2. वाचि पथि शय्यायामासन इति समीभवतो दण्डताडनम् ।।

— वही 2/10/27/15

3. अप्रयतेन तु शूद्रेणोपहृतमभोज्यम् ।।

— वही 1/5/16/22

त्रैवर्णिक आर्य की अध्यक्षता में उसकी देख रेख में भोजन बनाने की भी अनुमति देता है तथा उस समय उसके लिये विहित आचमन के स्थान पर उसी प्रकार के आचमन का विधान था जिसके लिए कि वह वैश्वदेव पर भोजन बना रहा है[1]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने शूद्र का अन्न भोज्य बताया है यदि वह धर्म की प्राप्ति के लिए आश्रित हो[2]। इतना ही नहीं आपस्तम्ब धर्मसूत्र[3] ने ब्रह्मचारी को अपात्र और अभिशस्त {उपपातकी} को छोड़कर सभी वर्णों के व्यक्तियों के घरों से भिक्षा मांगने की अनुमति दी है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र[4] कहता है कि कुछ आचार्यों के अनुसार अतिथि के पैरों को दो शूद्रों को धोना चाहिए । इनमें से एक शूद्र तो उसके पैरों को धोये और दूसरा शूद्र उसके पैरों पर पानी डाले ।

---

1. आर्याधिष्ठिता वा शूद्रास्संस्कर्तार: स्युः। तेषां स एवाऽऽचमनकल्पः।।
 -आ०ध०सू० 2/2/3/4-5

2. तस्याऽपि धर्मोपनतस्य।।
 - वही 1/6/18/14

3. सर्व लाभमाहरन् गुरवे सायं प्रातरमत्रेण भिक्षाचर्यं चरेद्भिक्षमाणोऽन्यत्राऽपपात्रेभ्योऽभिशस्ताच्च ।।
 - वही 1/1/3/25

4 - वही 2/3/6/9-10

उक्त से प्रतीत होता है आपस्तम्ब के समय ब्राह्मण को शूद्र के भी घर मे बने हुए भोजन को ग्रहण करने की अनुमति थी और वह ब्राह्मण के घर रसोइया भी हो सकता था और ब्राह्मण को स्पर्श करने के विषय में शूद्र को किसी प्रकार का निषेध नहीं था।

इतना ही नहीं एक स्थल पर[1] आपस्तम्ब धर्मसूत्र कहता है कि जो विद्या स्त्रियों और शूद्रों की होती है वही विद्या की अन्तिम सीमा है। उसका ज्ञान प्राप्त करने पर ही सभी विद्याओं का ज्ञान पूरा होता है तथा स्त्रियों और शूद्रों की विद्याएं अथर्ववेद के ज्ञान का परिशिष्ट अंश होती हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में शूद्र घृणित न था जितना की परवर्ती युग में होता गया।

वर्णसंकर:- वर्णसंकर या संकर एक ऐसा शब्द है जो जातियों और उप जातियो के लिए धर्मशास्त्रों में खुलकर प्रयुक्त हुआ है । मनुस्मृति[2] में बहुवचन

---

1. सा निष्ठा या विद्या स्त्रीषु शूद्रेषु च। आथर्वणस्य वेदस्य शेष इत्युपदिशन्ति।।

-आ०ध०सू० 2/11/29/11-12

2. मनु० स्मृ० [12/24]

में प्रयुक्त वर्णसंकर शब्द मिश्रित जातियों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है किन्तु मनु (10/40 तथा 5/89) में संकर शब्द मिश्रण या वर्णों के मिश्रण या वर्णों के मिश्रण अर्थ में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। गौतम[1] ने संकर शब्द का प्रयोग किया है और कहा है कि दोनों (ब्राह्मण और राजन्य) पर (मनुष्यों की समृध्दि, रक्षण वर्णों के परस्पर मिश्रण होने से रक्षा)और गुण (गुणों का एकत्र हो या धर्मपालन) निर्भर करते हैं। मिताक्षरा (या0 1/96) ने अनुलोम एवं प्रतिलोम सन्तानों के लिए वर्णसंकर शब्द का प्रयोग किया है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने भी वर्णसंकर जातियों का उल्लेख किया है जो निम्नवत् है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अनुलोम जाति के रूप में केवल उग्र का उल्लेख प्राप्त होता है।

(1) उग्र:- आपस्तम्ब धर्मसूत्र में एक स्थल पर आया है कि आचार्य के आपद्ग्रस्त होने की अवस्था में शिष्य "उग्र" के यहां से दक्षिणा ले सकता है तथा धन भी प्राप्त कर सकता[2] परन्तु आपस्तम्ब ने "उग्र" की उत्पत्ति के सम्बन्ध

---

1. गौ0 ध0सू0 8/3
2. विषमगते त्वाचार्य उग्रत: शूद्रतो वाऽऽहरेत्।।
-आ0ध0सू0 1/2/7/20

में कुछ नहीं कहा है । व्याख्याकार हरदत्त के अनुसार वैश्य पुरुष और शूद्रा स्त्री से उत्पन्न सन्तान उग्र कहलाती है । बौधायन धर्मसूत्र[1] का भी यही मत है । गौतम धर्मसूत्र[2] के अनुसार वैश्य से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न होने वाली सन्तान उग्र कहलाती है तथा इसको "दौष्यन्त" नाम दिया है । साथ ही कुछ आचार्यों के मत का उल्लेख से इसको यवन [गौ०ध०सू० 4/17] भी कहा है।

सह्याद्रिखण्ड एवं शूद्रकमलाक में उग्र को राजपूत तथा जातिविवेक में ग्रावुत कहा गया है[3]। मनु[4] के अनुसार उग्र जाति के व्यक्तियों की शारीरिक चेष्टायें तथा वाणी व्यापार क्रूर होते हैं एवं इसका व्यवसाय बिलों

---

1. बौ० ध० सू० 1/9/4

2. गौ०ध० सू० 4/14

3. डा० काणे- ध० शा० का इति० । पृष्ठ 127

4. मनु स्मृ० 10/9, 10/49-50

रहने वाले प्राणियों को पकड़ना और इनको मारना तथा इसका निवास चैत्यवृक्ष के नीचे, श्मशान पर्वत और वनों के पास है । किन्तु उशनस्[1] ने इसको ब्राह्मण के संसर्ग से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न सन्तान कहा है तथा यह राजा के दण्ड को धारण करने वाला, अपराधियों को दिये गये दण्ड को क्रियात्मक रूप में परिणत करने वाला बतलाया है ।

जहां तक प्रतिलोम जातियों का वर्णन है आपस्तम्ब ने केवल चण्डाल, पौल्कस और वेण का नाम्ना निर्देश किया है[2]।

(क) चाण्डाल- आपस्तम्ब के अनुसार चोर तथा पातकी ब्राह्मण नरक में अनेक यातनाओं को भोग कर इस जन्म में चाण्डाल पैदा होता है । इस पर व्याख्याकार हरदत्त ने चाण्डाल की उत्पत्ति शूद्र पुरुष और ब्राह्मणी स्त्री से मानी है । यही मत गौतम एवं बौधायन का है[3] ।

विष्णु धर्मसूत्र[4] के अनुसार चाण्डाल मृत्युदण्ड प्राप्त अपराधियों को मारकर अपनी जीविका निर्वाह करता है तथा इनका निवास ग्राम के बाहर और इनके वस्त्र मृत व्यक्तियों के वस्त्र होते हैं । मनु (10/12) ने इसको मनुष्यों

---

1. उ०स्मृ० 4।
2. स्तेनोऽभिशस्तो ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यो वा परस्मिँल्लोकेऽपरिमिते निरये वृत्ते जायते चण्डालो ब्राह्मणः पौल्कसो राजन्यो वैणो वैश्यः।।
   -आ०ध०सू० 2/1/2/6
3. गौ०ध०सू० 4/15-16, बौ०ध०सू० 1/9/9

अधम कहा है । या०अ०{1/93} और स्मृत्यर्थसार के अनुसार चाण्डाल सर्वधर्मबहिष्कृत. है अर्थात् वह चारों वर्णों में से किसी भी वर्ण के धर्मों को करने का अधिकारी नहीं है । जाव्ड़ {स्त्रीपुंस ।।6} ने इसको पापिष्ठ कहा है । संक्षेप मे कहा जा सकता है कि चाण्डाल शूद्र की श्रेणी में भी नहीं आता थी तथा इसकी स्थिति शूद्र से भी निकृष्ट थी । इसीलिए आपस्तम्ब[1] ने चाण्डाल को कुत्तों और कौवों की श्रेणी में रखा है ।

{ख} पौल्कस – आपस्तम्ब[1] के अनुसार चोर तथा घातकी क्षत्रिय परलोक में अपने पापों के फल भोगने के बाद 'पौल्कस' जाति में उत्पन्न होते हैं । व्याख्याकार हरदत्त के अनुसार वह शूद्र पुरुष से क्षत्रिया स्त्री में उत्पन्न सन्तति है[2] परन्तु बौधायन धर्मसूत्र[3] के अनुसार निषाद {ब्राह्मण पुरुष + शूद्र स्त्री} पुरुष और वैश्या स्त्री में उत्पन्न सन्तान 'पुल्कस' कहलाती है परन्तु अन्य सूत्र मे उन्होने निषाद और शूद्रा स्त्री के संसर्ग से उत्पन्न माना है । विष्णु धर्मसूत्र[4] के अनुसार वह वैश्य पुरुष से क्षत्रिया स्त्री मे उत्प सन्तान है और इसकी वृत्ति

---

1. आ०ध० सू० 2/1/2/6

2. शूद्रात्क्षत्रियायां जात: पुल्कस: – हरदत्त सूत्र 2/1/2/6 की व्याख्या

3. बौ०ध० सू० 1/8/11 एवं 1/9/13

4. वि०ध०सू० 16/5

शिकार करना है । मनु[1] ने निषाद से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न हुए को पुल्कस कहा है एवं इसका व्यवसाय बिल में रहने वाले सर्प,नकुल और गोधा आदियों को पकड़ना और मारना है ।

[ग] वेण .- आपस्तम्ब[2] के अनुसार चोर तथा पातकी वैश्य परलोक में अपने पापों के फल को भोगने के बाद फलों के नष्ट होने पर वेण जाति में उत्पन्न होते है । व्याख्याकार हरदत्त ने शूद्र और वैश्य की सन्तान वेण कही है । मनु[3] एवं बौधायन के अनुसार यह वैदेहक [वैश्य पुरुष + ब्राह्मण स्त्री] पुरुष से अम्बष्ठ [ब्राह्मण पुरुष + वैश्य स्त्री] मे उत्पन्न होने वाली सन्तति है। तथा इसका व्यवसाय वाद्य यन्त्रों का बजाना है । कुल्लूक [मनु 4/2/5] ने बाँस को फाड़ने के द्वारा अपनी आजीविका चलाने वाले को वेण कहा है।

उक्त प्रतिलोमज जातियों का नाम्ना निर्देश के अतिरिक्त एक स्थल पर आपस्तम्ब धर्मसूत्र में आया है कि बाह्यों के ग्राम के अन्दर आने पर उस दिन अनध्याय रखना चाहिए[4] । व्याख्याकार हरिदत्त ने उग्र निषादादि

---

1. मनु० स्मृ० 10/49, 10/18

2. आ०ध०सू० 2/1/2/6

3. मनु० स्मृ० 10/9, 10/49-50

4. तदहरागतेषु च ग्रामं बाह्येषु ।।

- आ०ध०सू० 1/3/9/18

को बाह्य कहा है[1] । विष्णु धर्मसूत्र में बाह्य शब्द का अर्थ प्रतिलोमज किया गया है । बाह्य की उत्पत्ति के विषय में मनु[2] का कथन है कि जिस प्रकार शूद्र ब्राह्मणी में बाह्य जाति के चण्डाल को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार ब्राह्यचाण्डालादि चातुर्वर्ण्य में चाण्डालादिकों से भी बाह्यतर जाति के व्यक्तियों को उत्पन्न करते हैं । इस प्रकार इन बाह्यों की संख्या 60 प्रतिपादित की है ।

---

1. बाह्या: उग्रनिषादादय: - आ०ध०सू० 1/3/9/18 पर हरदत्त की टिप्पणी।

2. वि०ध० 10/30-31

संस्कार

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्वतंत्र रूप से केवल उपनयन, समावर्त्तन एवं विवाह संस्कारों का ही उल्लेख किया गया है ।

(क) उपनयन:- उपनयन का मौलिक अर्थ है आचार्य के व्दारा बालक का छात्र के रूप में ग्रहण किया जाना यह हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र के निम्न कथन से स्पष्ट होता है "तब गुरु बच्चो से यह कहलवाता है मैं ब्रह्मचर्य को प्राप्त हो गया हूँ, मुझे इसके पास ले चलिए । सविता देवता व्दारा प्रेरित ब्रह्मचारी होने दीजिए[1]"।

अत: अन्य शब्दों में विद्यार्थी के आचार्य के व्दारा ब्रह्मविद्या की शिक्षा देने के लिए स्वीकार किये जाने की विधि उपनयन संस्कार है ।

उपनयन के सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि उपनयन एक संस्कार है, जो उसके लिए किया जाता है जो विद्या सीखना चाहता है, यह ऐसा संस्कार है जो विद्या सीखने वाले को गायत्री मन्त्र सिखाकर किया जाता है[2] । इससे

---

1. अथैनमभिव्याहारयति "ब्रह्मचर्यमागामुप मा नयस्व ब्रह्मचारी भवानि देवेन सवित्रा प्रसूत:"। इति।। हि०गृ० 1/5/2

2. उपनयनं विद्यार्थस्य श्रुतितस्संस्कार:।। सर्वेभ्यो वै वेदेभ्यस्सावित्र्यनूच्यत इति हि ब्राह्मणम्।।

- आ०ध०सू० 1/1/1/9-10

स्पष्ट है कि उपनयन प्रमुखतया गायत्री उपदेश है । गायत्री उपदेश वेद अध्ययन के लिए अत्यधिक आवश्यक था इसीलिए आपस्तम्ब ने ओंकार को स्वर्ग का द्वार माना है तथा वेद का अध्ययन इसी ओंकार शब्द से आरम्भ करने का उल्लेख किया है[1]। इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में वेदाध्ययन के अधिकारी वे ही व्यक्ति हैं जिनका उपनयन संस्कार होता है । उन्होंने शूद्रवर्ण तथा दुष्टकर्म करने वालों को छोड़कर शेष व्यक्तियों के लिए उपनयन का विधान किया है[2]। इससे ध्वनित होता है कि शूद्रवर्ण के व्यक्ति का उपनयन संस्कार हो ही नहीं सकता तथा अन्य तीन वर्णों के व्यक्ति जो दुष्टकर्मरत हैं वे भी उपनयन संस्कार के अधिकारी नहीं हैं ।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने "उपनयनं विद्यार्थस्य" (1/1/1/9) कहा है इससे यह निष्कर्ष निकालना असंगत नहीं है कि आपस्तम्ब ने केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए उपनयन की व्यवस्था की है जो विद्याग्रहण के अभिलाषी हैं । इस प्रकार आपस्तम्ब ने शूद्रवर्ण, दुष्टकर्म करने वाले एवं विद्याग्रहण की

---

1. ओड्कारस्स्वर्गद्वारं तस्माद्ब्रह्माऽध्येष्यमाण एतदादि प्रतिपद्येत ।।

—आ०ध०सू० 1/4/13/6

2. अशूद्राणामदुष्टकर्मणामुपायनं वेदाध्ययनमग्न्याधेयं फलवन्ति च कर्माणि ।।

— वही 1/1/1/6

अभिलाषा से रहित व्यक्तियों के लिए उपनयन का निषेध किया है परन्तु मेक्समूलर[1] ने 'संस्कार गनपति' में उद्धृत आपस्तम्ब के सूत्र 'अथ शूद्राणामुपनयनम् । आपस्तम्ब ।।' के आधार पर यह सिध्द किया है कि आपस्तम्ब के अनुसार शूद्रों को भी उपनयन का अधिकार है, किन्तु मेक्समूलर की यह धारणा गलत है क्योंकि आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार वेदाध्ययन का अधिकारी वही व्यक्ति है जिसका उपनयन संस्कार हुआ हो । आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/3/9/9 में शूद्र को श्मशानवत् समझा गया है तथा श्मशान में वेदाध्ययन वर्जित माना है । अतएव जिस व्यक्ति के समीप वेदाध्ययन नहीं किया जा सकता है वह व्यक्ति स्वयं कैसे वेदाध्ययन का अधिकारी हो सकता है ?

उपनयन संस्कार के पश्चात् प्राचीनकाल में बालक का ब्रह्मचर्याश्रम जीवन प्रारम्भ होता था प्राचीन काल मे आचार्यो की धारणा थी कि विद्यार्थी को पूर्णरूप से जब तक अपना नहीं बना लिया जाता तब तक उसे समीचीन विधि से शिक्षा नहीं दी जा सकती। अतएव इसी धारणा के अनुसार संस्कार में आचार्य उस विद्यार्थी को एक नया जन्म देता है । विद्यार्थी आचार्य का पुत्र हो जाता है।

---

1. हिस्ट्री ऑफ एन्शियन्ट संस्कृत लिटरेचर पृ0 106

पुत्र बनाने की प्रक्रिया का वर्णन अथर्ववेद मे इस प्रकार मिलता है "उपनयन करते हुए आचार्य ब्रह्मचारी को गर्भ मे प्रतिष्ठित करता है तीन दिन तक उदर मे उसका पोषण करता है । उसके उत्पन्न होने पर देवता उसे देखने आते है[1] । "

अत: उक्त से ध्वनित होता है कि आचार्य विद्यार्थी को ज्ञान शरीर देता था। यही भावना आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे दृष्टिगोचर होती है आप-स्तम्ब धर्मसूत्र[2] का कथन है कि आचार्य उपनीत बालक को विद्या से उत्पन्न करता है । विद्या से उत्पन्न होने वाले जन्म श्रेष्ठ होता है तथा उपनयन से ही धार्मिक कृत्य करने का अधिकार आरम्भ होता है ।

यही कारण है कि आपस्तम्ब ने उपनयन संस्कार सम्पन्न करने वाले आचार्य की योग्यता पर विशेष बल दिया तथा अपेक्षा की है कि आचार्य ऐसे व्यक्ति को बनाना चाहिए जिसका जन्म वेदविद्याध्ययन की अविच्छिन्न परम्परा वाले के कुल मे हुआ हो तथा वह सामहित (निषिध्द कर्मों से विरत

---

1. आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त:।
   तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवा:।।
   -अथर्ववेद 11/5/3

2. आ०ध०सू० 1/1/1/16-17, 2/6/15/23-25

तथा विहित कर्मों में मन लगाने वाला हो[1] क्योंकि यदि उक्त गुणों से रहित आचार्य के द्वारा उपनयन कराया जाता है तो आपस्तम्ब की दृष्टि में उपनीत व्यक्ति अन्धकार से निकल कर अन्धकार में ही प्रविष्ट होता है[2]।

आपस्तम्ब ने उपनयन के लिए दो प्रकार की आयु नित्य एवं काम्य का उल्लेख किया है । आपस्तम्ब ने ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए उपनयन हेतु नित्य आयु क्रमश: गर्भ में आठवें वर्ष मे, गर्भ के ग्यारहवे वर्ष में तथा वैश्य की गर्भ के बारहवे वर्ष में मानी[3] है एवं काम्य आयु का उल्लेख निम्नवत् किया है- ब्रह्मवर्चस की कामना रखने वाले का सातवें वर्ष में, दीर्घजीवन की इच्छा वाले का आठवें वर्ष में, तेज की कामना से नवें वर्ष में, अन्न की अभिलाषा वाले को दसवें वर्ष में, इन्द्रियशक्ति चाहने वाले को ग्यारहवें वर्ष में और पशुसम्पत्ति के अभिलाषी का बारहवें वर्ष में उपनयन किया जाना चाहिए[4] ।

---

1. तस्मिन्नभिजनविद्यासमुदेतं समाहितं संस्कर्तारमीप्सेत्।।
   -आ०ध०सू० 1/1/1/12
2. - वही 1/1/1/11
3. - वही 1/1/1/19
4. अथ काम्यानि । सप्तमे ब्रह्मवर्चसकामम् । अष्टम आयुष्कामम् । नवमे तेजस्कामम् । दशमेऽन्नाद्यकामम् । एकादश इन्द्रियकामम्। द्वादशे पशुकामम्।।
   - वही 1/1/1/20-26

आपस्तम्ब ने (1/1/1/19) में स्पष्ट रूप से कहा है कि उक्त आयु की गणना गर्भाधान से होगी, न कि बालक के जन्म से ।

इसी प्रकार गौतम एवं वसिष्ठ ने उपनयन के लिए नित्य एवं काम्य आयु का उल्लेख किया है परन्तु बौधायन धर्म सूत्र में केवल नित्य आयु का ही उल्लेख है, काम्य आयु का नही[1] ।

आपस्तम्ब के अनुसार यदि उक्त उपनयन की अवस्था में किन्हीं कारणों से बालक का उपनयन संस्कार नहीं हो सकता है तो ब्राह्मण बालक के लिए 16 वर्ष, क्षत्रिय के लिए बाइस वर्ष तथा वैश्य के लिए चौबीस वर्ष की आयु उपनयन के लिए अन्तिम अवधि है[2]।इस समयावधि के भीतर उपनयन संस्कार न कराने वाला व्यक्ति पतित सावित्रिक कहलाता है तथा समाज में वह विगर्हित

---

1. बौ०ध०सू० 1/2/8-10, गौ०ध०सू० 1/6-8, 12

2. आ षोडशाद्ब्राह्मणस्यानात्यय आ द्वाविंशात्क्षत्रियस्याऽऽचतुर्विं-शाद्वैश्यस्य यथा व्रतेषु समर्थः स्याधानि वक्ष्याम:।।

- आ०ध०सू० 1/1/1/ 27

हो जाता है[1]। अतएव आपस्तम्ब ने ऐसे व्यक्ति के लिये वेदाध्ययन का निषेध किया है तथा यज्ञों में जाने एवं पतित सावित्रिक व्यक्तियों के साथ सामाजिक सम्बन्ध यथा मिलने जुलने, भोजन और विवाह का वर्जन किया है[2] परन्तु आपस्तम्ब ने इन पतितसावित्रीक व्यक्तियों के लिये प्रायश्चित्त का विधान किया है जिसको कर लेने पर वे उपनयन संस्कार के अधिकारी हो सकते थे[3]।

उपनयन के लिये वर्णानुसार भिन्न-भिन्न समय का उल्लेख धर्मसूत्र में प्राप्त होता है । यथा वसन्त ऋतु में ब्राह्मण, ग्रीष्म में क्षत्रिय, शरदऋतु मे वैश्य का उपनयन किया जाना चाहिए[4]।

---

1. अत उध्र्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृता:।
   सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिता:।।

   - मनु०स्मृ० 2/39

2. तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति च वर्जयेत्तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तं व्दादशवर्षाणि त्रैविधकं ब्रह्मचर्यं चरेदथोपनयनं तत उदकोपस्पर्शनं पावमान्यादिभि:।।

   -आ०ध०सू० 1/1/2/6

3. आ०ध०सू० 1/1/2/5-11, 1/1/1/28-37

4. - वही 1/1/1/19

उपनयन विधि का उल्लेख आपस्तम्ब धर्मसूत्र में प्राप्त नहीं होता है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि आपस्तम्ब ने अपने गृह्यसूत्र में इसका विशद् वर्णन किया है[1]।

§ख§ समावर्तन:- समावर्तन का शाब्दिक अर्थ है, गुरुगृह से वेदाध्ययन के अनन्तर गृह को लौटना इसे स्नान भी कहा जाता है क्योंकि स्नान, समावर्तन संस्कार का सबसे महत्वपूर्ण अंग है तथा यह इस बात का द्योतक है कि छात्र ने विद्या-सागर को पार कर लिया। आपस्तम्ब धर्मसूत्र §1/2/7/15 एवं 31§ में समावर्तन शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।

सूत्रकारों ने वेदाध्ययनोपरान्त ब्रह्मचारी के लिये समावर्तन संस्कार के प्रतीक रूप में स्नान क्रिया का वर्णन किया है। इस स्नान के पश्चात्, स्नान किया हुआ व्यक्ति स्नातक कहलाता था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्नातक की तीन कोटियों का उल्लेख प्राप्त होता है[2]। §1§ विद्यास्नातक- विद्या स्नातक वह व्यक्ति कहलाता था जिसने वेदाध्ययन समाप्त कर लिया हो, किन्तु व्रत न किये

---

1. आपस्तम्ब गृह्य सूत्र चतुर्थ पटल।

2. विद्या स्नातीत्येके। तथा व्रतेनाऽष्टाचत्वारिंशत्परीमाणेन। विद्या व्रतेन चेत्येके।।

हो [1] (2) ब्रतस्नातक- जिसने ब्रत कर लिये हो किन्तु बेदाध्ययन समाप्त न किया हो, बह ब्रत स्नातक कहा जाता है- इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब ने कहा है कि अडतालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन कर स्नान करना चाहिए[2] (3) बिद्याब्रत स्नातक- विद्याब्रत स्नातक बह कहलाता था जिसने ब्रत एवं बेदाध्ययन दोनों की परिसमाप्ति कर ली हो ।

इस प्रकार समाबर्तन संस्कार गुरु गृह से शिष्य की बापसी का द्योतक है, इससे स्पष्ट होता है कि समाबर्तन संस्कार नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिए नहीं होता था, जो गुरु गृह में रहकर जीवन पर्यन्त अध्ययनरत रहता था । बस्तुतः समाबर्तन संस्कार ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति तथा गृहस्थाश्रम के प्रारम्भ का संस्कार है परन्तु स्नान तथा बिबाह के बीच लम्बी अबधि पायी जा सकती है । इसी कारण से आपस्तम्ब की धारणा है कि समाबर्तन के बाद स्नातक बिबाह के पूर्ब तक ब्रह्मचारी की तरह ही आचरण करे[3] ।

---

1. -आ0ध0सू0 1/11/30/1
2. -बही 1/11/30/2
3. - बही 1/2/8/1

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में समावर्तन विधि का वर्णन नहीं प्राप्त होता है, अपितु आपस्तम्ब गृह्यसूत्र[1] में प्राप्त होता है किन्तु आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्नातकों के लिए विहित नियमों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है जो कि निम्नवत् हैं:- स्नातक गाँव में सामान्यत. पूर्व की ओर से अथवा उत्तर की ओर प्रवेश एवं निष्क्रमण करे[2]। प्रातःकाल तथा संध्या के समय ग्राम से बाहर बैठकर मौन होकर (सन्ध्योपासन) करे[3]। मनु एवं गौतम ने भी प्रात· एवं सायं स्नातक के लिये सन्ध्योपासन करने का उल्लेख किया है[4] ।

---

1. आ०गृ०सू० पञ्चम पटल

2. पूर्वेण ग्रामान्निष्क्रमणप्रवेशनानि शीलयेदुत्तरेण वा ।।

   -वही 1/11/30/7

3. सन्ध्योश्च बहिर्ग्रामादासनं वाग्यतश्च ।।

   -वही 1/11/30/8

4. मनु० स्मृ० 2/101, गौतम 2/17

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अग्निहोत्री स्नातक के लिये गाँव से बाहर, प्रात एवं सांय जाकर बैठना आवश्यक नहीं माना गया है क्योंकि सूत्रकार की दृष्टि में स्नातक व्दारा घर में अग्निहोत्र करना या गाँव से बाहर जाकर बैठना इन दोनों विकल्पों में विरोध उपस्थित है । ऐसी दृष्टि में वेद में आदिष्ट अग्निहोत्र कर्म ही प्रबल माना जायेगा क्योंकि स्मार्त नियम को श्रुति की अपेक्षा वरीयता नहीं दी जा सकती[1]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने स्नातकों के लिये सभी प्रकार के रंगीन वस्त्रों एवं स्वाभावत कृष्ण वर्ण, अधिक चमकीले, भद्दे एवं गन्दे वस्त्रों का वर्जन किया है[2] । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आपस्तम्ब ने स्नातकों के लिये केवल श्वेत वस्त्रों को ही पहनने की अनुमति दी थी । यही नियम याज्ञवल्क्य एवं मनु स्मृति मे मिलता है[3] ।

---

1. विप्रतिषेधे श्रुतिलक्षणं बलीयः।।

आ०ध०सू० 1/11/30/9

2. सर्वान्रागान्वाससि वर्जयेत्। कृष्णं च स्वाभाविकम्। अनूद्भासि वासो वसीत। अ[illegible] च शक्तिविषये।।

-वही 1/11/30/10-13

3. याज्ञ० स्मृ० 1/131, मनु 4/35

आपस्तम्ब ने मलमूत्र त्याग के सम्बन्ध में भी नियम दिये हैं। उनके अनुसार वृक्षों की छाया में मलमूत्र का त्याग न करें, सिर को ढंककर ही तथा पृथ्वी पर कुछ (तृण आदि रख कर ही मूत्र और मल का त्याग करें, जूते पहनकर, जोते गये खेत में, मार्ग के ऊपर, जल में, अग्नि, जल, ब्राह्मण, गौ, देव, प्रतिमा की ओर मुख करके मल मूत्र का त्याग न करें तथा पत्थर के टुकड़े, मिट्टी के ढेले से, वृक्षों तथा वनस्पतियों के तोड़े गये हरे पत्तों से शरीर में लगे मलमूत्र को न पोछें[1]। अपितु आपस्तम्ब ने व्यवस्था दी है कि दक्षिण निवास स्थान से दूर दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम दिशा में जाकर मल मूत्र का त्याग करें। एवं दक्षिण की ओर मुख करके मल त्याग तथा उत्तर की ओर मुख करके मूत्र त्याग करें[2]। मनु एवं या०स्मृ० में उक्त मलमूत्र त्याग सम्बन्धी नियम कुछ अन्तर के साथ आपस्तम्ब धर्मसूत्र सदृश ही प्राप्त होते हैं[3]।

---

1. शिरस्तु प्रावृत्य मूत्रपुरीषे कुर्यात् भूम्यां किञ्चिदन्तर्धाय। छायायां मूत्रपुरीषयो: कर्म वर्जयेत्। स्वां तु छायामवमेहेत्। न सोपानन्मूत्रपुरीषे कुर्यात्। कृष्टे। पथि। अप्सु च। तथा ष्ठेवनमैथुनयो: कर्माऽप्सु वर्जयेत्। अग्निमादित्यमपो ब्राह्मणं गा देवताश्चाऽभिमुखो मूत्रपुरीषयो: कर्म वर्जयेत्। अश्मानं लोष्टमार्द्रानोषधि-वनस्पतीनूर्ध्वानाच्छिद्य मूत्रपुरीषयो: शुन्धने वर्जयेत्।

   -आ०ध०सू० 1/11/30/15-24

2. -वही 1/11/31/1-2

3. मनु०स्मृ० 4/45-50, या०स्मृ० 1/131-137

आपस्तम्ब ने अपवित्र होने पर ब्राह्मण, गौ, पूज्यवस्तु, के स्पर्श एवं देव अभिधान का निषेध किया है तथा देवताओं एवं राजा के विषय में निन्दापरक वचन, गौ, यज्ञ की दक्षिणा एवं कन्या के दोषों के कथन का निषेध किया है[1] एवं यदि गौ फसल को खा रही है या बछड़े को दूध पिला रही हो तो आपस्तम्ब ने किसी विशेष निमित्त के अभाव में स्वामी से कहने का निषेध किया है [2]।

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने स्नातक से अपेक्षा की है कि जो व्यक्ति भद्र हो उसे भद्र न कहें अपितु पुण्य और प्रशस्त कह कर उसका उल्लेख करें तथा जो गाय दूध न दे रही हो उसे धेनुम्भव्य कहें, अधेनु न कहें[3] तथा - - -

जिन खम्भों के बीच झूला लटकाया गया हो उन दोनों के बीच से न जायें एवं सभा में यह न कहें कि "यह व्यक्ति मेरा शत्रु है" यदि ऐसा

---

1. देवताभिधानं चाऽप्रयतः। परुषं चोभयोर्देवतानां राज्ञश्च। ब्राह्मणस्य गोरिति पदोपस्पर्शनं वर्जयेत्। हस्ते चाऽकारणात्। गोर्दक्षिणानां कुमार्याश्च परीवादान्वर्जयेत्।।

- आ०ध०सू० 1/11/31/4-8

2. -वही 1/11/31/9-10, गौ09/24

3. -वही 1/11/31/15-17, गौ09/52

कहता है कि यह व्यक्ति मेरा शत्रु है तो वह द्रोह करने वाले शत्रु को भेदा कर देता है[1] एवं स्नातक को इन्द्रधनुष देखने पर उसके विषय में दूसरे व्यक्ति से नहीं कहना चाहिए। इस सम्बन्ध मे गौतम धर्मसूत्र में आया है कि यदि इन्द्रधनु कहना हो तो मणिधनु कहें [2]। आपस्तम्ब ने स्नातक के लिये जब पक्षी एकत्र हों तो उनकी सख्या की गणना करने, उगते हुए तथा अस्त होते सूर्य का दर्शन करने का निषेध किया है तथा अमावस्या की रात्रि मे आत्मसंयम एवं ब्रह्मचर्य तथा देवार्चन द्वारा प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने को कहा है क्योंकि उस रात्रि सूर्य और चन्द्रमा एक साथ निवास करते हैं [illegible] किसी कुत्सित अर्थात् [illegible] मार्ग से ग्राम में प्रवेश न करें यदि किसी कारण से प्रवेश करें तो 'नमोरुद्राय वास्तोष्पतये' मन्त्र का जप करें[3]। किसी ब्राह्मणा को उच्छिष्ट अन्न न दें यदि दें तो, दाता को

---

1. -आ०ध०सू० 1/11/31/18, गौ 9/23
2. - वही 1/11/31/19-21, मनु 4/37
3. -वही 1/11/31/24

खरोचकर उनके मल को उस उच्छिष्ट अन्न में रखकर दे[1] तथा क्रोध आदि उन दोषों से दूर रहें जो योग की सिध्दि में बाधक होते हैं [2]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने अन्य धर्मज्ञों के मत का उल्लेख करते हुए स्नातक के गुरु के समीप माला आदि पहन कर जाने के अनुमति दी है[3] परन्तु जहां तक आपस्तम्ब का मत है यह मत आपस्तम्ब को मान्य नहीं है क्योंकि उन्होंने एक सूत्र[4] में स्पष्ट रूप से आचार्य केसामने माला चन्दन आदि लगाकर जाने का निषेध किया है । उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्नातक के ऐसे आसन पर बैठने का जिसमें गुरु के आसन की अपेक्षा अधिक पाये हों तथा जिस पर गुरु बैठते है, का निषेध प्राप्त होता है[5] । अपितु ऐसे

---

1. -आ०ध०सू० 1/11/31/25-27, मनु 4/80

2. -वही 1/11/31/27, मनु 4/63

3. स्नातस्तु काले यथाविध्यभिहृतमाहृतोऽभ्येतो वा न प्रतिसंहरेदित्येके।।

-वही 1/2/8/7

4. माल्यालिप्तमुख उपलिप्तकेशश्मश्रुरक्तोऽभ्यक्तो वेष्टित्युपवेष्टती काञ्चुक्युपानही पादुकी ।।

- वही 1/2/8/2-3

5. तथा बहुपादे । सर्वत: प्रतिष्ठत ।शय्यासने चाऽऽचरिते नाविशेत्।।

-वही 1/2/8/9-11

आसन पर बैठे जो सभी ओर से पृथ्वी पर लगा हो[1] ।

इस प्रकार आपस्तम्ब ने स्नातकों के लिए आचरण सम्बन्धी नियमों स्नातक धर्म एवं व्रतों की विस्तृत विवेचना की है ।

(ग) विवाह - वैदिक धारणा के अनुसार 'गार्हपत्य' (गृहस्थ जीवन) के लिए पत्नी का होना अपेक्षित है[2]। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पत्नी अर्धाङ्गिनी है । अतः जब तक व्यक्ति विवाह नहीं करता, तब तक वह अपूर्ण रहता है[3] तथा हिन्दू समाज में कोई धार्मिक कृत्य पत्नी के बिना पूरा नहीं होता[4]।

आपस्तम्ब के इस कथन[5] से कि यदि पत्नी धर्मों में श्रध्दा रखने वाली तथा पुत्र उत्पन्न करने में सक्षम हो तो दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए

---

1. ऋ0वे0 10/45/34, 5/3/21
2. श0ब्रा0 5/2/1/10
3. मनु0 स्मृ0 9/28
4. धर्मप्रजासम्पन्ने दारे नाऽन्यां कुर्वीत ।।

   -आ0ध0सू0 2/5/11/12
5. मनु0 स्मृ0 9/28

से ध्वनित होता है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में विवाह के उद्देश्य है कि - पत्नी पति को धार्मिक कृत्यों के योग्य बनाती है तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा पति की नरक से रक्षा करती है । मनु[1] का भी मानना है कि विवाह का उद्देश्य सन्तान प्राप्ति शास्त्रोक्त धर्मों का पालन है ।

अत: उक्त से स्पष्ट है कि प्रतिदिन की लोक यात्रा के लिए स्त्री अनिवार्य, अविभाज्य आवश्यकता है[2] । इसी कारण धर्मसूत्रकारों ने विवाह को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के लिये आवश्यक माना है ।

विवाह के प्रकार :- आपस्तम्ब धर्मसूत्र में विवाह के केवल 6 प्रकारों- ब्रह्म, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस का ही उल्लेख प्राप्त होता है, प्राजापत्य एवं पैशाच का नामोल्लेख नहीं है जब कि लगभग सभी धर्मशास्त्रकारों ने आठ प्रकार के विवाह बताये है[3] । आपस्तम्ब द्वारा पैशाच विवाह का उल्लेख न करने का

---

1. क्योंकि धर्म के पालन के लिये पति पत्नी का सम्बन्ध होता है ।

-आ0ध0सू0 2/6/3/1।

2. गौ0 4/3/13, आश्वा गृ0 सू0 1/6 बौ0ध0सू0 1/11 कौटिल्य 3/2, मनु 3/40 याज्ञ0 1/59 नारद 38/39

3. महाभारत 13/44, मनु0 3/25, शंख, 4/2 ब्राह्मोदैवस्तथैवाऽऽर्ष:

कारण सम्भवत: पैशाच विवाह का धर्मशास्त्र ग्रन्थों में अत्यन्त निन्दनीय और गर्हित माना जाता है[1]। जहाँ तक प्राजापत्यं विवाह प्रकार का प्रश्न है ब्राह्म विवाह प्रणाली और प्राजापत्य विवाह प्रणाली में कोई विशेष अन्तर न था दोनों ही विवाह प्रकारों में पिता वेदज्ञ वर को अपने यहां आमन्त्रित करके कन्या को दान करता था । यही कारण है जिससे आपस्तम्ब ने प्राजापत्य विवाह प्रणाली का उल्लेख नहीं किया।

आपस्तम्ब[2] के अनुसार ब्राह्मविवाह में पिता अपनी कन्या को प्रजा की उत्पत्ति तथा धर्म कर्म एक साथ करने (पति एवं पत्नी) के प्रयोजन से वर के कुल, चरित्र, धर्म में आस्था, विद्या, स्वास्थ्य के विषय में जानकारी प्राप्त करके, अपनी शक्ति के अनुसार कन्या को आभूषणों से अलंकृत कर कन्या प्रदान करे ।

आर्ष:- इस विवाह में वधू का पिता अपने जामाता से धार्मिक यज्ञों के लिये गाय तथा बैल प्राप्त करता था[3] । आपस्तम्ब ने इस उपहार को वधू के मूल्य के रूप में नहीं स्वीकारा है, इससे यह भासित होता है कि प्राय: सभी माता पित

---

1. -आ0ध0सू0 2/5/11/17, मनु 3/27, या0 1/58
2. - आ0ध0सू0 2/5/11/18, मनु 3/29, याज्ञ0 1/59
3. डा0 जय शंकर मिश्र - प्राचीन भा0का सा0इति0 पृ0 333

अपना विवाह ऋषियों से करना चाहते थे क्योंकि लोगों का विचार था कि ऋषि से उत्पन्न संतान प्रज्ञावान होती है । फलत कन्या का पिता विवाह के प्रति इच्छुक ऋषि से एक गाय बैल का जोडा लेता था ताकि यह प्रमाणित हो जाय कि अब ऋषि विवाह के लिये उत्सुक है । अत: वर से प्राप्त वह उपहार कन्या का मूल्य नहीं बल्कि भेंट होता था[1] ।

दैव :- अपनी कन्या को विवाहित करने के लिए पिता एक यज्ञ का आयोजन करता था। जो व्यक्ति उस यज्ञ को विधिपूर्वक सम्पन्न कर लेता था, उसी से उस कन्या का विवाह किया जाता था । इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि इस विवाह में पिता कन्या को ऐसे ऋत्विज् को प्रदान करे जो श्रौत यज्ञ करा रहा हो[2] ।

गान्धर्व:- आपस्तम्ब के अनुसार जब कन्या और वर परस्पर काम के वशीभूत होकर विवाह करते है तो वह गान्धर्व विवाह कहलाता है[3] । वस्तुत: यह

---

1. दैवे यज्ञतन्त्र ऋत्विजे प्रतिपादयेत्।।

-आ०ध०सू० 2/5/11/19

2. आ०ध०सू० 2/5/11/20, बौ०ध०सू० 1/11/6, गौ०ध०सू० 1/4/8

3. ऋग्वेद 10/27/12- 1/12/23/11

विवाह हिन्दू समाज में अत्यन्त प्राचीन काल से विद्यमान है वैदिक साहित्य में इसका विवरण मिलता है*।

आसुर :- आपस्तम्ब ने जब वर कन्या के लिए अपनी शक्ति के अनुसार धन प्रदान कर विवाह करे तो उसको आसुर विवाह माना है[1]। इस प्रकार आर्ष और आसुर विवाह में अन्तर यह था कि आर्ष विवाह में परम्परा के अनुसार गाय बैल का जोडा भेंट स्वरूप वर पक्ष व्दारा कन्या पक्ष को प्रदान किया जाता था किन्तु आसुर विवाह में कन्या पक्ष को कन्या का मूल्य धन के रूप में चुकाया जाता था ।

राक्षस :- शक्ति या बल प्रयोग व्दारा युध्द और संघर्ष के माध्यम से किसी कन्या का अपहरण करके विवाह करना राक्षस विवाह था । इसमें क्रूरता के साथ कपट और बल पूर्वक कन्या का अपहरण किया जाता था इसलिये इसे राक्षस विवाह कहा जाता था। आपस्तम्ब के अनुसार कन्या पक्ष वाले को परास्त करके यदि वर कन्या का अपहरण करे तो वह राक्षस विवाह कहलाता है[2]।

---

1. शक्तिविषयेण द्रव्याणि दत्वाऽऽवहेरन् स आसुरः।।

- आ०ध०सू० 2/5/12/1

2. दुहितृमतः प्रोथयित्वाऽऽवहेरन् स राक्षसः।।

यद्यपि आपस्तम्ब ने इस प्रकार 6 प्रकार के विवाहों का वर्णन किया है परन्तु उनकी दृष्टि में ब्राह्म, आर्ष और देव ही मान्य विवाह प्रणाली थी इन्हीं तीनों को ही उन्होने प्रशंसनीय माना है तथा इनमे भी देव विवाह से आर्ष और आर्ष से ब्रह्म विवाह को उत्तम कहा है[1] तथा विवाह की उत्तमता पर जोर दिया है क्योंकि उनका मानना है जैसा विवाह होगा, उसी प्रकार की सन्तान होगी अर्थात् यदि विवाह अत्युत्तम ढंग का होगा यथा ब्राह्म होगा तो सन्तान सच्चरित्र होगी तथा विवाह निन्दित होगा यथा राक्षस, गान्धर्व आसुर इनमें से किसी प्रणाली द्वारा होगा तो सन्तान निन्दित चरित्र की होगी[2]। इसी स्वर मे मनु ने भी कहा है[3]।

---

1. तेषां त्रय आद्या: प्रशस्ता: पूर्व: पूर्व: श्रेयान्।।
   - आ०ध०सू० 2/5/12/3

2. यथायुक्तो विवाहस्तथा युक्ता प्रजा भवति।।
   - वही 2/5/12/4

3. मनु० स्मृ० 3/41-42

वर के चुनाव के लिए निर्धारित गुण

हिन्दू व्यवस्थाकारों ने वर के गुणों की विस्तृत चर्चा की है[1] । इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कहना है कि वर को अच्छा कुल, सत् चरित्र, शुभ गुण, ज्ञान एवं सुन्दर स्वास्थ्य का होना चाहिए[2]। जहां तक कन्या के गुणों का प्रश्न है आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे कोई उल्लेख प्राप्त नही होता परन्तु आपस्तम्ब गृह्यसूत्र के अनुसार " जो कन्या वर के वरणार्थ आने पर सोती है, रोती है या घर से निकल जाती है , जो कन्या दूसरे वर की वाग्दत्ता हो, प्रयत्न पूर्वक रक्षित हो, घोता [विषमदृष्टि या पीले नेत्रों वाली] ऋषभा [बैल की तरह चलने वाली या शरीर वाली], शम्भा [की कान्तिवाली, नीले रोओं वाली या कुरूपा] हो, झुके हुए शरीर वाली हो, विकट जाँघों वाली, गंजे सिर वाली, मेढक की तरह त्वचा वाली, [illegible]रक [दूसरे कुल में उत्पन्न] राता [अधिक भोग विलास में रमण करने वाली], बछड़ों और खेत की रखवाली करती हो, अनेक सखियों और मित्रों वाली हो, जिसकी छोटी बहन अधिक सुन्दर हो,

---

1. नारद स्मृ० 5/31, मनु० 9/203

2. 2/5/11/7, आ०गृ०सू० 1/3/20

जिसकी अवस्था वर से बहुत समीप हो, तथा जिन कन्याओं का नाम नक्षत्र, नदी या वृक्ष का नाम हो तथा जिन कन्याओं के नाम मे अन्त्य वर्ण से पूर्व रेक या लकार हो तो ऐसी कन्याओं का वरण नहीं करना चाहिए[1]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्मसूत्र में सगोत्र एव सपिण्ड कन्या के साथ विवाह निषेध का उल्लेख प्राप्त होता है[2] एव आपस्तम्ब ने माता और पिता के योनिसम्बन्ध वाली स्त्रियों यथा माता की बहन, पिता की बहन तथा उनकी पुत्रियों के साथ मैथुन को पातकीय क्रियाओं में गिना है इससे स्पष्ट है कि आपस्तम्ब मामा या बुआ की लडकी से विवाह का निषेध करते हैं[3]। वौधायन धर्मसूत्र[4] के अनुसार दक्षिण में पाच प्रकार की विलक्षण रीतियाँ पायी जाती हैं विना उपनयन किये लोगों के साथ बैठकर खाना, अपनी पत्नी के साथ बैठकर खाना, उच्छिष्ट भोजन करना, मामा तथा फूफी की लडकी

---

1. आ०गृ०सू० 1/3/10-13
2. सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेत् । मातुश्च योनिसम्बन्धेभ्य ।।
   -आ०ध०सू० 2/5/11/15-16
3. वही 1/7/21/8
4. बौ०ध०सू० 1/19/26

से विवाह करना । इससे स्पष्ट है कि बौधायन से पहले से दक्षिण मे मामा तथा फूफी [पिता की बहिन] की लड़की से विवाह होता था, जिसे बौधायन एवं आपस्तम्ब निन्द्य मानते थे ।

ऋग्वेद [1/10/12] निरुक्त 6/9 बै0 ब्रा0 1/7/10 के अवलोकन से विदित होता है कि प्राचीन काल में लडकियों का क्रय विक्रय होता था परन्तु आपस्तम्ब ने कन्या क्रय की भर्त्सना की है । इस विषय में आपस्तम्ब धर्मसूत्र का कथन अवलोकनीय है- पुत्र को दान देने या दान लेने का अथवा उसे बेचने और खरीदने का नियम विहित नहीं है, विवाह में वेद द्वारा आज्ञापित जो भेंट कन्या के पिता को दी जाती है [यथा 100 गायें एवं एक रथ कन्या के पिता को दिये जाने चाहिए और वह भेंट विवाहित जोडे की है], वह कन्या के पिता की अभिलाषा मात्र है । ऐसे विवाहों में क्रय शब्द का केवल लाक्षणिक अर्थ लिया जाता है क्योंकि धर्म के पालन के लिए ही पति पत्नी का सम्बन्ध होता है [1]।

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने बडे भाई से पूर्व विवाह तथा बडी

---

1. दानं क्रयधर्मश्चापत्यस्य न विद्यते । विवाहे दुहितृमते दानं काम्यं धर्मार्थं श्रूयते तस्माद्दुहितृमतेऽधिरथं शतं देयं तन्मिथुया कुर्यादिति तस्यां क्रयशब्दस्संस्तुति मात्रं धर्माद्धि सम्बन्धः ।।

- आ0ध0सू0 2/6/13/10-11

बहन के अविवाहित रहते छोटी बहन से विवाह का निषेध किया है। उनके अनुसार यदि छोटा भाई बड़े भाई के पूर्व विवाह कर ले तथा बड़ा भाई छोटे भाई के विवाह के पश्चात् विवाह करता है तथा जो बड़ी बहिन के रहते छोटी बहिन से तथा जो छोटी बहिन का विवाह हो जाने के उपरान्त बड़ी बहिन से विवाह करता है वह पापी है[1] ।

अत. इस प्रकार आपस्तम्ब ने विवाह में प्रतिबन्धों का विशद् वर्णन किया है ।

पुरुष एवं स्त्री की विवाह अवस्था के बारे में स्पष्ट रूप से धर्म-सूत्र में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है । आपस्तम्ब धर्म सूत्र में ज्ञात होता है कि वेदाध्ययन के उपरान्त पुरुष विवाह करता था, यद्यपि धर्मसूत्र में वेदाध्ययन की अवधि ब्रह्मचारी होने के पश्चात् 12, 24, 36 या 48 वर्ष मानी गयी है । आपस्तम्ब ने बारह की अवधि आचार्य कुल में निवास की न्यूनतम मानी है[2] । एवं उपनयन की अवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए क्रमशः आठवें वर्ष, ग्यारहवें वर्ष तथा बारहवें वर्ष में मानी है । अतः इस आधार पर यह

---

1. अभिनि[illegible]क्ताभ्युदितकुनखिश्यावदाग्रदिधिषुदिधिषूपतिपर्याहित-रीष्टपरिवित्तपरिविन्नपरि[illegible]नेषु चोत्तरोत्तरस्मिन्नशुचिकरनिर्वेषो गरीयान् गरीयान्‌।

— आ०ध०सू० 2/5/12/22

निष्कर्ष असंगत न होगा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए क्रमशः 20 वर्ष, 23 वर्ष, 24 वर्ष की अवस्था, विवाह के लिए एक सामान्य अवस्था थी ।

कन्याओं के विवाह की अवस्था का प्रश्न है, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र के मत से विवाहित व्यक्तियों को विवाह के उपरान्त तीन रातों तक संभोग से दूर रहना चाहिए तथा आपस्तम्ब ने विवाहोपरान्त चतुर्थी कर्म का उल्लेख किया है जो पश्चात्कालीन गर्भाधान का द्योतक है[1] । उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कन्या का विवाह युवती होने पर ही किया जाता था, नहीं तो संभोग किस प्रकार सम्भव हो सकता था जैसा कि चतुर्थीकर्म से प्रकट होता है ।

विवाह विधि एवं विवाह में होने वाले धार्मिक कृत्यों का वर्णन धर्मसूत्र में प्राप्त नहीं होता है । सम्भवतः इसका कारण यह है कि आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में उक्त का विस्तृत वर्णन किया गया है[2]।

---

1. आ० गृ० सू० 8/8-12

2. आ० गृ० सू० द्वितीय पटल

<u>समाज मे स्त्रियों की स्थिति:-</u> धर्मशास्त्र युग मे नारी की समाज मे स्थिति अत्यन्त विचित्र थी । एक तरफ उसे सर्वशक्तिमान, विधा, शील, ममता, यश और सम्पत्ति की प्रतीक समझा गया वहीं दूसरी तरफ उसको हेय दृष्टि से देखा गया उसको सभी मामलों में आश्रित एवं परतन्त्र माना गया[1]। धर्मसूत्रों मे पति का अनुसरण करना ही स्त्री का धर्म माना गया है वह परतन्त्र थी । आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे गृह्यकर्म में और धार्मिक क्रियाओं मे गृहिणी की हैसियत से, वह गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित है, किन्तु उसके इस रूप के विषय में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है । जहां तक पारिवारिक या सामाजिक जीवन में नारी के स्थान का प्रश्न है उसके जीवन का लक्ष्य है पुत्र या सम्मान की प्राप्ति ।

पवित्र सन्तान के लिए स्त्री की पवित्रता अनिवार्य है और इसका सम्बन्ध कुल की शुध्दता, वैवाहिक सम्बन्ध की धर्मसम्मतता और आचरण की श्रेष्ठता से है । सन्तान के जीवन विकास मे माता का प्रभाव और योगदान सबसे अधिक होता है और इसी कारण धर्मसूत्र नारी की पवित्रता पर बहुत गौरव देते हैं । आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने स्पष्टत: कहा है कि वैवाहिक पवित्रता सभी प्रकार से श्रेयस्कर है और उसका लोक परलोक में अधिक फल मिलता है। गृहस्थ के लिए, धर्म

---

1. गौ०ध०सू० 8/1, बौ०ध०सू० 2/2/50-52

की रक्षा के लिऐ तथा जीवन एवं समाज के सन्तुलन के लिए विवाह एक श्रेष्ठ संस्था है, अत: धर्मसूत्रविवाह के प्रकार, योग्यता और वैधता पर विस्तार से विचार करता है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी पत्नी की योग्यता, उसके भिन्न प्रवर के होने, मातृ एवं पितृपक्ष से रक्त सम्बन्ध से दूर होने का विचार करके विवाह के भिन्न भेदों पर दृष्टिपात किया है और ब्रह्म, आर्ष और दैव को प्रशस्त माना है[1]।

आपस्तम्ब ने विवाह की पवित्रता पर जिस कारण अधिक विचार किया है वह स्पष्टत: यही है कि जैसा विवाह होता है, वैसा ही पुत्र होता है[2]।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र की दृष्टि में स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों का मुख्य प्रेरक धर्म होना चाहिए । इसी धर्म की छाया में नारी को धर्मसूत्र ने यथोचित गौरव दिया है, परिवार और समाज में महत्वपूर्ण स्थान दिया है । आचार्य की पत्नी आचार्य के समान पूज्य मानी गयी है[3]।

---

1. तेषां त्रय आद्या: प्रशस्ता: पूर्व: पूर्व: श्रेयान्।।

-आ०ध०सू० 2/5/11/3

2. यथायुक्तो विवाहस्तथा युक्ता प्रजा भवति।।

-वही 2/5/11/4

3. अन्यत्रोपसङ्ग्रहणादुच्छिष्टा शनाच्चाऽऽचार्यवदाचार्यदारे वृत्ति:।।

-वही 1/2/7/27

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्मसूत्र का कथन है कि विवाहोपरान्त पति एवं पत्नी धार्मिक कृत्य साथ करते है, पुण्यफल में समान भाग पाते है धन सम्पत्ति मे समान भाग रखते है तथा पत्नी पति की अनुपस्थिति में अवसर पड़ने पर भेंट आदि दे सकती है[1] । इससे यह स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब ने पति-पत्नी को धार्मिक कृत्यों में समान माना है । किन्तु आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने व्यावहारिक एवं कानूनी बातों में यह समानता नहीं मानी । आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने सामान्य रूप से कहा है कि पुत्राभाव में आसन्न सपिण्ड उत्तराधिकारी होता है[2] किन्तु इसने पत्नी को स्पष्ट रूप से उत्तराधिकारी घोषित नही किया है,यद्यपि पुत्री को एक सम्भव उत्तराधिकारी घोषित किया है[3]।

परन्तु आपस्तम्ब ने अपने कुछ पूर्ववर्ती लेखकों का मत दिया है कि आभूषण तथा अपने वन्धु वान्धवों से प्राप्त धन पत्नी का होता है[4]। किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि इसे वह स्वीकार करते हैं कि नहीं ।

---

1. जायोपत्योर्न विभागो विद्यते । पाणिग्रहणादि सहत्वं कर्मसु। तथा पुण्य फलेषु द्रव्यपरिग्रहेषु च ।।

   - आ०ध०सू० 2/6/13/16-18

2. पुत्राभावे य: प्रत्यासन्न: सपिण्ड:।।

   -वही 2/6/14/2

3. दुहिता वा ।।

   -वही 2/6/14/4

4. अलङ्.कारो भार्याया: ज्ञातिधनं चेत्येके।।

   -वही 2/6/14/9

उक्त के अतिरिक्त स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त नहीं था क्योंकि वे उपनयन के लिए अयोग्य थी । इतना ही नहीं वेदाध्ययन तथा वैदिक मन्त्रो के साथ संस्कार सम्पादन के सारे अधिकारों से वंचित थी ।

धर्मसूत्रों में नारी पर सर्वाधिक दृष्टिपात यौन विषयक नैतिकता के सन्दर्भ में किया गया। आपस्तम्ब धर्मसूत्र भी इससे अछूता नही है । हमारे धर्मसूत्र मे कहा गया है कि ब्रह्मचारी को किसी स्त्री पर दृष्टिपात नहीं करना चाहिए यहां तक कि यदि गुरुपत्नी भी युवती हो तो उसका चरण नहीं छूना चाहिए ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्त्री सम्बन्ध विषयक नैतिकता का विचाराधिक्य स्त्री की प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचाता है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में यदि कुछ बातों में स्त्रियाँ भारी असमर्थताओं एवं अयोग्यताओं के वशीभूत मानी जाती थीं, तो कुछ विषयों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक अधिकार एवं स्वत्व रखती थीं। स्त्रियों की हत्या नही की जा सकती थी और न वे व्यभिचार में पकड़े जाने पर त्यागी जा सकती थी । मार्ग में उन्हें पहले आगे निकल जाने का अधिकार प्राप्त था[1]। पतित की

---

1. यानस्य आराभिनिहितस्या तुरस्य स्त्रियां इति सर्वैर्दातव्य:।।

-आ०ध०सू० 2/5/10/7

कन्या पतित नहीं मानी जाती थीं, किन्तु पतित का पुत्र पतित माना जाता था[1]। इतना ही नहीं आपस्तम्ब धर्मसूत्र का कथन है कि यदि माता पतिता है तो भी पुत्र को उसकी सेवा सदैव करनी चाहिए[2]।

उक्त के अतिरिक्त स्त्रियों की जो अवस्था हो, उन्हें पति की अवस्था के अनुसार आदर मिलता था[3] इतना ही नहीं वेदज्ञ ब्राह्मणों की भांति सभी वर्णों की स्त्रियाँ कर से मुक्त थी[4]। परिवार की सम्पत्ति पर पत्नी को समान अधिकार प्राप्त था[5]। आपस्तम्ब ने स्त्रियों के ज्ञान को विद्या की अन्तिम सीमा माना है[6]।

---

1. तथाऽपि दोषवान् पुत्र एवं।।

-आ०ध०सू० 2/6/13/4

2. माता पुत्रत्वस्य भूयांसि कर्माण्यारमते तस्यां शुश्रुषा नित्यापतितायामपि।।

-वही 1/10/28/9

3. पतिवयस: स्त्रिय ।।

-वही 1/4/14/18

4. अकर: श्रोत्रिय.। सर्ववर्णानां च स्त्रिय.।।

-वही 2/10/26/10-11

5. कुटुम्बिनौ धनस्येशाते ।।

-वही 2/11/29/3

6. सानिष्ठा या विद्या स्त्रीषु शूद्रेषु च ।।

-वही 2/11/29/11

शिक्षा

समाज में शिक्षा के महत्व को कोई भी व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता समाज का उत्थान, विकास एवं पतन शिक्षा की व्यवस्था के ऊपर आधारित रहता है। सांस्कृतिक, बौध्दिक तथा वैज्ञानिक प्रगति शिक्षा की समुचित व्यवस्था के अभाव में सम्भव नहीं है। इसी कारण से भारतीय मनीषियों ने शिक्षा की व्यापकता एवं उपयोगिता को ध्यान में रखकर उसे महत्व प्रदान किया है। वैदिक धारणा के अनुसार ज्ञान के व्दारा मानव का व्यक्तित्व दिव्य हो जाता है तथा ज्ञान सम्पन्न होने पर वह देवता बन जाता है[1]। स्वाध्याय और प्रवचन करने से मनुष्य का चित्त एकाग्र हो जाता है। वह स्वतंत्र बन जाता है, नित्य उसे धन प्राप्त होता है। वह सुख से सोता है, अपना परम चिकित्सक है। उसे इन्द्रियों पर संयम होता है। उसकी प्रज्ञा बढ जाती है। उसे यश मिलता है। वह लोक को अभ्युदय की ओर लगा देता है वह ज्ञान के व्दारा ब्राह्मण का समाज के प्रति जो उत्तरदायित्व है उसे पूरा करता है। समाज अपनी आदर भावना से दान से और सुरक्षा से उसे सन्तुष्ट करता है। [illegible] विषयों का अध्ययन करने वाले लोग देवताओं को सन्तुष्ट करते हैं और प्रसन्न होकर देवता उनकी सभी कामनाएं पूरी कर देते हैं[2]।

---

1. शतपथ 3/7/3/10, 2/2/2/6 तैत्तिरीय संहिता 1/7/3/1।

2. शतपथ 11/5/7/7/1-5

शिक्षा शब्द का व्योत्पत्तिक अर्थ लेने पर उपर्युक्त कथन स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है । शिक्षा अभ्यास, विशेष शक्ति और इच्छा विशेष तथा सहन शक्ति की इच्छा (सुख,दुःख, प्रिय, अप्रिय) आदि के द्वन्द्वात्मक भावों में सहन शक्ति दिखलाना अर्थात् इनको गम्भीरता पूर्वक समझना आदि के अर्थ में प्रयुक्त होती है[1]। इसके अतिरिक्त शिक्षा शब्द अनुशासन के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। इस प्रसंग में अनुशासन के पुनः दो भाग थे, पहला बौध्दिक अथवा मानसिक अनुशासन और दूसरा शारीरिक अनुशासन । इस प्रकार शिक्षा की पराकाष्ठा के लिये दोनों ही स्वरूप अपेक्षित है । आपस्तम्ब ने इन्हीं दोनों अर्थों को लेकर शिक्षा के विषय में विवेचन किया है ।

शिक्षा का प्रारम्भ ब्रह्मचर्याश्रम से माना जाता है,जो उपनयन संस्कार के उपरान्त होता है । प्राचीन काल में आचार्यों की धारणा थी कि विद्यार्थी को पूर्णरूप से जब तक अपना नहीं बना लिया जाता,तब तक समीचीन विधि से उसे शिक्षा नहीं दी जा सकती । इस धारणा के अनुसार उपनयन संस्कार में आचार्य उस विद्यार्थी को एक नया जन्म देता है और विद्यार्थी

---

1. भौवादिकाभ्यासकर्मणः शिक्षतेभावे,सौवादिकाच्छमि कर्मणः शक्नोते, दैवादिकान्मर्षणकर्मणः शक्यतेश्च शिक्षा शब्दोभ्यास विशेष शक्तइच्छा विशेषं मर्षणेच्छाविशेषं च स्वार्थ समर्पयति।। शिक्षा शब्देद निर्वाच्य कुतो निष्पद्यन्ते। संस्कृत रत्नाकर "शिक्षक" 1940

आचार्य का पुत्र हो जाता है[1] । यही भावना आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी पायी जाती है कि आचार्य उपनीत बालक को विद्या से उत्पन्न करता है[2]।

उपनयन के पश्चात् ब्रह्मचारी बालक आचार्य कुल में निवास करता था[3] । आपस्तम्ब का कथन है कि विद्या ग्रहण करने की अभिलाषा रखने वाले को दूसरे के समीप निवास नहीं करना चाहिए[4]। इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य के साथ गुरुकुल में निवास करके ही छात्र विद्या ग्रहण करते थे, अन्यत्र से विद्यार्जन की व्यवस्था न थी । जहाँ तक आचार्य कुल में निवास अवधि का प्रश्न इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब ने अनेक विकल्प रखे है- यथा 48 वर्ष तक, छत्तीस वर्ष तक, चौबीस वर्ष तक, अथवा बारह वर्ष तक[5] । उन्होने स्पष्टतः से बारह

---

1. अथर्ववेद 11/7/3
2. आ० ध० सू० 1/1/1/16
3. उपेतस्याऽऽचार्यकुले ब्रह्मचारिवास॰।।

   -आ०ध०सू० 1/1/2/11
4. न ब्रह्मचारिणो विद्यार्थस्य परोपवासोऽस्ति।।

   -वही 1/1/2/17
5. अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि । पादूनम् । अर्धेन । त्रिभिर्वा ।।

   -वही 1/1/2/12-15

वर्ष की अवधि आचार्यकुल में निवास की न्यूनतम अवधि मानी है[1]।

उपर्युक्त से स्पष्ट होता है कि तत्समय शिक्षण संस्थान आवासीय प्रकृति के थे। छात्र उपनयन संस्कार के पश्चात् गृह त्यागकर गुरु के सानिध्य में आता था तथा वहीं रहकर विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करता था।

<u>आचार्य की योग्यता एवं कर्त्तव्य</u> :- आचार्य की योग्यता के सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि छात्र को ऐसे आचार्य के पास उपनयन संस्कार एवं वेदाध्ययन हेतु जाना चाहिए जिसका जन्म वेदविद्याध्ययन की अविच्छिन्न परम्परा वाले कुल में हुआ हो तथा जो स्वयं वेदों के अर्थज्ञान से युक्त हो, समाहित हो और धर्म के मार्ग से भ्रष्ट न हो[2]।

यद्यपि स्मृतियों में कहा गया है कि केवल ब्राह्मण ही आचार्य हो सकता है परन्तु आपस्तम्ब ने आपत्काल में जब ब्राह्मण आचार्य न मिले तब क्षत्रिय या वैश्य को आचार्य बनाने की अनुमति दी है[3]।

---

1. द्वादशावरार्ध्यम् ।।

-आ०ध०सू० 1/1/2/16

2. अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि। पादूनम् ।।

- वही 1/1/1/12-13

3. आपादि ब्राह्मणेन राजन्ये वैश्ये वाऽध्ययनम्।।

- वही 2/2/4/26

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या शूद्र को आचार्य बनाया जा सकता है ? इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि आपस्तम्ब जहाँ जंगल में शव अथवा-चाण्डाल दिख पड़ने पर तथा उग्र निषादादि वाह्य जातियों के ग्राम के अन्दर आ जाने पर वैदिक अध्ययन को बन्द करने का आदेश देते हैं वहां शूद्र की शिक्षक के रूप में कल्पना व्यर्थ है परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी आप-स्तम्ब धर्मसूत्र कहता है कि जो विद्या स्त्रियों और शूद्रों की होती है वही विद्या की अन्तिम सीमा है । उसका ज्ञान प्राप्त करने पर ही सभी विद्याओं का ज्ञान पूरा होता है तथा स्त्रियों और शूद्रों की विद्यायें अथर्ववेद के ज्ञान का परि-शिष्ट अंश होती हैं[1]। इतना ही नहीं अन्य स्थल पर आपस्तम्ब ने अन्य आचार्य के मत का उल्लेख करते हुए कहा है कि कुछ धर्मज्ञों का मत है कि जिन अवशिष्ट नियमों का विधान नहीं किया गया है उन कर्मों का ज्ञान स्त्रियों से तथा सभी वर्णों के पुरुषों से प्राप्त करना चाहिए[2]। इससे यह भासित होता है कि

---

1. सा निष्ठा या विद्या स्त्रीषु शूद्रेषु च । आथर्वणस्य वेदस्य शेष इत्युपदिशन्ति।।

   – आ०ध०सू० 2/11/29/11-12

2. स्त्रीभ्यस्सर्ववर्णेभ्यश्च धर्मशेषान्प्रतीयादित्येक इत्येके ।।

   – वही 2/11/29/16

आपस्तम्ब शूद्र से शिक्षा ग्रहण की अनुमति देते है परन्तु एक स्थल पर आपस्तम्ब ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि शूद्र वर्ण को छोडकर शेष के लिए उपनयन वेद का अध्ययन, अग्नि का आधान है[1]। अतएव जहाँ शूद्र वेद का अध्ययन नहीं कर सकता अध्यापन कार्य कैसे सम्भव है ? वस्तुत आपस्तम्ब शिक्षा के दो भाग मानते थे पहली वह साहित्यिक शिक्षा जिसके अन्दर वैदिक वाड़्मय का ग्रहण होता है जो केवल द्विजातियों तक सीमित थी जिसे शूद्र ग्रहण नहीं कर सकता था तथा जिसका अध्यापन कार्य शूद्र के लिए वर्जित था और दूसरे प्रकार की वह शिक्षा थी, जिसको शिल्प सम्बन्धी शिक्षा कह सकते हैं जिसका अध्ययन-अध्यापन शूद्र एवं स्त्रियों के लिए विहित था।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में आचार्य को निर्देश दिया गया कि वह शिष्य को पुत्रवत् मानते हुए उससे कुछ भी न छिपाये । छात्र के अध्ययन के लिये वह मार्ग प्रशस्त करें अध्यापन में वह उदासीनता न दर्शित करे, अपने परम्परागत पांडित्य और ज्ञान से वह शिष्य को लाभान्वित करे[2]।

---

1. अशूद्राणामदुष्टकर्मणामुपायनं वेदाध्ययनमग्न्याधेयं फलवन्ति च कर्माणि।।

- आ०ध०सू० 1/1/1/6

2. - वही 1/2/8/24-27

इसके साथ- साथ आचार्य में अनुशासन सत्याचरण, सत्यभाषण तथा छात्र के प्रति प्रेम होना अत्यावश्यक है । इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि गृहस्थ होते हुए भी आचार्य ऐसा जीवन बिताये कि शिष्यों के मन मे किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो उसका रहन सहन गरिमामय हो। वर्षा और शरद् ऋतुओं में वह स्त्री के साथ मैथुन कर्म से विरत रहे, लेटकर अध्यापन कार्य न करे एवं उस शय्या पर बैठकर अध्यापन न करें जिस पर रात्रि में पत्नी के साथ शयन करता हो इसके अतिरिक्त वह माला आदि से सजाकर या लेप आदि करके अपने शरीर को प्रदर्शित न करे । जल में सिर के साथ सम्पूर्ण शरीर को डुबाकर स्नान न करे, सूर्य अस्त के पश्चात् स्नान करे[1]। क्षुद्रजनों के समीप अथवा क्षुद्रजनों से युक्त देश में न जावे, सभाओं में तथा भीड़ के स्थानों पर न जावे, यदि लोगों के समूह में पहुंच गया हो तो उसकी प्रदक्षिणा करके वहाँ से प्रस्थान करे, नगर में प्रवेश का वर्जन करे[2]। गदहे से खींचे जाने वाले यान पर न चढे, विषम स्थानों मे रथ पर आरोहण तथा रथ से अवरोहण का वर्जन करे । नदी को तैर कर पार न करे, संशय उत्पन्न करने वाली नाव पर

---

1. -आ0ध0सू0 1/11/32/1-8

2. - वही 1/11/32/18-21

न चढ़ें, बिना कारण घास काटने ढेला फोड़ने, थूकने का वर्जन करें[1]।

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने आचार्य के लिए अर्धरात्रि के पश्चात् शयन का निषेध किया । अपितु उसे अध्ययन एवं अध्यापन कार्य करने का निर्देश दिया है परन्तु रात्रि के तृतीय प्रहर में अध्ययन अध्यापन तथा शयन का वर्जन किया है । यदि अध्यापक शयन करना चाहे तो किसी खंभे आदि का सहारा लेकर बैठे- बैठे शयन करे अथवा यदि अध्ययन करना तृतीय प्रहर में चाहे तो मन में ही अध्ययन करे[2] ।

आपस्तम्ब ने आचार्य के कर्त्तव्यों के उल्लेख में आचार्य से अपेक्षा की है कि वह किसी ऐसे प्रश्न का जिसका उत्तर निर्धारण कठिन है सीधे निर्णय के साथ उत्तर न दे इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब ने उद्धृत किया है[3] कि जो व्यक्ति गलत निर्णय देता है (उसका मूर्खतापूर्ण निर्णय) उसके पूर्वजों को, भावी समृध्दि, सन्तान, पशु और घर को हानि पहुँचाता है । मृत्यु ने रोते हुए ऋषि के प्रश्न का उत्तर दिया था "धर्म प्रह्लाद न कुमालनाय" ।

---

1. आ०ध०सू० 1/11/32/25-28
2. -वही 1/11/32/14-17
3. मूलं तूल वृहति दुर्विवक्तुः प्रजा पशूनायतनं हिनस्ति।
   धर्मप्रह्लाद न कुमालनाय रुदन् ह मृत्युर्व्युवाच प्रश्नम्।।
   -वही 1/11/32/24

"धर्मप्रहलाद न कुमालनाय" इस आख्यान का जो सन्दर्भ आप-स्तम्ब ने उक्त पद्य में किया है उसको हरदत्त ने निम्नवत् व्याख्यायित किया है कि किसी ऋषि के धर्मप्रहलाद और कुमालन दो शिष्य थे वे दोनो एक दिन जंगल से ईंधन के दो गठ्ठर लाये और बिना देखे असावधानीवश गुरु के घर में फेंक दिये । उनमें से एक गट्ठर से गुरु के छोटे बालक को चोट लगी और उसकी मृत्यु हो गयी । तत्पश्चात् गुरु ने उन दोनों शिष्यों से पूछा कि किसने इसे मारा है दोनो ने उत्तर दिया कि मैंने नहीं,मैंने नहीं । तदनन्तर किसको पतित समझ कर परित्याग करना चाहिए तथा दोषहीन समझ कर किस शिष्य को रखना चाहिए ऐसा निर्णय करने में असमर्थ ऋषि ने मृत्यु को बुलाकर पूछा कि "इन दोनों में किसने इसे मारा है धर्मसंकट में पडकर रोते हुए मृत्यु ने कहा "धर्मप्रह्लाद, न कुमालनाय" (हे धर्मप्रह्लाद दोष कुमालन का नहीं है) किन्तु इसका यह भी अर्थ निकला कि धर्मप्रह्लाद ने नहीं, बल्कि दोष कुमालन का है[1]।

इस प्रकार आपस्तम्ब ने आचार्य को निर्देशित किया है कि आचार्य किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर जिसका निर्धारण कठिन है तत्काल सीधे

---

1. आ०ध०सू० 1/11/32/24 पर हरदत्त की टिप्पणी

निर्णय के साथ उत्तर न दे अपितु उसके सभी पक्षों पर पूर्ण विचार कर निर्णय दें ।

उक्त आचार्य के कर्त्तव्य विवेचन से स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब ने आचार्य के अनुशासनमय जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की है और इस बात पर जोर दिया है कि आचार्य आचारनिष्ठ हो तभी आपस्तम्ब धर्मसूत्र[1] का कथन है कि "विद्यार्थी आचार्य से अपने कर्त्तव्य [आचार] एकत्र करता है, इसीलिए वह आचार्य कहलाता है"। अतएव आचार्य तभी आचार ग्रहण करा सकता था, जब वह स्वयं आचारनिष्ठ हो । यही कारण है कि आपस्तम्ब ने सर्वाधिक बल आचार्य के आचारनिष्ठ होने पर दिया है ।

<u>शिष्य के कर्तव्य और आचार:-</u> भारतीय शिक्षण व्यवस्था में विद्यार्थी जीवन तपोमय माना गया है लोगों की धारणा है कि तप के द्वारा ही मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ ज्ञान की ओर प्रवृत्त हो सकती है । विद्याप्राप्ति के मार्ग में सांसारिक बन्धन, भोग विलास अथवा मनोरंजन को वाधक भोग विलास अथवा मनोरंजन को वाधक माना गया है । इसी कारण धर्मसूत्रों में विद्यार्थी के तपोमय जीवन की रूपरेखा स्पष्ट की गयी थी क्योंकि अध्ययन एक तप है, अत:

---

1. यस्माध्दर्मानाचिनोति स आचार्य:।।

— आ०ध०सू० 1/1/1/14

इसके लिये वातावरण की अनुकूलता मानसिक शान्ति और एकाग्रता, पवित्रता, आचरण के नियमों का पालन एवं ब्रह्मचर्य अत्यावश्यक है । इसीलिए आपस्तम्ब ने छात्र को क्षमाशील, लज्जाशील अपने कर्तव्यपालन में तत्पर, इन्द्रियों को अनुचित विषयों से नियन्त्रित रखने वाला उत्साहसम्पन्न एवं धैर्य से युक्त होने का उपदेश दिया है[1]।

आपस्तम्ब ने शिष्य के मुख्यत: तीन प्रकार के कर्म बताये हैं- गुरु को प्रसन्न रखने वाले, कल्याण प्राप्ति के कर्म तथा वेद का परिश्रमपूर्वक अभ्यास[2]। इसीलिए शिष्यों का गुरुओं के व्यवहार के सम्बन्ध में आपस्तम्ब ने अनेक नियम बनाये जिससे शिष्य गुरु को प्रसन्न कर ज्ञान की प्राप्ति कर सकें ।

अतएव उन्होंने अनुचित बातों को छोड़कर गुरु के सभी आदेशों का पालन करने की शिष्य से अपेक्षा की है[3]। उनके अनुसार शिष्यों को गुरु का

---

1. मृदु:। शान्त: । दान्त: । ह्रीमान् । दृढधृति:। अग्लास्नु:।अक्रोधन:।।
- आ०ध०सू० 1/1/3/17-23

2. गुरुप्रसादनीयानि कर्माणि स्वस्त्ययनमध्ययनसंवृत्तिरिति।।
- वही 1/2/5/[illegible]

3. आचार्याधीनस्स्यादन्यत्र पतनीयेभ्य:।।
- वही 1/1/2/19

हितकारी होना चाहिए और उनको किसी बात के विपरीत नहीं बोलना चाहिए[1]। अपितु गुरु के समीप आराध्य देव के प्रति भावना जैसी श्रध्दा के साथ जाने का निर्देश दिया है [2]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने शिष्यों को उन स्थलों पर जहां गुरु प्राय: आते जाते है वहां अपने सुख का कोई कार्य करने का वर्जन किया तथा निर्देश दिया कि शिष्य रात्रि को गुरु के चरणों को धोकर तथा उनके शरीर का मर्दन करके गुरु के शयन करने के पश्चात् उनकी आज्ञा प्राप्त कर ही शयन करें और गुरु की ओर अपने पैरों को न पसारें। इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब का कथन है कि शिष्य गुरु के समीप बैठकर गुरु की आज्ञा प्राप्त किये बिना बात न करे तथा यदि गुरु ह खडे होकर कुछ कह रहे हों तो खडे होकर उत्तर दें यदि चल रहे हों तो उनके पीछे चलें। शिष्य के गुरु के समीप जाने के सम्बन्ध में सूत्रकार का मत है कि शिष्य गुरु के समीप जूता पहन कर, सिर को वेष्ठित करके अथवा हाथ में कोई औजार लेकर न जाय किन्तु यदि छात्र किसी कार्य को कर रहा है अथवा यात्रा में है तो उक्त अवस्थाओं में भी गुरु के पास जाने की अनुमति आपस्तम्ब ने दी है [3]।

---

1. हितकारी गुरोरप्रतिलोमयन् वाचा ।।

-आ०ध०सू० 1/1/2/20

2. देवमिवाचार्यमुपासीता विकथयन्नविमना वाचं शुश्रूषमाणो स्य।।

- वही 1/2/6/13

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने शिष्य को गुरु के समीप एक टाँग के ऊपर दूसरी टाँग रखकर बैठने का निषेध किया है तथा यदि वायु शिष्य की ओर से गुरु की ओर बह रही हो तो दिशा बदलने का तथा बैठते समय किसी वस्तु के सहारे अथवा हाथों को पृथ्वी पर टिकाकर बैठने का निषेध किया है[1]।

आपस्तम्ब के अनुसार आचार्य के अपनी ओर न देखने पर भी शिष्य आचार्य की ओर मुख करके न तो बहुत निकट अथवा न बहुत दूर बैठे अपितु जितनी दूरी पर बैठने से आचार्य का दोनों बाहुओं से स्पर्श कर सके उतनी दूरी पर बैठे परन्तु आपस्तम्ब ने शिष्य के जिस ओर से वायु बह रही है उस ओर बैठने का निषेध किया है[1]। इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने गुरु के बैठने पर शिष्य के लेटने का भी निषेध किया है[2]।

आपस्तम्ब की दृष्टि में यदि एक ही शिष्य अध्ययन करने वाला है तो वह गुरु की दाहिनी ओर बैठे परन्तु अनेक शिष्य हों तो वे सुविधानुसार जिधर स्थान प्राप्त कर सकें वहाँ बैठ सकते हैं। इसी संदर्भ में आपस्तम्ब का मत है कि यदि जिस स्थल पर गुरु को आसन देकर सम्मानित नहीं किया गया हो तो वहाँ शिष्य स्वयं भी न बैठे[3]।

---

1. -आ०ध०सू० 1/2/6/12-17

2. - वही 1/2/6/18

3. -वही 1/2/6/19-23

इसी संदर्भ में आपस्तम्ब ने शिष्य से अपेक्षा की है कि यदि गुरु किसी काम को करना चाहते हैं जिसे शिष्य स्वय कर सकता है तो उस कार्य को शिष्य को स्वयं करना चाहिए इतना ही नहीं शिष्य किसी भी समय गुरु के व्दारा कहीं भेजने पर तत्काल जाने के लिए तत्पर रहे । शिष्य यात्रा में गुरु के किसी वाहन पर चढ़ने के पश्चात् ही चढ़े तथा सभा में प्रवेश, निकष [खाटा] कट [वीरणानिर्मित शय्या] स्वस्तर [पलालशय्या] आदि पर गुरु के आदेश देने पर ही अपना स्थान ग्रहण करे ।

सूत्रकार के अनुसार शिष्य तब तक कुछ न कहे जब तक गुरु कुछ अभिभाषण न करें परन्तु उनके मत मे यदि शिष्य गुरु से किसी प्रिय समाचार का कथन करना चाहता है तो वह गुरु के अभिभाषण के बिना भी कह सकता है[1]। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में शिष्य को गुरु को अंगुली से छूने, कान मे धीमे स्वर में कुछ कहने, मुख की ओर मुख करके हंसने, उंचे स्वर में गुरु को सबोधित करने, गुरु का नाम लेने, आदेश देने का निषेध किया है परन्तु आपत्ति के समय उक्त प्रतिबन्धों से मुक्ति प्रदान की है[2]।

---

1. आ०ध०सू० 1/2/8/8-14, 1/2/6/24-28, 1/2/7/25

2. व्युपतोदव्युपजापव्यभिहासोदामन्त्रणनामधेयग्रहण प्रेषणानीति गुरोर्वर्जयेत्। आपद्यर्थं ज्ञापयेत्।।

-वही 1/2/8/15-16

सूत्रकार के अनुसार शिष्य गुरु के उठने, बैठने, चलने और मुस्कराने के पश्चात् ही उठे , बैठे, चलेऔर मुस्कराये । इसके अतिरिक्त गुरु के समीप मल मूत्र का त्याग, अपान वायु का त्याग, ऊंची आवाज में बोलना, हंसना, थूकना, दांतों का साफ करना, भौंहें टेढी करना, ताली बजाना और अंगुलियों का चटखाना, आपस्तम्ब की दृष्टि में शिष्य के लिए वर्ज्य है[1] इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने शिष्य के लिए गुरु के किसी वाक्य के खण्डन , [illegible]ों के दोष कथन , आक्रोश अभिव्यक्ति , विद्या की अन्य विद्या से तुलना करके उसको हीन बताने का भी निषेध किया है तथा शिष्य से अपेक्षा की है कि वह आसन, भोजन तथा वस्त्र में गुरु से न्यूनता रखे[2] ।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अत्यधिक विस्तृत रूप से छात्र के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है । सम्भवत: इसका कारण यह है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में छात्र उक्त कर्तव्यों का अपने जीवन में पालन करते हुए सम्यक रूप से ज्ञानार्जन कर सकता है ।

---

1. सन्निहिते मूत्रपुरीषवातकर्मोच्चैर्भाषाहासष्ठीवनदन्त[illegible]न शृङ्खाण-भ्रूक्षेपणतालनांगुष्ठा[illegible]यानीति ।।

-आ0ध0सू0 2/2/5/9

2. आसने शयने भक्ष्ये भोज्ये वाससि वा सन्निहिते निहीनतरवृत्ति: स्यात् ।।

- वही 2/2/5/5

गुरु शिष्य सम्बन्ध :- आपस्तम्ब धर्म सूत्र से ज्ञात होता है कि गुरु-शिष्य में भावनात्मक सम्बन्ध थे । आचार्य छात्र के साथ पुत्रवत् व्यवहार करता था तथा किसी विद्या को छिपाये बिना शिष्य को विद्यार्जन कराता था[1] । इतना ही नही आपस्तम्ब ने गुरु एवं शिष्यों के मध्य सम्बन्धों के विषय में एक व्यावहारिकता का परिचय दिया है तथा कहा है कि यदि गुरु जान बूझ कर अथवा प्रमाद से किसी नियम का उल्लघन करता है तो उसके विषय मे शिष्य गुरु को एकान्त मे ध्यान दिला सकता है और शिष्य गुरु के उन आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है जिनसे शिष्य का पतन होता है[2]। यद्यपि आपस्तम्ब ने एक स्थल पर गुरु के प्रति आराध्य देव की भक्ति के समान भक्तिभाव रखने का उल्लेख किया है किन्तु उक्त से स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब गुरु के प्रति अन्धभक्ति प्रदर्शन की अनुमति नहीं देते है । अपितु विवेकपूर्ण ढंग से गुरु के आदेशों के पालन पर बल देते हैं ।

---

1. पुत्रमिवैनमनुकाङ्क्षन् सर्वधर्मेष्वनपच्छादयमानः सुयुक्तो विद्यां ग्राहयेत् ।।

-आ०ध०सू० 1/2/8/25

2. प्रमादादाचार्यस्य बुध्दिपूर्वं वा नियमातिक्रमं रहसि बोधयेत्।आचार्याधीन-स्स्यादनयत्र पतनीयेभ्यः।। -वही 1/1/4/25 एवं 1/1/2/19

विधिक दृष्टया गुरु शिष्य के मध्य सम्बन्धों के सन्दर्भ में आपस्तम्ब का मानना है कि सपिण्ड का अभाव होने पर दाय का अधिकारी आचार्य होता है , आचार्य के न होने पर उसका शिष्य उस दाय को ग्रहण कर सकता है तथा मृत व्यक्ति के नाम से धार्मिक कार्यों में उस धन का सदुपयोग कर सकता है अथवा स्वयं उस धन को ग्रहण कर सकता है[1] । इससे यह स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब ने गुरु शिष्य के पारस्परिक सम्बन्धों को वैधानिकता दी है ।

उक्त के अतिरिक्त आचार्य का शिष्य के ऊपर पिता सदृश पूर्ण अधिकार का उल्लेख आपस्तम्ब धर्मसूत्र में प्राप्त होता है ।

इस प्रकार हम देखते है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में गुरु और शिष्य का सम्बन्ध आदर्श जीवन के प्रमुख लक्ष्य की सिध्दि की ओर उन्मुख है , यह केवल जीविका या औपचारिकता का सम्बन्ध नहीं है ।

<u>आचार्य की आय</u> :- प्राचीनकाल में शिक्षा के लिए कोई शुल्क निर्धारित नहीं था, शिष्यों व्दारा भिक्षाटन में लाया गया अन्न तथा दान-दक्षिणा में प्राप्त धन ही आचार्य की आय थी । आचार्य शिष्य से धन की मांग नहीं करता था

---

1. तदभाव आचार्य आचार्याभावेऽन्तेवासी हृत्वा तदर्थेषु धर्मकृत्येषु वोपयोजयेत्।।

-आ०ध०सू० 2/6/14/3

अपितु विद्यार्थियों को निःशुल्क ज्ञानार्जन कराता था । यद्यपि शिष्य विद्या के अन्त में गुरु को दक्षिणा देता था किन्तु दक्षिणा देना गुरु को प्रसन्न मात्र करना था, वह शिक्षण शुल्क नहीं था क्योंकि वह शिष्य की इच्छा पर आधारित था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी विद्या की समाप्ति पर गुरु दक्षिणा देने का उल्लेख मिलता है । सूत्रकार का कथन है कि शिष्य को अपनी शक्ति के अनुसार तथा धर्मानुकूल विधि से अर्जित कर , विद्या के अन्त में गुरु दक्षिणा देनी चाहिए । इस दी गयी दक्षिणा के संदर्भ में आपस्तम्ब का विचार है कि,शिष्य गुरु को दी गयी दक्षिणा का स्मरण न करें तथा घमण्ड न करे[1]।

उक्त से स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब के समय भी आचार्यों की आय का साधन दक्षिणा मात्र थी ।

<u>विद्यार्थी के प्रकार</u> :- सूत्रकाल में प्रायः दो प्रकार के विद्यार्थियों का उल्लेख प्राप्त होता है , एक वे विद्यार्थी ,जो कुछ वर्षों तक गुरु के आश्रम में रह कर शिक्षा ग्रहण करते थे और शिक्षा समाप्ति पर समावर्तन संस्कार के पश्चात् गुरु को दक्षिणा के रूप में कुछ प्रदान कर घर लौटते थे । आपस्तम्ब धर्मसूत्र में

---

1. कृत्वा विद्यां यावतीं शक्नुयात् वेददक्षिणामाहरेध्दर्मतो याथाशक्ति।
दत्वा च नाऽनुकथयेत् ।कृत्वा च नाऽनुस्मरेत् ।।

-आ०ध०सू० 1/2/7/19,22-23

उनकी तीन श्रेणियाँ प्राप्त होती हैं - ‡1‡ विद्याव्रत स्नातक ‡2‡ विद्या स्नातक ‡3‡ व्रत स्नातक[1]।

दूसरे प्रकार के ऐसे विद्यार्थी थे जो आजन्म आचार्य के आश्रम में रह कर विद्याध्ययन करते थे उनको अन्तेवासी कहा जाता था । आपस्तम्ब ने इस प्रकार के विद्यार्थियों की अत्यधिक प्रशंसा की है तथा कहा है कि ऐसे विद्यार्थी ब्रह्मचर्याश्रम में ही उन सभी पुण्यफल प्रदान करने वाले कर्मों को कर लेते हैं जो गृहस्थाश्रम में किये जाते हैं [2]।

<u>अनुशासनहीन छात्र के प्रति आचार्य का व्यवहार:-</u> कभी आचार्य को अनुशासनहीन शिष्य प्राप्त हो जाते थे जो उनके निर्देशों और शिक्षा को समुचित रूप से नहीं ग्रहण करते थे। इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब का निर्देश है कि शब्दों द्वारा अपराध करने पर शिष्य की भर्त्सना करना चाहिए और अपराध की गुरुता के अनुसार निम्न दण्ड में से कोई या कई दिये जा सकते हैं, धमकाना, भोजन न देना, शीतल जल में स्नान कराना, समीप न आने देना[3]।

---

1. -आ०ध०सू० 1/11/30/1-3
2. -वही 1/1/4/29
3. अपराधेषु चैनं सततमुपालभेत । अभित्रास उपवास उदकोपस्पर्शनमदर्शनमिति दण्डा यथामात्रमानिवृत्ते:।।

   - वही 1/2/8/29-30

उक्त से स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब ने छात्रों को दण्ड देने की व्यवस्था की है किन्तु कठोर दण्ड के वे समर्थक नहीं है । अपितु उनका दण्ड विधान मनोवैज्ञानिकता पर आधारित था, विद्यार्थी के लिए इस प्रकार का कठोर दण्ड विधान नहीं था जिससे वह अन्य विद्यार्थियों के लिए उदाहरण बन जाय वरन् यह दण्ड विधान उस विद्यार्थी के सुधार को दृष्टि में रखकर ही किया गया था।

<u>अनध्याय (वेदाध्ययन की बन्दी):-</u> ब्रह्मचर्यावस्था का मुख्य लक्ष्य अध्ययन था। अध्ययन एक तप माना गया है[1] अतएव इसके लिए वातावरण की अनुकूलता, मानसिक शान्ति और एकाग्रता, उचित स्थान और पवित्रता का होना अत्यावश्यक है इसीलिए आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अनध्याय प्रकरण का विस्तृत उल्लेख किया गया है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार अनध्याय के नियम वैदिक मन्त्रों के विद्याग्रहण के लिए ही है यज्ञ एवं अन्य धार्मिक कृत्यों में वेद के मन्त्रों के प्रयोग में अनध्याय लागू नहीं होता[2]।

---

1. तप. स्वाध्याय इति ब्राह्मणम् ।।

-आ०ध०सू० 1/4/12/1

2. विद्यां प्रत्यनध्याय: श्रूयते न कर्मयोगे मन्त्राणाम्।।

- वही 1/4/12/9

उक्त से स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वर्णित अनध्याय प्रकरण केवल वेदाध्ययन से ही सम्बन्धित है । यज्ञ एवं अन्य धार्मिक कृत्यों में यदि वेदों के मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है तो अनध्याय लागू नहीं होगा ।

अनध्याय का वर्णन करते हुए सूत्रकार का कथन है कि चौराहों, श्मशान में अध्ययन वर्ज्य है किन्तु यदि चौराहा गोबर से लिपा है तथा यदि श्मशान के स्थान पर ग्राम बना हो अथवा श्मशान को जोतकर खेत बना दिया गया हो तो वहाँ अध्ययन की अनुमति है[1]।

आपस्तम्ब ने कुछ तात्कालिक अनध्यायों की चर्चा की है ये थोड़े समय के लिये माने गये है । यथा शूद्रों तथा पतित के सामने होने पर यदि छात्र शूद्रा स्त्री को देख रहा है या शूद्रा स्त्री उसे देख रही है अथवा नीच वर्ण के के पुरुष के साथ यौन सम्बन्ध रखने वाली स्त्री एक दूसरे को देख रही हो गाँव में शव पड़ा है, जिस गाँव में चण्डाल रहता है,या बाह्य जाति के व्यक्ति गाँव में आ गये हैं, या महान पुरुष गाँव मे आया हुआ है,विद्युत चमकने पर,मेघगर्जन होने

---

1. निगमष्वध्ययनं वर्जयेत्। आनडुहेन वा शकृत्पिण्डेनोपलिप्तेऽधीयीत।
   श्मशाने सर्वत: शम्याप्रासात्। ग्रामेणाऽध्यवसिते क्षेत्रेण वा नाऽनध्याय:।
   ज्ञायमाने तु तस्मिन्नेव देशे नाधीयीत ।।

   – आ०ध०सू० 1/3/9/4-8

पर,[1] कुत्तों के भोंकने, गदहों के रेंकने, भेड़िया के बोलने, सियार, उल्लू के शब्दों को सुनने तथा वादन यन्त्रों के शब्द सुनायी पड़ने पर रोना, गीत तथा सामगान के शब्दों के श्रवण, वमन, दुर्गन्ध होने पर, यदि वायु तेज बह रही है, वर्षा होने पर तथा जब गाएं अवरुद्ध कर दी गयी हो या वध के योग्य का जब वध किया जा रहा तब तक आपस्तम्ब ने विद्यार्थी के द्वारा अध्ययन का निषेध किया है[2]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने कुछ ऐसे अवसरों की भी चर्चा की है जब कि एक दिन, 24 घण्टे, एक मास छ. मास या साल भर तक अनध्याय चल सकता है ।

आपस्तम्ब के अनुसार वेदाध्ययन के विराम के समय, गुरु की मृत्यु पर अष्टका पर तथा उपाकर्म के समय एवं निकट सम्बन्धियों की मृत्यु पर तीन दिन का अनध्याय होता है ।[3]

---

1. -आप०धू०सू० 1/2/9/9-24, 1/3/10/9/10

2. -वही 1/3/10/20-29, 1/3/11/8, 1/3/11/27

3. वैरमणे गुरुष्वष्टाक्य औपाकरण इति त्र्यहा:। तथा सम्बन्धेषु ज्ञातिषु।।
   - वही 1/3/10/2-3

माता पिता तथा आचार्य की मृत्यु पर 12 दिनों के अनध्याय का उल्लेख सूत्रकार ने किया है[1]। परन्तु सूत्र 1/3/10/10 में आपस्तम्ब ने अन्य आचार्य के मत का उल्लेख किया जिसमें आचार्य की मृत्यु पर केवल तीन दिन का अनध्याय माना गया है एवं आपस्तम्ब ने श्रोत्रिय की मृत्यु का समाचार उसकी मृत्यु के एक वर्ष के भीतर सुनने पर एक दिन और एक रात का अनध्याय माना है । सूत्रकार ने उक्त संदर्भ में अन्य धर्मशास्त्रकारों का मत का भी उल्लेख किया है जिन्होंने श्रोत्रिय के सहाध्यायी होने पर ही उसकी मृत्यु का समाचार एक वर्ष के भीतर सुनने पर एक दिन और एक रात्रि के अनध्याय का नियम कहा है[2]।

कुछ अनाध्याय कालों को आकालिक कहा जाता है आकालिक अनध्याय 60 घटिकाओं का अर्थात् पूरे 24 घण्टे का होता है । आपस्तम्ब ने विद्युत,मेघ गर्जन,वर्षा और सूर्यग्रहण,चन्द्रग्रहण के समय,भूकम्प आने, आँधी चलने पर,उल्कापात होने पर आकालिक अनध्याय माना है ।

इसके अतिरिक्त उपाकर्म के उपरान्त एक मास तक रात्रि के प्रथम प्रहर में वेदाध्ययन का निषेध था[3] एवं अमावस्या पर दो दिन और दो

---

1. मातरि पितर्याचार्य इति द्वादशाहा:।।

-आ०ध०सू० 1/3/10/4

2. श्रोत्रियसंस्थायामपरिसंवत्सरायामेकाम्। [illegible]त्येके।।

रात अध्ययन का निषेध किया है एवं चौथमास की पूर्णिमा तथा जिन मासों में चातुर्मास्य यज्ञ किये जाते है अर्थात् फाल्गुन, आषाढ और कार्तिक की पूर्णिमा में अनध्याय का उल्लेख प्राप्त होने के अतिरिक्त श्रावण की पूर्णिमा को वेदाध्ययन का उपाकर्म करके एक मास तक प्रदोष काल मे अध्ययन का निषेध किया है एवं आषाढ़ महीने में और वसन्त के उत्सव के समय अनुवाक के अध्ययन का तथा प्रदोष में छन्द के किसी नये अंश के अध्ययन का निषेध आपस्तम्ब धर्मसूत्र में प्राप्त होता है[1]।

इस प्रकार आपस्तम्ब धर्मसूत्र में विस्तृत रूप से अनध्याय का वर्णन किया गया है । कुछ अवसर विचित्र एवं अनावश्यक से लगते है परन्तु कुछ के कारण तो तर्कसंगत एवं समझे जाने योग्य सिध्दान्तों पर आधारित है । वैदिक अध्ययन पूर्णत: स्मृति- परम्परा पर आधारित था अतएव वैदिक मन्त्रों के अध्ययन के लिए चित्त का एकाग्र होना अत्यावश्यक है क्योंकि मन की चंचलता मन्त्रों के शुध्द रूप से कण्ठस्थ में वाधक हो सकती है इसी कारण मन को चंचल कर देने वाले अवसरो में वेदाध्ययन के अनध्याय की चर्चा की गयी है ।

---

1. आ०ध०सू० 1/3/9/28, 1/3/10/1,15 ,1/3/9/1-2, 1/3/11/32

भोजन- पान

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भोजन सम्बन्धी नियमों एवं प्रतिबन्धों के विषय में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

भोजन विधि .- आपस्तम्ब के अनुसार पूर्व की ओर मुख करके अन्न का भक्षण किया जाय परन्तु माता के जीवित रहते दक्षिणामुख होकर भोजन किया जा सकता है[1]। भोजन करने का स्थल लिपा पुता एवं स्वच्छ होना अत्यावश्यक है[2]। भोजन बकरे के चर्म पर बैठकर करना अत्युत्तम माना है । सूत्रकार ने नौका, लकडी के मन्च पर भोजन करने का निषेध किया है [3]। भोजन पात्र तांबे का और उसका मध्य भाग सोने से अलंकृत होना आपस्तम्ब ने आवश्यक माना है किन्तु वे विकल्प से मिट्टी के ऐसे पात्र जिसमें पहले भोजन न पका हो, यदि पका हो तो गर्म कर लिया गया हो ,भोजन की अनुमति देते है । इसके अतिरिक्त लकडी के ऐसे पात्र मे जो भीतर से भलीभाँति खरादा गया हो भोजन पात्र के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता था[4] एवं आपस्तम्ब ने भोजन से पूर्व और भोजनोपरान्त दो बार

---

1. प्राङ्.मुखोऽन्नानि भुञ्जीत्तोच्चरेद्दक्षिणामुखः . . . .।।
   आ०ध०सू० 1/11/31/1, 2/8/19/1-2

2. कृतभूमौ तु भुञ्जीत ।।
   -आ०ध०सू० 1/5/17/8

आचमन करने का निर्देश दिया है[1] इतना ही नहीं भोजन करते समय जनेऊ (यज्ञोपवीत) अथवा उपवस्त्र धारण करना गृहस्थ के लिए आवश्यक था तथा उत्तरीय वस्त्र को बायें कन्धे के ऊपर तथा दाहिनी भुजा के नीचे लपेट कर भोजन किया जाता था[2]।

आपस्तम्ब ने भोजन करते समय मुख से किसी प्रकार के शब्द तथा दाहिना हाथ हिलाने का निषेध किया है[3] तथा निर्देश दिया है कि - जितना ग्रास एक बार में खाया जा सके उतने अन्न का पिण्ड बनावे, उसमें से थोडा भी अन्न भूमि पर गिरने नहीं देना चाहिए तथा उस सम्पूर्ण ग्रास को अंगूठे को मुख में डालते हुए एक बार में ही निगलना चाहिए[4]।

आपस्तम्ब के मतानुसार गृहस्थ को केवल दो बार भोजन करना

---

1. भोक्ष्यमाणस्तु प्रयतोऽपि व्दिराचामेध्दि: परिमृजेत्सकृदुपस्पृशेत्।।
   -आ०ध०सू० 1/5/16/9, 2/8/19/8
2. नित्यमुत्तरं वास: कार्यम्। अपि वा सूत्रमेवोपवीतार्थे।।
   -वही 2/2/4/22-23
3. न च मुखशब्दं कुर्यात । पाणिं च नाऽवधूनुयात्।।
   -वही 2/8/19/6-7
4. यावद्ग्रासं सन्नयन्नस्कन्दयन्नाऽपजिहीताऽपजिहीत वा कृत्स्नं ग्रासं ग्रसित सहाङ्गुष्ठम्।।
   -वही 2/8/19/5

चाहिए। इतना ही नहीं भोजन में लिये जाने वाले ग्रास के सम्बन्ध में आपस्तम्ब की धारणा है कि सन्यासी 8 ग्रास, वानप्रस्थी 16 ग्रास गृहस्थ 32 ग्रास ग्रहण करे किन्तु ब्रह्मचारी जितना चाहे उतना ग्रास खा सकता है[1] परन्तु आपस्तम्ब ने 2/4/9/12 सूत्र में गृहस्थ को पर्याप्त भोजन की अनुमति दी है जिस कि वह अपना कार्य ठीक से कर सके।

आपस्तम्ब ने रोटियों, फल मूल आदि को दांतों से टुकडे करने का निषेध किया है अपितु हाथ से तोड कर या काट कर भक्षण की अनुमति दी है[2]।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पहले अतिथियों को भोजन कराने तत्पश्चात् बालकों, वृध्दों, रोगियों, स्त्रियों तथा गर्भवती स्त्रियों को भोजन का उल्लेख प्राप्त होता है [3]। भोजन के लिए निमंत्रण एक दिन पहले दिया जाता था दूसरे दिन पुन: निमत्रण देने का उल्लेख प्राप्त होता है, उसी दिन जब भोजन प्रारम्भ होता था तो उससे पूर्व पुन: निमंत्रण दिया जाता था। आपस्तम्ब ने

---

1. आ०ध०सू० 2/4/9/13

2. वही 1/5/16/17

3. अतिथीनेवाऽग्रे भोजयेत्। बालान्वृध्दान्रोगसम्बन्धान्स्त्रीश्चान्तर्वत्नी:।।

-आ०ध०सू० 2/2/4/11-12

विना आग्रह के भोजन ग्रहण का निषेध किया है तथा जन्म चरित्र एवं विद्या के कारण अयोग्य व्यक्तियों, श्वेत कुष्ठ के रोगी, गंजे सिर वाले, परस्त्रीगमन करने वाले, अप्रिय कर्म करने वाले ब्राह्मण के पुत्र तथा ऐसे ब्राह्मण का ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र जो पहले शूद्रा पत्नी से विवाह करके शूद्र बन गया है के साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने का निषेध किया है[1] एव उन्होंने पंक्तिपावन जो अपनी उपस्थिति से पंक्ति मे बैठने वालों को पवित्र करते है के साथ भोजन करने की सलाह दी है उनकी दृष्टि में 'मधुवाता ऋतायते' आदि तीन-तीन बार मधु शब्द से युक्त वेद की तीन ऋचाओं का अध्ययन करने वाला तीन बार सुवर्ण शब्द से युक्त वेद के अंश का ज्ञान रखने वाला, तीन बार वाचिकेत अग्नि का चयन करने वाला (अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, पितृमेध, चार यज्ञों पर उपयोग में आने वाले मन्त्रों का ज्ञान रखने वाला, पांच अग्नियों को प्रज्वलित रखने वाला, ज्येष्ठ साम का ज्ञाता, दैनिक अध्यवसाय करने वाला, अङ्गो सहित सम्पूर्ण वेद का अध्ययन करने में समर्थ ब्राह्मण तीन विद्याओं के ज्ञात का पुत्र तथा श्रोत्रिय पंक्तिपावन है। अतएव इनके साथ पंक्ति मे बैठकर भोजन करना चाहिए[2]।

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने किसी के जूठे भोजन के भक्षण अथवा

---

1. नाऽननियोगपूर्वमिति हारीत:।अनर्हद्भिर्वा समानपङ्क्तौ।श्वित्रिशिपिविष्ट: परतल्पगाम्यायुधीयपुत्रश्शूद्रोत्पन्नो ब्राह्मण्यामित्येते श्राध्दे भुञ्जाना: पङ्क्तिदूषणा भवन्ति।।

-आ०ध०सू० 1/6/19/12, 1/5/17/2, 2/7/17/21

किसी को जूठा भोजन देने का निषेध किया है परन्तु माता-पिता बड़े भाई एवं गुरु के जूठे खाने की अनुमति दी है किन्तु इस प्रकार की अनुमति उसी अवस्था में प्राप्त थी जब तक माता पिता, बड़े भाई गुरु का आचरण धर्म के विपरीत न हो यदि उनका आचरण धर्म के विपरीत हो तो जूठा खाने का निषेध किया है[1]।

जहाँ तक किसी व्यक्ति को जूठा खाना देने का सम्बन्ध है आपस्तम्ब ने केवल अपने आश्रित शूद्र के अतिरिक्त किसी अन्य को अपना जूठा भोजन देने का निषेध किया है[2]।

<u>माँस भक्षण :-</u> धर्मसूत्रों के काल में माँस भक्षण एक आम बात थी । आपस्तम्ब (2/3/7/4) धर्मसूत्र के अनुसार अतिथि को माँस देने से व्दादशाह यज्ञ करने का फल मिलता है ।

आपस्तम्ब ने माँस भक्षण के सम्बन्ध में निम्न नियम दिये हैं-एक खुर वाले पशुओं का, ऊँट का, गवय ग्राम्य सूकर, शरम एवं गाय का माँस अभोज्य है (एक खुर वाले पशु की श्रेणी में अश्व आता है तथा गवय से तात्पर्य गो के

---

1. मात्जिष्ठं राजन्यस्य ।पितुर्ज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं भोक्तव्यम्।
धर्मविप्रतिपत्तावभोज्यम्।। -आ०ध०सू० 1/1/3/1, 1/1/4/11-12

2. नाऽब्राह्मणायोच्छिष्टं प्रयच्छेत्। यदि प्रयच्छेद्दन्तान् स्कुप्त्वा
तस्मिन्नवधाय प्रयच्छेत्।।
-वही 1/11/31/25-26

सदृश पशु अर्थात् नीलगाय इस श्रेणी के अन्तर्गत है ।

आपस्तम्ब ने वाजसनेयक के मत का उल्लेख करते हुए बैलों के माँस को पवित्र माना है तथा गाय एवं बैल के माँस को भक्ष्य बताया है[1]।

यहाँ आपस्तम्ब द्वारा दो परस्पर विरोध मत प्रस्तुत किया गया है । आपस्तम्ब (1/5/17/29) में गौ के माँस को अभोज्य मानते है वहीं अगले सूत्र में (1/5/17/30) में धेनु एवं अनडुह के माँस को भक्ष्य कहते है । यहाँ यह विचारणीय है कि, आपस्तम्ब ने अन्य धर्मसूत्रकारों की भाँति धेनु के वध पर पूर्ण प्रतिबन्ध नहीं लगाया अपितु 1/9/26/1 सूत्र में अकारण धेनु तथा अनडुह के वध का निषेध किया है इस प्रकार हम देखते है कि आपस्तम्ब ने धेनु तथा अनडुह के वध का निषेध नहीं किया, अपितु पहले अपने पूर्ववर्ती धर्मसूत्रकारों (गौ० धर्म०सू० 2/8/30) से प्रभावित होकर गौ माँस भक्षण का निषेध किया बाद में उन्होंने अपने समय में प्रचलित मान्यताओं के कारण अनुमति दी है । उन्होंने अनेक स्थलों पर स्पष्ट रूप से गौ माँस भक्षण की अनुमति दी है यथा गौ का माँस एक वर्ष तक सन्तुष्टि देता है[2]।

---

1. एकखुरोष्ट्रगवयग्रामसूकरशरभगवाम् ।
   धेन्वनड्डहोर्भक्ष्यम्। मेध्यमानड्डहमिति वाजसनेयकम् ।

   -आ०ध०सू० 1/5/17/29, 1/5/17/30-31

2. संवत्सरं गव्येन प्रीतिः ।।

   -वही 2/7/16/25

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने पाँच नख वाले पशुओं (नर, वानर, बिल्ली) के भक्षण का निषेध किया है परन्तु गोधा, कछुआ, श्वाविद्, शल्यक, खड्ग, शश, पूतिखष के भक्षण की अनुमति दी है[1]। गौतम (2/8/27) से भी आपस्तम्ब के मत का समर्थन प्राप्त होता है परन्तु पूतिखष का उल्लेख नहीं किया है। हरदत्त (1/5/17/37) की व्याख्या में पूतिखष को हिमालय में पाया जाने वाला खरगोश सदृश जानवर बतलाया गया है।

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने हिंसा के लिए प्रयुक्त तलवार या चाकू से काटे गये मांस का भक्षण वर्जित माना है[2]।

पक्षियों की तीन श्रेणियों का उल्लेख आपस्तम्ब ने किया है।

(1) विकिर (जो पैरों से खुरच कर कीड़ों को खाते है)।

(2) प्रतुद (जो पक्षी चोंच से अन्न इत्यादि फोडकर खाते हैं)।

(3) क्रव्य (शव का भक्षण करने वाले पक्षी)।

---

1. पञ्चनखानां गोधाकच्छपश्वाविट्छल्यकखड्.गशश[illegible]र्जम्।।

-आ०ध०सू० 1/5/17/37

2. हिंसार्थेनाऽसिना मांसं छिन्नमभोज्यम्।।

-वही 1/5/16/16

जहाँ तक प्रथम श्रेणी का सम्बन्ध है जिसमे मयूरादि की गणना होती है, मुर्गा को छोड़कर विकिर पक्षी को भोज्य बताया है[1]।

प्रतुद श्रेणी के पक्षियों में प्लव को छोडकर अन्य पक्षियों को भोज्य माना गया है ।

क्रव्य श्रेणी के सभी पक्षियाें यथा गिध्द, चील आदि अभक्ष्य थे[2]।

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने हसभास चक्रवाक, वाज, क्रुञ्ज, क्रौञ्च को अभक्ष्य बताया है[3]।

मछली के भक्षण के विषय में आपस्तम्ब धर्मसूत्र[4] के मत से चेत (मगर या घड़ियाल) वर्जित है तथा सर्प की भांति सिर वाली एवं मकर वर्जित है परन्तु शतबलि नामक मछली भोज्य है ।

---

1. कुक्कुटो विकिराणाम्।।
   -आ०ध०सू० 1/5/17/32
2. प्लव: प्रतुदाम् । क्रव्याद:।।
   -वही 1/5/17/33-34
3. हंसभासचक्रवाकसुपर्णाश्च । क्रुञ्चक्रौञ्च वार्ध्राणसलक्ष्मणवर्जम्।।
   -वही 1/5/17/25-36
4. आ०ध०सू० 1/5/17/38-39, 2/17/17/2

<u>दुग्ध प्रयोग</u>.- दुग्ध के विषय मे आपस्तम्ब ने बहुत से नियम बनाये है ।उनके अनुसार भेड ऊँटनी, हिरणी, सन्धिनी, गाय भैंस आदि, एक बार में कई बच्चे देने वाली एक खुर वाली मादा पशु का दूध अपेय है[1]।

प्रो० काणे के अनुसार सन्धिनी के तीन अर्थ हैं (1) जो गाय गर्भवती होना चाहती है (2) वह गाय जो दिन में केवल एक बार दूध देती है (3) वह गाय जो दूसरे बछडे के लाने पर दूध देती है[2]। व्याख्याकार हरदत्त ने सन्धिनी का अर्थ गर्भिणी होते हुए दूध देने वाली अथवा एक समय दूध देनी वाली किया है[3]।

आपस्तम्ब ने गाय (भैंस अथवा बकरी) का दूध व्याने के दस दिन तक अपेय कहा है[4]।

---

1. तथैलकं पय:। उष्ट्रीक्षीरेमृगीक्षीरसन्धिनीक्षीरयमसूक्षीराणीति।।

-आ०ध०सू० 1/5/17/22-23

2. प्रो० काणे- धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 1 पृ० 424

3. आ०ध०सू० 1/5/17/23 पर हरदत्त की टिप्पणी

4. धेनोश्चाऽनिर्दशाया:।।

-आ०ध०सू० 1/5/17/24

गौतम ने भी (2/8/22-26) अनिदशा सन्धिनी एवं विवत्सा गौ के दुग्ध का निषेध किया है ।

<u>शाकभाजी का प्रयोग</u> - अति प्राचीन काल से कुछ शाक भाजियाँ वर्जित ठहरायी गयी है आपस्तम्ब के मत से वे सभी शाक जिनसे मदिरा निकाली जाती है कलञ (लाल लहसुन), पलाण्डु (प्याज),परारीका (काला लहसुन) तथा वे शाक भाजियाँ जिन्हे भद्र लोग नहीं खाते है , भोजन के प्रयोग में नही लानी चाहिए इसी प्रकार क्याकु (कवक,कुकुरमुत्ता) भी नही खाना चाहिए[1]।

<u>वर्जित पक्व पदार्थ</u>:- आपस्तम्ब के अनुसार रातभर बनाकर रखा हुआ भोजन न खाये न पीयें एवं खट्टा बने हुए भोजन को ग्रहण न करें परन्तु फाणित (ईख का रस-सिरका) पृथुक्तण्डुल (चिउड़ा) करम्ब, भरुज (भुना हुआ यव) सक्तु,शाक,माँस, पिष्ट,क्षीर तथा क्षीर विकार(दूध से निर्मित पदार्थ दही आदि) औषधि,वनस्पति फल और मूल के विषय में उक्त नियम नही होता है । अर्थात् इन्हें खाने के काम में लाया जा सकता है [2]।

---

1. तथा कीलालौषधीनां च । करञ्जपलाण्डुपरारीकाः। यच्चान्यत् परिचक्षते।।
   - आ०ध०सू० 1/5/17/25-27

2. कृतान्नं पर्युषितमखाद्यापेयानाद्यम् । शुक्तं च । फाणितपृथुकतण्डुलकरम्ब भरुजसक्तुशाकमांसपिष्टक्षीरविकारौषधिवनस्पतिमूलफलवर्जम्।।
   - वही 1/5/17/17-19

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने उन वस्तुओं का निषेध किया है जो दूसरी वस्तु के साथ मिलाये बिना ही खट्टी हो गई हैं[1]। इस प्रकार दही और दही से निर्मित पदार्थ भक्ष्य हैं क्योंकि ये दूध के विकार हैं इसी प्रकार खट्टे पदार्थ जो पुष्प मूल व फलों के सन्धान से बनते हैं भक्ष्य हैं ।

त्याज्य भोजन:- आपस्तम्ब ने किसी व्यक्ति के कुल में यदि कोई मर गया है और अशौच का समय (दस दिन का) न बीता है तो उसके घर भोजन का निषेध किया है । इसी प्रकार ऐसे घर में जहाँ सूतिका स्त्री सूतिकागृह से न निकली हो जिस घर में शव हो, भोजन अभोज्य कहा है[2]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने जिस अन्न में केश,कीडा,चूहे का मल अथवा उसके अंग का टुकडा अथवा अन्य अपवित्र वस्तुये पडी हो अथवा अपवित्र वस्तुए, शूद्र व्दारा स्पर्श होने पर इस प्रकार का भोजन अभोज्य बताया है[3] एवं पैर से छुआ गया,पहने हुए वस्त्र के छोर से स्पृष्ट कुत्ते अथवा अपात्र व्दारा

---

1. शुक्तं वा परयोगम्।।

-आ०ध०सू० 1/5/17/20

2. यस्य कुले म्रियेत न तत्राऽनिर्दशे भोक्तव्यम्। तथाऽनुत्थितायां सूतकायाम्। अन्त: शवे च ।।

- वही 1/5/16/18-20

3. आ०ध०सू० 1/5/16/22-27, मनु० 4/207, याज्ञ० 1/167

छुआ गया, वस्त्र के आँचल में बाधकर लाया गया अन्न अभोज्य है[1]।

आपस्तम्ब के अनुसार यदि भोजन करते समय शूद्र भोजन करने वाले व्यक्ति को छू ले तो वह व्यक्ति भोजन न करे एवं जहाँ तिरस्कार करके अन्न दिया गया हो वहां भोजन न करें तथा मनुष्यों व्दारा अथवा अपवित्र प्राणियों व्दारा निकट से सूँघे गये तथा बाजार से खरीद कर अथवा बना हुआ प्राप्त भोजन को खाना नही चाहिए[2] एवं बहुत से व्यक्तियों के समूह से प्राप्त अथवा चारों ओर पुकार कर दिया गया एवं शिल्पकला से तथा शस्त्र से जीविका (क्षत्रिय के अतिरिक्त) चलाने वाला, मकान एव भूमि किराये पर देने वाले, वैद्य (जो औषध से जीविका चलाता है), नपुंसक, ब्याज लेने वाले का, राजा के संदेश वाहक का, बिना विधि सन्यास ग्रहण करने वाले व्यक्ति का, अग्नि का परित्याग करने वाले व्यक्ति का, स्वाध्याय न करने वाले ब्राह्मण तथा जिस ब्राह्मण की शूद्रा पत्नी जीवित हो, अथवा मदपान से मत्त, पागल, अपने पुत्र से वेद का अध्ययन करने वाला, ऋणी को ऋण लेने के लिए रोक कर बैठने वाले व्यक्तियों का भोजन अभोज्य होता है[3]।

---

1. आ०ध०सू० 1/5/16/28-31 मनु० 4/208
2. आ०ध०सू० 1/5/16/33, 1/5/17/1,4,5 एवं 1/5×17/14, मनु० 4/212, याज्ञ० 1/167
3. आ०ध०सू० 1/6/18/16-33 एव 1/6/19/1, गौ०ध०सू० 15/18 एवं 17/17-18, मनु० 4/205-220 , याज्ञ० 1/160-165

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने पुराण में श्लोक को उद्धृत किया है जिसके अनुसार चिकित्सक, बहेलिया, वीडफाड करने वाला, जाल से मृग इत्यादि को पकड़ने वाला कुलटा स्त्री और नपुसक का अन्न अभोज्य है[1]।

समावर्तन के बाद ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के यहाँ भोजन नहीं कर सकता था। यदि ब्राह्मण इस कृत्य को करता है तो उसको प्रायश्चित्त करना पड़ता था, यदि ब्राह्मण व्दारा प्रायश्चित्त नहीं किया जाता था तो उस ब्राह्मण व्दारा दिया गया भोजन अभोज्य होता था परन्तु यदि वह प्राय-श्चित्त कर ले तो उसके घर भोजन की अनुमति आपस्तम्ब ने दी है[2]।

निहित भोजन एवं भोज्यान्न.- आपस्तम्ब ने शूद्र को छोड़कर अपने धर्म में वर्त-मान सभी तीन वर्णों का अन्न भोज्य माना है[3]। इससे यह स्पष्ट होता है कि यदि व्दिज अपने वर्णगत धर्मों में स्थित हैं तभी उनका भोजन ग्राह्य था, यदि

---

1. चिकित्सकस्य मृगयोश्शल्यकृन्तस्य पाशिनः।।

   -आ०ध०सू० 1/6/19/14

2. एवमापदि वृत्तिमुक्त्वा सुभिक्षेऽनापदि वृत्तिमाह त्र्याणां वर्णानां क्षत्रियप्रभृतीनां समावृत्तेन न भोक्तव्यम्।
   प्रकृत्या ब्राह्मणस्य भोक्तव्यमकारणादभोज्यम्।यत्राऽप्रायश्चित्तं कर्मा सेवते प्रायश्चित्तवति। चरितनिर्वेषस्य भोक्तव्यम्।।

   -वही 1/6/18/9-12

3. सर्ववर्णानां स्वधर्मे वर्तमानानां भोक्तव्यं शूद्रवर्जमित्येके।।

   -वही 1/6/18/13

व्दिज अपने वर्णगत धर्मों से भिन्न कर्म करते हैं तो उनका भोजन त्याज्य था । जहां तक शूद्र के व्दारा दिये गये भोजन को ग्रहण करने का सम्बन्ध है आपस्तम्ब ने इसकी अनुमति उसी अवस्था में दी है जब वह धर्म के लिये आश्रित हो, तथा व्दिज आपत्ति के समय ही शूद्र से अन्न ग्रहण करें एवं सोने या अग्नि से स्पर्श कराकर भोजन ही किया जाय और भोजन में व्दिज विशेष रुचि न ले और अपनी यथोचित जीवनवृत्ति प्राप्त कर लेने पर शूद्र व्दारा प्रदत्त अन्न त्याग दे[1]।

इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति भोजन के लिए प्रार्थना करता था उसी का भोजन भोज्य होता था एवं कौत्स ऋषि के मत के आधार पर आपस्तम्ब ने सभी पुण्य आचरण वाले व्यक्तियों का अन्न भोज्य कहा है[2]। इससे यह ध्वनित होता है कि यदि पुण्य आचरण वाला व्यक्ति भोजन के लिए प्रार्थना नहीं करता है तब भी उसका अन्न भोज्य होता है ।

आपस्तम्ब ने वार्ष्यायणि के मत का उल्लेख करते हुए प्रत्येक दानशील व्यक्ति के अन्न को भोज्य कहा है[3]। यहां पर यह प्रश्न उठना स्वा-

---

1. तस्याऽपिधर्मोपनतस्य।। न सुभिक्षा: स्यु:। स्वयमप्यवृत्तौ सुवर्णं दत्वा पशुं वा भुञ्जीत । नाऽत्यन्तमन्ववस्येत्।।
   -आ०ध०सू० 1/6/18/14, 1/6/18/5-7

2. य ईप्सेदिति कण्व:। पुण्य इति कौत्स.।।
   - वही 1/6/19/3-4

3. य: कश्चिद्दद्यादिति वार्ष्यायणि:।।
   -वही 1/6/19/5

भाविक है क्या दानशील व्यक्ति जो गुणी न हो तो भी उसके द्वारा प्रदत्त भोजन भोज्य है ? इस सम्बन्ध मे विचारणीय पक्ष यह है आपस्तम्ब ने वर्णगत धर्म में स्थित व्यक्ति के भोजन को ही ग्राह्य कहा है, यदि दानशील व्यक्ति अपने वर्णगत धर्म मे निष्ठ नहीं है तो भी उसका भोजन अग्राह्य है ।

<u>भोजन बनाने एवं परोसने वाले</u>.- पाचकों एवं परोसने वालों के विषय में आपस्तम्ब ने अनेक नियम दिये है । आपस्तम्ब के अनुसार व्दिज स्नान से पवित्र होकर भोजन बना सकते हैं एवं भोजन बनाने वाले का मुख जब तक अन्न की तरफ हो तब तक वह न बोले एवं उसके लिए खाँसना एवं थूकना भी वर्ज्य था। यदि वह भोजन पकाते समय शरीर के किसी अंग को अथवा वस्त्र को छू ले तो वह जल का स्पर्श करके अपने को पवित्र करने के पश्चात् ही पुन: अन्न का स्पर्श करे[1]।

यद्यपि आपस्तम्ब ने शूद्र को अन्य वर्णों के व्यक्तियों के लिये भोजन बनाने की अनुमति दी है परन्तु उस पर अनेक प्रतिबन्ध थे यथा वह भोजन केवल आर्यजनों की देखरेख में ही बना सकता था तथा प्रतिदिन वह अपने केशों, दाढी, शरीर के बालों तथा नाखूनों को काटे, विकल्प से प्रत्येक पक्ष की अष्टमी

---

1. आर्या: प्रयता वैश्वदेवेऽन्नसंस्कर्तार: स्यु:। भाषां कासं क्षवधुमित्यभिमुखोऽन्नं वर्जयेत्। केशानङ्गं वासश्चाऽऽलभ्याप उपस्पृशेत्।।

-आ०ध०सू० 2/2/3/1-3

तिथि या पर्वों पर केश, दाढी ,नाखूनों को कटवाने की बात कही है तथा प्रत्येक दिन शूद्र को अपने सभी वस्त्रों के साथ स्नान करना अत्यावश्यक था । इस प्रकार उक्त प्रतिबन्धों के साथ शूद्र का भोजन भोज्य था । यदि शूद्र उक्त प्रतिबन्धों के साथ भोजन तैयार करता था तो गृहस्थ अन्न को अग्नि तथा जल छिड़ककर देवताओं को अर्पित किये जाने योग्य बना सकता था [1]।

मद्यपान.- ऋग्वेद ने सोम एवं सुरा में अन्तर बताया है ।सोम मदमस्त करने वाला पेय पदार्थ था और इसका प्रयोग केवल देवगण एवं पुरोहित लोग कर सकते थे,किन्तु सुरा का प्रयोग अन्य कोई भी कर सकता था।

सोम के सम्बन्ध में आपस्तम्ब धर्मसूत्र मौन है किन्तु उसने सभी प्रकार की मादक वस्तुओं को अपेय कहा है[2]। जहां तक सुरा का सम्बन्ध है आपस्तम्ब ने सुरा का पान एक महापातक माना है[3] तथा प्रायश्चित्त के रूप में सुरापान करने वाले को अग्नि पर खौलायी गई सुरा पान का विधान किया है[4]।

---

1. आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः। तेषां स एवाऽऽचमनकल्पः।
   अधिकमहरहः केशश्मश्रुलोमनखवापनम्। उदकोपस्पर्शनं च सह वाससा।
   अपि वाऽष्टमीष्वेव पर्वसु वा वपेरन्। परोक्षमन्नं संस्कृतमग्नावधिश्रित्याऽद्भिः
   प्रोक्षेत्तद्देवपवित्रमित्याचक्षते।।

   -आ०ध०सू० 2/2/3/4-9
2. सर्वं मद्यमपेयम् ।। आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/5/17/21
3. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/7/21/8
4. सुरापोऽग्निस्पर्शां सुरां पिबेत्।। आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/9/25/3

पचम अध्याय

धार्मिक स्थिति

पचम अध्याय

आश्रम [1]

ऋषि प्रणीत आश्रम व्यवस्था हिन्दू संस्कृति का मुख्य स्तम्भ है । आश्रमों की कल्पना हमारे ऋषियों ने मानव जीवन को नियमित, संयमित एवं आध्यात्मिक बनाने के लिए की है। इस व्यवस्था के पीछे समाज की उदात्त भावना छिपी थी । सबको कार्य करने का समय निर्धारित था ताकि समाज में असंगति, असन्तोष, अनुशासनहीनता एवं असद् आचरण का जन्म न हो सके।

आश्रम व्यवस्था पर आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पर्याप्त जोर दिया गया है । आश्रमों की व्यवस्था संस्कारों की आधारभूमि पर की गई है। आपस्तम्ब[2] का कथन है कि जिस प्रकार उत्तम और अच्छी प्रकार जोते हुए खेत मे पौधों और वनस्पतियों के बीज अनेक प्रकार के फल उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार गर्भा-धान आदि संस्कारो से युक्त व्यक्ति भी फल का भागी होता है ।

इसी पृष्ठभूमि पर आपस्तम्ब धर्मसूत्र[3] में चार आश्रमों का निम्न क्रम मे उल्लेख प्राप्त होता है ﴾1﴿ गार्हस्थ्य ﴾2﴿ आचार्यकुल में निवास ﴾3﴿ मौन ﴾अर्थात् सन्यास﴿ ﴾4﴿ वानप्रस्थ ।

---

1. आश्राम्यन्त्येषु श्रेयो र्थिनः पुरुषा इत्याश्रमाः ।

2. यथोषधि वनस्पतीनां बीजस्य क्षेत्रकर्म विशेषे फलपरिवृध्दि रेवम्।।
   –आ0ध0सू0 2/1/2/4

इस प्रकार आपस्तम्ब द्वारा गृहस्थाश्रम का उल्लेख सर्वप्रथम किया गया है । सम्भवत गृहस्थ धर्म की महत्ता के कारण ही गृहस्थाश्रम का प्रथमत उल्लेख किया है । आपस्तम्ब के अनुसार त्रयीविद्या के पारगत विव्दानों के मत में वेद ही परम प्रमाण है । इसलिये वेद में व्रीहि,यव,पशु, यज्ञ,पय कपाल तथा पत्नी के साथ जिन कर्मों,यज्ञादि का विधान है उन्हें ही करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वेद में सन्तति धर्म को ही अमृतत्व कहा है [1] ।

वस्तुत गृहस्थ धर्म की महत्ता के कारण ही आपस्तम्ब ने गार्हस्थ धर्म का सर्वप्रथम उल्लेख किया है । मनु का भी कथन है कि जिस प्रकार प्राण-वायु का आश्रय प्राप्त कर सभी जीव जीते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय प्राप्त कर सभी आश्रम चलते हैं[2] । तथा प्रत्येक आश्रम का अनुसरण अनुक्रम से होना चाहिए सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य गृहस्थ और गृहस्थ के उपरान्त वानप्रस्थ और अन्त में सन्यास । ऐसा नहीं है कि कोई एक या अधिक आश्रम को छोडकर किसी अन्य को अपना ले या सन्यासी हो जाने पर गृहस्थ हो जाय[3] ।

---

1. अथाप्यस्य प्रजातिममृतमाम्नाय आह-प्रजामनु प्रजायसे तदु ते मर्त्याऽमृतमिति।।
   - आ०ध०सू० 2/9/24/6।

2. यथावायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तव.। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा.।। - मनु 3/77

3. मनु स्मृ० 4/1, 6/1,6/33-37, 6/87-88

परन्तु आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे ज्ञात होता है कि व्यक्ति को क्रम से चारों आश्रमो में निवास करना अनिवार्य नही था । अपितु आपस्तम्ब की धारणा थी कि कोई व्यक्ति जिस आश्रम में रहना चाहे उसमें रह सकता था परन्तु ब्रह्मचर्याश्रम में निवास सबके लिए अनिवार्य था[1] । अतएव ब्रह्मचर्य के बाद कोई सीधे परिव्राजक हो सकता था अथवा वानप्रस्थ आश्रम में निवास कर सकता था [2] ।

<u>ब्रह्मचर्य</u> – ब्रह्मचर्याश्रम उपनयन संस्कार से आरम्भ होता है । उपनयन का मुख्य प्रयोजन विद्याग्रहण है । एतदर्थ ब्रह्मचर्यावस्था का मुख्य लक्ष्य अध्ययन है।

<u>ब्रह्मचारियों के प्रकार</u> – आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे ब्रह्मचारियों के दो प्रकार के विभाजन दिखलाई पड़ते है । प्रथम नैष्ठिक ब्रह्मचारी और द्वितीय उपकुर्वाण। नैष्ठिक ब्रह्मचारी जीवनपर्यन्त गुरु के आश्रम में रहकर ज्ञान प्राप्त करता था । तथा मोक्ष प्राप्ति की साधना में तत्पर रहता था तथा वह आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करता था । उसके लिए अन्य आश्रमों में प्रविष्ट होने

---

1. सर्वेषामुपनयनप्रभृति समान आचार्यकुलेवास ।।
   सर्वेषामनूत्सर्गो विधाया. ।।
   -आ०ध०सू० 2/9/21/3-4

2. आ०ध०सू० 2/9/21/8,19

की आवश्यकता नहीं रहती थी । आपस्तम्ब ने नैष्ठिक ब्रह्मचारी की अत्यधिक प्रशंसा की है एवं उनका कथन है कि जो ब्रह्मचारी अपने मन को आचार्य के कुल में ही लगाता है वह उन सभी पुण्यफलवाले कर्मों को कर लेता है जो गृहस्थाश्रम में किये जाते है[1] ।

उपकुर्वाण की कोटि में आने वाला ब्रह्मचारी भी गुरु के समीप रहकर विद्याध्ययन करता है परन्तु यह कुछ काल समाप्त होने पर गुरु के व्दारा आदिष्ट होने पर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होता था उपकुर्वाण कोटि वाले ब्रह्मचारी स्नातकों की तीन श्रेणियों का उल्लेख आपस्तम्ब ने किया है -(1) विद्या स्नातक[2] (2) व्रत स्नातक[3] (3) विद्याव्रत स्नातक[4] ।

---

1. सब एवं प्रणिहितात्मा ब्रह्मचार्यत्रैवास्य सर्वाणि कर्माणि फलवन्त्य-
   वाप्तानि भवन्ति यान्यपि गृहमेधे ।।

   - आ०ध०सू० 1/1/4/29

2. आ०ध०सू० 1/10/30/1
3. वही 1/10/30/2
4. वही 1/10/30/3

आपस्तम्ब ने ऐसे उपकुर्वाण विद्यार्थियों के लिए अन्तेवासी शब्द का भी प्रयोग किया है[1] जो आचार्य कुल में निवास करते थे उन्होंने विद्यार्थियों के लिए आचार्यकुल में निवास अत्यावश्यक माना है[2] । यद्यपि आपस्तम्ब आचार्य कुल में निवास की न्यूनतम अवधि 12 वर्ष मानते है परन्तु उन्होंने विकल्प से अड़तालिस वर्ष, छत्तीस वर्ष या चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचारी के आचार्य कुल में निवास की अवधि का उल्लेख किया है[3] ।

ब्रह्मचारियों की वेशभूषा - आपस्तम्ब ने ब्रह्मचारी की वेशभूषा का विषद्रूप से वर्णन किया है । तत्समय ब्रह्मचारी की वेशभूषा में वस्त्र, दण्ड एवं मेखला थी ।

ब्रह्मचारी दो वस्त्र धारण करता था जिनमे एक अधोभाग के लिए (वासस्) और दूसरा ऊपरी भाग के लिए (उत्तरीय)। आपस्तम्ब के अनुसार

---

1. आ०ध०सू० 1/2/8/27

2. उपेतस्याऽऽचार्यकुले ब्रह्मचारिवास ।।
   - आ०ध०सू० 1/1/2/11

3. अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि। पादूनम । अर्धेन । त्रिभिर्वा ।व्दादशावराध्यम्।।
   - आ०ध०सू० 1/1/2/12-16

ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्य ब्रह्मचारी के लिए वासस् क्रमशः बटुआ के सूत का सत के सूत का एव मृगचर्म का होना चाहिए[1]। तथा ब्राह्मण का वस्त्र लाल रंग, क्षत्रिय का मजीठ रंग का तथा वैश्य का हल्दी के रंग का होना चाहिए[2]।

उत्तरीय के रूप में आपस्तम्ब ने केवल चर्मधारण की अनुमति दी है[3]। उनके अनुसार ब्राह्मण द्वारा धारण किया जाने वाला चर्म हिरण का हो अथवा काले रंग की मृगी का[4]। क्षत्रिय द्वारा धारण किया जाने वाला चर्म रुरुमृग (धब्बेवाले) का हो तथा वैश्य द्वारा बकरे का चर्मधारण किया जाय[5]। इसके अतिरिक्त विकल्प से सभी वर्णों के लिए भेड़ का चर्म या भेड़ की ऊन से निर्मित कम्बल आपस्तम्ब ने स्वीकार किया है[6]।

---

1. वास. । शाणीक्षौमाजिनानि।।

- आ०ध०सू० 1/1/2/39-40

2. काषायं चैके वस्त्रमुपदिशन्ति। माञ्जिष्ठं राजन्यस्य।हारिद्रं वैश्यस्य।।

- आ०ध०सू० 1/1/2/41 एव 1/1/3/1-2

3.अजिनंत्वेवोत्तरं धारयेत् ।।

-वही 1/1/3/10

4. हारिणमैणेयं वा कृष्णं ब्राह्मणस्य ।।

-वही 1/1/3/3

5.रौरवंराजन्यस्य। बस्ताजिनं वैश्यस्य ।।

-वही 1/1/3/5-6

6. आविकं सार्ववर्णिकम् । कम्बलश्च ।।

-वही 1/1/3/7-8

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने अपेक्षा की है कि जो ब्रह्मचारी ब्रह्मशक्ति की वृध्दि चाहता है वह केवल अजिन् [मृगचर्म] ही धारण करे, क्षत्रिय जो शक्ति की वृध्दि चाहने वाला वस्त्रों को ही धारण करे । तथा दोनों की वृध्दि चाहने वाले- अजिन् एवं वस्त्र दोनों को धारण करे[1] ।

जहाँ तक मेखला का प्रश्न है आपस्तम्ब ने ब्राह्मण की मेखला मूज की तथा तीन गुण वाली बतायी है तथा वे गुण दाहिनी ओर को बटे होने चाहिए तथा क्षत्रिय की मेखला धनुष की डोरी की तथा वैश्य की मेखला ऊन का धागा होनी चाहिए[2]। विकल्प से आपस्तम्ब ने क्षत्रियों के लिए अयस् के खण्ड से युक्त मूज की तथा वैश्यों के लिए जो की रस्सी या तमाल [सन] की छाल से बटी गई रस्सी की मेखला के रूप में धारण करने की अनुमति दी है[3] ।

ब्रह्मचारी के व्दारा प्रयुक्त दण्ड वर्ण के अनुसार विभिन्न वृक्षों की लकड़ी से निर्मित होता था। आपस्तम्ब ने ब्रह्मण के लिए पलाश का क्षत्रिय के लिये न्यग्रोध वृक्ष की नीचे की ओर निकलने वाली शाखा का तथा वैश्यक

---

1. आ०ध०सू० 1/1/3/9

2. मौञ्जी मेखला त्रिवृद् ब्राह्मणस्य शक्तिविषये दक्षिणावृन्तानाम् ।।
   ज्या राजन्यस्य । आवीसूत्र वैश्यस्य ।।
   -वही 1/1/2/33-34, 36

3. मौन्जी वाऽयोमिश्रा।। वही 1/1/2/35

ब्रह्मचारी के लिए बदर या उदुम्बर की लकडी के दण्ड का विधान किया है। इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब के अनुसार कुछ आचार्य बिना वर्ण के निर्देश के ब्रह्मचारी का दण्ड यज्ञीय वृक्ष की लकडी का विहित करते हैं[1]।

सूत्रकार ने विद्यार्थियों के सिर के केशों के विषय में कहा है कि सभी केशों को जटा बाधकर धारण करे। अथवा शिखा को ही जटा बनाकर धारण करे एवं शेष केशों को मुडा डाले[2]।

ब्रह्मचारी का जीवन - ब्रह्मचारी का जीवन अत्यन्त व्यवस्थित संयमित और नियमबध्द था। अतएव आपस्तम्ब ने ब्रह्मचारी के प्रतिदिन की दिनचर्या को नियंत्रित करने हेतु अनेक नियम विहित किये है यथा ब्रह्मचारी को आचार्य के सोने से पहले उठना चाहिए तथा आचार्य के सोने के बाद सोना चाहिए[3] जगने बाद प्रतिदिन धर्मार्थ कर्मों में ब्रह्मचारी गुरु की सहायता करे[4]। सांयकाल

---

1. पालाशो दण्डो ब्राह्मणस्य नैयग्रोधस्कन्धजोऽवाग्रो राजन्यस्य बादर ओदुम्बरो वा वैश्यस्य वार्क्षो दण्ड इत्यवर्णसंयोगेनैक उपदिशन्ति।।

-आ0ध0सू0 1/1/2/38

2. जटिल ।। शिखाजटो वा वापयेदितरान् ।।

-वही 1/1/2/31-32

3. अथ च पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी तमाहुर्न स्वपितीति ।।

-वही 1/1/4/28

4. [illegible]

और प्रातः काल कुम्भधारा गुरु के लिये घड़े में जल लाये[1] । प्रतिदिन वन से ईंधन लाकर आचार्य के घर के नीचे रखे[2] एवं अग्नि जलाकर उसके चारो ओर की भूमि साफ करके गृह्यसूत्र में उक्त विधि से सायं प्रातः समिधाओं का आधान करे[3]। परन्तु आपस्तम्ब ने इस सम्बन्ध में अन्य आचार्यों के मत का उल्लेख किया है जिनका मत है कि अग्नि की पूजा केवल सायकाल करें[4] ।

उक्त के अतिरिक्त छात्र को भिक्षापात्र लेकर प्रातः और सायं भिक्षाटन करना अनिवार्य था[5] । इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब ने अनेक नियम दिये

---

1. सायं प्रातरुदकुम्भमाहरेत् ।।

-आ०ध०सू० 1/1/4/13

2. -वही 1/1/4/32

3. अग्निमिध्वा परिसमूह्य समिध आदध्यात्सायम्प्रातर्यथोपदेशम् ।।

-वही 1/1/4/16

4. सायमेवाऽग्निपूजेत्येके ।।

-वही 1/1/4/17

5. सर्वं लाभमाहरन् गुरवे सायं प्रातरमत्रेण भिक्षाचर्यं चरेद्भिक्षमाणोऽन्यत्राऽपपात्रेभ्योऽभिशस्ताच्च ।।

- वही 1/1/3/25

है तथा ब्राह्मण ब्रह्मचारी भिक्षा मांगते समय भवति का प्रयोग पहले करे अर्थात् "भवति भिक्षां देहि"/क्षत्रिय "भवति" शब्द का मध्य में तथा वैश्य अन्त मे "भवति" शब्द का प्रयोग करे अर्थात् क्षत्रिय एवं वैश्य भिक्षा मांगते समय क्रमश "भिक्षां भवति देहि" तथा "देहि भिक्षां भवति" का प्रयोग करें[1]। भिक्षा लेकर गुरु के समीप रखकर उनसे निवेदन करें तथा उनके द्वारा आदेश पाने पर भोजन करे[2]. यदि गुरु कहीं बाहर गये है तो उनके कुल के सदस्य (पत्नी या पुत्र) को निवेदन करे किन्तु यदि गुरु अपने परिवार के सदस्यों के साथ अन्यत्र गये हों तो आपस्तम्ब का निर्देश है कि वह दूसरे श्रोत्रियों को अर्पित करे और उनके आदेशानुसार ग्रहण करे[3] ।

---

1. भवत्पूर्वया ब्राह्मणो भिक्षेत ।। भवन्मध्यया राजन्य ।।भवदन्त्यया वैश्य ।।

-आ०ध०सू० 1/1/3/28-30

2. तत्समाहृत्योपनिधायाऽचार्याय प्रब्रूयात् ।।तेन प्रदिष्टं भुञ्जीत।।

-वही 1/1/3/31-32

3.विप्रवासे गुरोराचार्यकुलाय।। तैर्विप्रवासेऽन्येभ्योऽपि श्रोत्रियेभ्य ।।

-वही 1/1/3/33-34

सूत्रकार के अनुसार ब्रह्मचारी अपात्रों (चाण्डालों आदि) एवं अभिशस्तों को छोड़कर किसी से भी भिक्षा ग्रहण कर सकता था इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारी उतना ही ग्रहण करे जितना वह भोजन कर सके[1]। सूत्रकार के अनुसार भिक्षा केवल आचार्य के लिए, दक्षिणा, विवाह, यज्ञ, माता तथा पिता के भरण पोषण की इच्छा निमित्त ही मांगनी चाहिए। भौतिक सुख की इच्छा से भिक्षा नहीं मांगनी चाहिए [2]।

<u>ब्रह्मचारी के धर्म</u> – ब्रह्मचर्यावस्था का मुख्य लक्ष्य अध्ययन था। अध्ययन एक तप है, इसके लिए वातावरण की अनुकूलता मानसिक शान्ति और एकाग्रता, उचित स्थान का होना अत्यावश्यक है इसीलिए आपस्तम्ब ने ब्रह्मचारी के लिए आचरण के नियमों के पालन पर अत्यधिक जोर दिया है क्योंकि उनका मानना है कि नियमों का उल्लंघन करने से आजकल ऋषि नहीं उत्पन्न हो रहे हैं[3]।

---

1. न चोच्छिष्टं कुर्वीत ।।

   –आ०ध०सू० 1/1/3/37

2. इन्द्रियप्रीत्यर्थस्य तु भिक्षणमनिमित्तम्।।

   –वही 2/5/10/3

3. तस्माद्‌ऋषयोऽवरेषु न जायन्ते नियमातिक्रमात्।।

   –वही 1/2/5/4

आपस्तम्ब के अनुसार ब्रह्मचारी क्षमाशील हो, नृत्य न देखें,इन्द्रियों को अनुचित विषयों से नियंत्रित रखे, अपने कर्त्तव्य पालन में तत्पर रहे,लज्जाशील हो,धैर्य या आत्मसंयम से युक्त हो, उत्साह सम्पन्न हो, किसी पर भी क्रोध न करे दूसरे के अभ्युदय पर जलने वाला न हो, स्त्रियों से उतनी ही बात करे जितना प्रयोजन हो,द्यूतादि की सभा में या उत्सव आदि की भीड़ भाड़ में न जावे[1] । सूत्रकार के अनुसार ब्रह्मचारी के लिए अध्ययन में काम भावना अत्यधिक बाधक होती है तथा वह उसे अपने मुख्य कर्त्तव्य से प्रेरित करती है इसी कारण आप स्तम्ब ने ब्रह्मचारी के मनोविकारों पर नियंत्रण रखने हेतु अनेक कर्मों को ब्रह्मचारी के लिए वर्जित कर दिया यथा- चटपटा पदार्थ, नमकीन वस्तु मधु और मांस का भक्षण, दिन में शयन, सुगन्धित द्रव्यों का सेवन,मैथुन सुख,सुगन्धित लेपों व्दारा सुन्दरता बढ़ाने की इच्छा सुख के लिये अगों का धोना,

---

1. अनृत्तदर्शी । सभा समाजांश्चाऽगन्ता । अजनवादशील: । रहश्शील:।
   गुरोरुदाचारेष्वकर्त्ता स्वैरिकर्माणि । स्त्रीभिर्यावदर्थसम्भाषी ।
   मृदु । शान्त । दान्त । ह्रीमान् । दृढधृति ।
   अग्लास्नु: । अक्रोधन: । अनसूयु: ।

   - आ०ध०सू० 1/1/3/11-24

शरीर की शोभा बढाने के ऊपर ध्यान देते हुए स्नान इत्यादि[1] । इसके अति-रिक्त आपस्तम्ब का कथन है कि सूंघने के लिये किसी वृक्ष या वनस्पति की पत्ती या फूल न तोड़ें, जूता, छाता रथ आदि का प्रयोग न करे, स्मित न करें, यदि हर्षातिरेक से स्मित करें तो हाथ मुंह को ढककर करें, किसी स्त्री को मुख से न सूंघे, मन से स्त्री की प्राप्ति की कामना न करें, बिना कारण किसी स्त्री का स्पर्श न करें[2] ।

---

1. तथा क्षारलवणमधुमांसानि । अदिवास्वापी । अगन्धसेवी । मैथुन न चरेत् । उत्सन्नश्लाघ । अङ्गानि न प्रक्षालयीत । प्रक्षालयीत त्वशुचिलिप्तानि गुरोरसन्दर्शे । नाप्सु श्लाघमानः स्नायाद्यदि स्नायाददण्डवत् प्लवेत् ।।

   - आ०ध०सू० 1/1/2/23-30

2. न प्रेक्षेत नग्नां स्त्रियम् । ओषधिवनस्पतीनामाच्छिद्य नोपजिघ्रेत् । उपानहौ छत्रं यानमिति वर्जयेत् । न स्मयेत । यदि स्मयेताऽपिगृह्य स्मयेतेति हि ब्राह्मणम् । नोपजिघ्रेत् स्त्रियं मुखेन । न हृदयेन प्रार्थयेत् ।

   नाकारणादुपस्पृशेत् ।।

   - वही 1/2/7/3-10

आपस्तम्ब ने गुरु को प्रसन्न करने वाले कर्म, कल्याण की प्राप्ति के कर्म तथा वेद का परिश्रम पूर्वक अभ्यास ब्रह्मचारी के मुख्य कर्म माने हैं तथा इन कर्मों के अतिरिक्त दूसरे कर्म ब्रह्मचारी के लिये निषिध्द किये हैं[1]।

इस प्रकार आपस्तम्ब ने ब्रह्मचर्य के नियमों को विस्तृत उल्लेख किया है क्योंकि उनकी दृष्टि में नियम के पालन में रुचि रखने वाला, तपस्वी, सरल तथा क्षमावान् ब्रह्मचारी सिध्दि प्राप्त करता है[2]। इसके अतिरिक्त नियमो का पालन करते हुए ब्रह्मचारी वेद के अतिरिक्त जो कुछ भी गुरु शिक्षा ग्रहण करता है उसका फल वेद के अध्ययन के फल के समान होता है तथा संकल्प करके जो कुछ भी वह मन से सोचता है, शब्दों में अभिव्यक्त करता है, चक्षु से देखता है वह भी वैसा ही हो जाता है[3]।

---

1. गुरुप्रसादनीयानि कर्माणि स्वस्त्ययनमध्ययनसवृत्ति रिति। अतोऽन्यानि निवर्तन्ते ब्रह्मचारिण कर्माणि।।

   -आ०ध०सू० 1/2/5/9-10

2. स्वाध्यायधृग्धर्मरुचिस्तपस्व्यृजुर्मृदुस्सिध्दयति ब्रह्मचारी ।।

   -वही 1/2/5/11

3. यत्किच समाहितोऽब्रह्म प्याचार्यादुपयुङ्के ब्रह्मदेव तस्मिन् फल भवति। अथो यत्कि च मनसा वाचा चक्षुषा वा सङ्कल्पयन् ध्यायत्याहाऽभि-विपश्यति वा तथैव तद्भवतीत्युपदिशन्ति।।

   -वही 1/2/5/7-8

वही यदि ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य के नियमों का उल्लंघन करके विद्या-ध्ययन करता है तो उससे और उसके पुत्रों से भी पूर्व प्राप्त वेद का ज्ञान दूर हो जाता है तथा वह नरक प्राप्त करता है और उसकी आयु कम हो जाती है[1] । इस प्रकार आपस्तम्ब धर्म सूत्र में ब्रह्मचारी के धर्म, कर्त्तव्य एव जीवन का विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है क्योंकि ब्रह्मचर्य आश्रम ही मानवीय गुणों विकास की आधारशिला है ।

<u>गृहस्थाश्रम</u> - भारतीय समाज में गृहस्थ आश्रम का अत्यधिक मान रहा । आप-स्तम्ब ने आश्रमों के वर्णन में सर्वप्रथम गृहस्थ आश्रम की ही चर्चा की है[2] । आप-स्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार "तीन प्रकार की विधाओं के ज्ञाता आचार्यों का मत है कि वेद ही परम प्रमाण है, इस कारण वेदों में व्रीहि, यव, पशु, आज्य, दुग्ध, कपाल का उपयोग करते हुए, पत्नी के साथ मन्त्रों का उच्च या मन्द स्वर से पाठ कर जिन कर्मों के करने का विधान है उन्हें करना चाहिए और इस कारण उनके विपरीत आचरण का निर्देश करने वाले नियमों को वेदज्ञ प्रमाण नही मानते है[3] । गृहस्थाश्रम के महत्व के विषय में आपस्तम्ब ने कहा

---

1. तदतिक्रमे विद्याकर्म नि स्त्रवति ब्रह्म सहापत्यादेतस्मात् । कर्तपत्यमनायुष्यं च ।।

   - आ०ध०सू० 1/2/5/2-3

2. चत्वार आश्रमा गार्हस्थ्यम्, आचार्यकुलं मौनं, वानप्रस्थमिति ।।

है कि गृहस्थ भी सन्तान को अमृत बताकर वेद ने कहा है,"हे मरणधर्मा मनुष्यों, तुम अपनी सन्तान में पुन उत्पन्न होते हो, अत सन्तान ही तुम्हारे लिये अमरत्व है[1]" । पिता ही पुत्र के रुप में उत्पन्न होता ह, दोनों में सारुप्य होता है यह भी सामान्यत देखा जाता है । वस्तुत पिता प्रजापति का रुप होता है[2] । उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने गृहस्थाश्रम की प्रशंसा में प्रजापति के दूसरे वचन का उल्लेख करते हुए कहा है कि जो तीनो वेदों का अध्ययन,ब्रह्मचर्य, सन्तानोत्पत्ति, श्रध्दा, तप, यज्ञ तथा दान इन कर्मों को करता है वह मेरे साथ निवास करता ह । जो इनके विपरीत कर्म करता है वह धूल में मिल जाता है[3] ।

---

1. अथाप्यस्य प्रजातिममृतमाम्नाय आह- प्रजामनु प्रजायसे तदु ते मर्त्याऽमृतमिति ।।

—आ०ध०सू० 2/9/24/1

2. अथाऽपि स एवाऽयं विरुढ पृथक्प्रत्यक्षेणोपलभ्यते दृश्यते चा पि सारुप्यं देहत्वमेवाऽन्यत् ।।

— वही 2/9/24/2

3. पुनस्सर्गे बीजार्था भवन्तीति भविष्यत्पुराणे ।।

— वही 2/9/24/6

ये उध्दरण इस बात के प्रमाण है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में गृहस्थ आश्रम अत्यधिक महत्वपूर्ण था तथा इसी कारण आश्रमों के वर्णन में इसका उल्लेख आपस्तम्ब ने सर्वप्रथम किया है ।

गृहस्थाश्रम के कर्म - आपस्तम्ब के अनुसार अग्निहोत्र, अतिथि पूजा तथा अन्य जो कुछ भी उचित कर्त्तव्य है (वे गृहस्थाश्रम में करने होते हैं)[1] ।

अग्निहोत्र के दो अर्थ अधिक लोकप्रिय हैं- (1) अग्नि के लिए होम करना (अग्नये होत्रमिति व्युत्पत्ति) (2) स्वर्गकामना के लिए किया जाना वाला एक कृत्य (अग्निहोत्र जुहोति स्वर्गकाम , दीर्घ सत्र ह वा एव उपयन्ति)।

अग्न्याधान के पश्चात् जब अग्नि विधिवत् स्थापित कर दी जाती है तब नित्यकर्म के रूप मे अग्निहोत्र करना गृहस्थ का परमपावन कर्त्तव्य माना जाता है ।

उक्त के अतिरिक्त गृहस्थाश्रम का एक प्रधान कर्त्तव्य अतिथि सत्कार है । इसका उल्लेख सभी धर्म और गृह्यसूत्रों में है ।

---

1. अग्निहोत्रमतिथयो यच्चान्यदेवं युक्तम् ।।

-आ०ध०सू० 1/4/24/1

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अतिथि सत्कार का विषद् वर्णन किया गया है । आपस्तम्ब के अनुसार अतिथि वही है जो अपने धर्म में निरत रहने वाले गृहस्थ के यहा केवल धर्म के प्रयोजन से आता है[1] तथा ऐसे व्यक्ति का सत्कार करने से उपद्रवों की शान्ति होती है तथा स्वर्ग का फल प्राप्त होता है [2] । एवं जो व्यक्ति अतिथि को एक रात्रि अपने घर में ठहराता है वह पृथ्वी के सुखों को प्राप्त करता है, जो दूसरी रात्रि ठहराता है वह अन्तरिक्ष लोकों को जीतता है, तीसरी रात्रि ठहराने वाला स्वर्गीय लोकों को प्राप्त करता है और चौथी रात्रि ठहराने वाला असीम आनन्द का लोक जीत लेता है एवं अनेक रात्रियों तक अतिथि को ठहराने से असीम सुख की प्राप्ति होती है ऐसा कहा गया है[3] ।

---

1. स्वधर्मयुक्तं कुटुम्बिनमभ्यागच्छति धर्मपुरस्कारो नाऽन्यप्रयोजन. सोऽतिथि-र्भवति ।।

   - आ०ध०सू० 2/3/6/5

2. तस्य पूजायां शान्ति. स्वर्गश्च ।।

   - वही 2/3/6/6

3. एकरात्रं चेदतिथीन्वासयेत्पार्थिवाँल्लोकानभिजयति द्वितीययाऽऽन्तरिक्ष्यां-स्तृतीयया दिव्याश्चतुर्थ्या परावतो लोकानपरिमिताभिरपरिमिताँल्लो-कानभिजयतीति विज्ञायते ।।

   - वही 2/3/7/16

आपस्तम्ब ने अतिथि सत्कार के नियम में यह निर्देश किया है कि अतिथि के आने पर उठकर उसकी अगवानी करनी चाहिए, उसकी अवस्था के अनुसार उसका आदर करें, उससे मिलें और उसके लिए आसन ले आवें[1] । आप-स्तम्ब ने अन्य आचार्यों के मतों का उल्लेख करते हुए कहा है कि सम्भव हो तो अतिथि का आसन अनेक पायों वाला होवे[2] । एवं अतिथि के पैरों को दो शूद्र धोवें । कुछ आचार्यों का मत है कि अतिथि के लिए मिट्टी के पात्र में जल लाना चाहिए[3]। किन्तु जिस अतिथि का समावर्तन न हुआ हो उस अतिथि के लिये स्वयं जल न लावें[4] । अपितु इस प्रकार के असमावृत्त अतिथि के आने पर अन्य अतिथियों की अपेक्षा अधिक समय तक उसके साथ स्वाध्याय की आवृत्ति करें[5]। अतिथि को रहने के लिए स्थान दें, शय्या, चटाई, तकिया, चादर ,

---

1. तमभिमुखो भ्यागम्य यथावयस्समत्य तस्यासनमाहारयेत् ।।

- आ०ध०सू० 2/3/6/7

2. शक्तिविषये ना बहुपादमासनं भवतीत्येके ।।

- वही 2/3/6/8

3. - वही 2/3/6/9-11

4. - वही 2/3/6/12

5. - वही 2/3/6/13

अंजन आदि अन्य आवश्यक वस्तुए प्रदान करें[1] । अतिथि के साथ सौहार्द पूर्वक सभाषण करे, दूध या अन्न व पेय पदार्थों से उसे सन्तुष्ट करें, खाद्य पदार्थों से तृप्त करे और कम से कम जल ही प्रदान करें[2] । यदि सभी के भोजन कर लेने के बाद अतिथि आवे तो रसोई बनाने वाले को बुलाकर अतिथि का भोजन बनाने के लिए जौ या चावल प्रदान करें[3] । यदि अतिथि के आने पर भोजन तैयार हो तो स्वयं भोजन का अंश यह कहते हुए निकाले कि यह अंश अधिक है[4] । आपस्तम्ब ने गृहस्थों के लिए अतिथि सत्कार नित्य किया जाने वाला प्राजापत्य यज्ञ कहा है[5] । अतिथियों के उदर की अग्नि आह्वनीय अग्नि है, पवित्र गृह्य

---

1. आवसथ दद्यादुपरिशय्यानुपस्तरणानुपधानं सावस्तरणामभ्य जन चेति ।।

- आ०ध०सू० 2/3/6/15

2. सान्त्वयित्वा तर्पयेद्रसैर्भक्ष्यैरदिन रवराध्र्येनेति ।।

- वही 2/3/6/14

3. - वही 2/3/6/16

4 - वही 2/3/6/18-19

5. स एष प्राजापत्य कुटुम्बिनो यज्ञो नित्यप्रतत. ।।

- वही 2/3/7/1

अग्नि गार्हपत्य अग्नि है, जिस अग्नि पर भोजन पकाया जाता है वह दक्षिणाग्नि है[1] एवं अतिथि को दिया गया दूध से युक्त अन्न अग्निष्टोम का फल उत्पन्न करता है, घृतमिश्रित भोजन उक्थ्य का फल प्रदान करता है । मधु से युक्त भोजन अतिरात्र यज्ञ का फल देता है । माँस से युक्त भोजन द्वादशाह यज्ञ का फल देता है अन्न और जल अनेक सन्तानों तथा दीर्घ जीवन को प्रदान करता है[2] एवं जो प्रातः मध्यान्ह तथा सायंकाल भोजन देता है वह अतिथि सत्कार रूपी प्राजापत्य यज्ञ में तीन सवन होता है[3] तथा जो जाने के लिए उठे हुए अतिथि के पीछे उठता है वह उदवसनीया इष्टि का प्रतीक है[4]। मधुर नाबटा ही इष्टि का प्रतीक है[5] । अतिथि के पीछे चलना विष्णुक्रम है,[6] अतिथि को पहुँचा कर लौटना ही मानो इस यज्ञ का अन्तिम अवभृथ स्नान है[7]।

---

1. योऽतिथीनामग्निः स आहवनीयो यः कुटुम्बे स गार्हपत्यो यस्मिन्पच्यते सोऽन्वाहार्यपचनः ।।

   -आ०ध०सू० 2/3/7/2

2. -वही 2/3/7/4

3. - वही 2/3/7/6

4. - वही 2/3/7/7

5. - वही 2/3/7/8

6. - वही 2/3/7/9

7. - वही 2/3/7/10

सूत्रकार आपस्तम्ब का अतिथि सेवा के सम्बन्ध में कथन है कि यदि किसी अग्निहोत्री के यहां अतिथि आवे तो वह स्वयं उसकी अगवानी करे, और कहे हे व्रात्य तुमने कहाँ निवास किया ? फिर हे व्रात्य, यह जल है, व्रात्य तृप्त होइए ऐसा कहकर जल दूध रस आदि प्रदान करे[1]। यदि अतिथि अग्निहोत्र होम के समय भी उपस्थित हो तो अग्निहोत्र होम करने से पहले उसे अग्नि के उत्तर में बैठाकर यह उच्चारण करे- व्रात्य वैसा ही हो जैसा तुम्हारा मन चाहता है, हे व्रात्य वैसा ही हो जैसी तुम्हारी इच्छा है, हे व्रात्य, वैसा ही हो जैसा तुम्हारे प्रिय है, हे व्रात्य, यह पूर्णतः तुम्हारी इच्छा के अनुरूप होवे[2]। यदि अतिथि उस समय आवे जब अग्नियाँ रख तो दी गई हों किन्तु उनमें हवन न किया गया हो, तो अग्निहोत्री स्वयं अतिथि की अगवानी करे और कहे, हे व्रात्य, मुझे आज्ञा दीजिये मैं हवन करना चाहता हूँ, तब अतिथि की आज्ञा प्राप्त कर हवन करे। यदि वह बिना आज्ञा लिए हवन करता है तो दोष होता है एक ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन है[3]।

---

1. आहिताग्निं चेदतिथिरभ्यागच्छेत्स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयात्-व्रात्य क्वाऽवात्सीरिति, व्रात्योदकमिति, व्रात्य तर्पयन्त्स्वति।।

-आ०ध०सू० 2/3/7/13

2. -वही 2/3/7/14

3. -वही 2/3/7/15

सूत्रकार का कथन है कि अतिथियों को भोजन कराने के बाद ही भोजन करें[1] क्योंकि जो अपने अतिथि के पहले भोजन करता है वह अपने कुल के अन्न को, समृद्धि को, सन्तान को, पशुओं और इष्टफलों का भक्षण करता है[2]। आपस्तम्ब ने गृहस्थ से अपेक्षा की है कि घर में रखे हुए दूध आदि रस पदार्थों को समाप्त न करे किन्तु अतिथि के आने की सम्भावना करके ऐसी वस्तुओं को घर में रखे[3] और यदि रसायुक्त पकवान बनाये तो वह भी अतिथि के लिए रखे केवल अपने खाने के लिए स्वादिष्ट पकवानों का निर्माण न करे[4] ।

आपस्तम्ब ने सम्पूर्ण वेद के अध्येता अतिथि को गौ दक्षिणा तथा मधुपर्क का अधिकारी माना है[5] । मधुपर्क के सबंध में आपस्तम्ब का कथन है कि मधुपर्क मधुमिश्रित दधि का हो अथवा मधु से युक्त दूध का हो यदि किन्हीं कारणों से दूध या दधि का अभाव हो तो जल का भी मधुपर्क दिया जा

---

1. शेषभोज्यतिथीनां स्यात् ।।

   - आ०ध०सू० 2/4/8/2

2. ऊर्जं पुष्टिं प्रजां पशूनि टापूर्तमिति गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति।।

   - वही 2/3/7/3

3. न रसान् गृहे भुञ्जीता नवशेषमतिथिभ्य ।।

   - वही 2/4/8/3

4. - वही 2/4/8/4

5. - वही 2/4/8/6

सकता है[1]।

अतिथि सत्कार के प्रसग में आपस्तम्ब का कथन है कि यदि गृहस्थ के पास अतिथि सत्कार हेतु भोजन उपलब्ध न हो तो अतिथि को आसन , पादप्रक्षालनादि के योग्य जल, शयन आसन के योग्य तृण आदि देकर अतिथि का सत्कार करना चाहिए[2]। ब्राह्मण के यहा कोई शुद्र अतिथि के रूप में आये तो ऐसे आये हुए शुद्र को कोई कार्य करने के लिए सौपना चाहिए, अतिथि शुद्र उस कार्य को कर ले तो उसे भोजन प्रदान करें अथवा उस ब्राह्मण के दास राजकुल से अन्न माग कर ले आवे और उसके व्दारा उस अभ्यागत शुद्र का अतिथि के योग्य सत्कार करें[3]।

---

1. दधिमधुसंसृष्टं मधुपर्कं पयो वा मधुसंसृष्टम् । अभावं उदकम् ।।

 - आ0ध0सू0 2/4/8/8-9

2. अभावे भूमिरुदकं तृणानि कल्याणी वागित्येतानि वै सतोऽगारे न क्षीयन्ते कदाचनेति ।।

 - वही 2/2/4/14

3. शूद्रमभ्यागतं कर्मणि नियुञ्ज्यात् । अथाऽस्मै दद्यात् । दासा वा राजकुलादाहृत्याऽतिथिवच्छूद्रं पूजयेय ।।

 -वही 2/2/4/19-21

इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब गृहस्थ तथा उसकी पत्नी से अपेक्षा की है कि मित्रों, सम्बन्धियों एव नौकरों को खिला कर ही स्वयं खायें तथा अतिथियों आदि को खिलाने के लिए नौकरों के भोजन में कटौती नहीं करनी चाहिए [1]।

अतिथि सत्कार के प्रसंग में सूत्रकार कहता है कि यदि अतिथि आतिथ्यकर्त्ता का विद्वेषी है, तो उसे भोजन नहीं कराना चाहिए अथवा जो व्यक्ति अतिथि से शत्रुता रखता हो अथवा जो दोष मढता है या अतिथि पर किसी पाप या अपराध की आशंका करता है, तो ऐसे आतिथ्यकर्त्ता का भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि जो व्यक्ति ऐसे आतिथ्यकर्त्ता का भोजन करता है वह मानो उस आतिथ्यकर्त्ता के पापों का भक्षण करता है[2]।

---

1. ये नित्या भाक्तिकास्तेषामनुपरोधेन संविभागो विहित.।।

— आ०धू०सू० 2/4/9/10

2. द्विषन्द्विषतो वा नान्नमश्नीयाद्दोषेण वा मीमांसमानस्य मीमांसितस्य वा । पाप्मानं हि स तस्य भक्षयतीति विज्ञायते ।।

— वही 2/3/6/19-20

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्मसूत्र का कथन है कि अतिथि के लौटते समय आतिथ्यकर्ता को अतिथि का सवारी तक जाना चाहिए, यदि सवारी न हो तो वहां तक जाना चाहिए जहां अतिथि लौटने को कह दें, किन्तु यदि अतिथि लौटने को न कहे तो गांव की सीमा तक जाना चाहिए[1]।

इस प्रकार हम देखते है कि आपस्तम्ब ने अतिथि सत्कार के विषय में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। वस्तुत अतिथि सत्कार के पीछे हमारे शास्त्रकारों की उदात्त भावना छिपी है, दया के व्दारा मानव समाज का सम्वर्ध्दन करने की यह भारतीय परम्परा है। यात्रियों को एव यतियों को इस भारतीय परम्परा से पर्याप्त आतिथ्य मिलता आ रहा है।

ब्रह्मयज्ञ गृहस्थाश्रम का एक दैनिक कर्म है। शतपथ ब्राह्मण में वेद एवं वैदिक साहित्य के स्वाध्याय को ब्रह्मयज्ञ कहा गया है[2]। मनु कहते हैं- "अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ[3]। शंखस्मृति कहती है- "स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च" आपस्तम्ब

---

1. यानवन्तमा यानात्। यावन्नाऽनुजानीयादितर।
   अप्रतीभायां सीम्नो निवर्तेत ।।

   - आ०ध०सू० 2/4/9/2-4

2. श०ब्रा० 11/5/6/3-8

3. म० स्मृ० 3/70

ने भी स्वाध्याय को ब्रह्मयज्ञ माना है[1]। आपस्तम्ब ने स्वाध्याय को तप माना है[2]। तथा कहा है कि चाहे खड़े होकर या बैठकर स्वाध्याय किया जाय वह तप ही होता है[3] एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने ब्राह्मण का उद्धरण देते हुए नित्य स्वाध्याय को तप माना है। आपस्तम्ब का कथन है कि "वाजसनेयि ब्राह्मण में कहा गया है स्वाध्याय एक प्रकार का दैनिक यज्ञ है, जिसमें ब्रह्म ही यज्ञ का साधन है, जिस प्रकार दर्शपूर्णमास आदि में पुरोडाश साधन होता है जो मेघगर्जन होती है, जो विद्युत की चमक होती है, जब वज्रपात होता है तो वही सब स्वाध्याय यज्ञ का वषटकार शब्द है[4]।

वैश्वदेव कर्म भी गृहस्थाश्रम के धर्मों का एक अनिवार्य अंग है। वैश्वदेव का अर्थ है देवताओं को पक्वान्न देना। वैश्वदेव में सभी देवताओं के लिए भोजन पकाया जाता है। अतः वैश्वदेव के अन्तर्गत देवयज्ञ, भूतयज्ञ एवं पितृयज्ञ तीनों आ जाते हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के मत से तीन उच्च वर्णों के आर्यजन

---

1. आ०ध०सू० 1/4/13/1

2. तप स्वाध्याय इति ब्राह्मणम् ॥

-आ०ध०सू० 1/4/12/1

3. तत्र श्रूयते स यदि तिष्ठन्नासीन शयानो वा स्वाध्यायमधीते तप एव तत्तप्यते तपो ही स्वाध्याय इति ॥

आ०ध०सू० 1/4/12/2

4. - आ०ध०सू० 1/4/12/3

पवित्र होकर वैश्व देवकर्म में गृहस्थ के लिए अन्न पकावें, भोजन बनाने वाले का मुख जब तक अन्न की ओर हो, तब तक वह न बोले न खासे और न थूके। तथा वैश्वदेव बलि को रसोई की अग्नि में डाले अथवा पवित्र गृह्य अग्नि में अर्पित करें प्रत्येक नारायणीय उपनिषद के प्रथम ह अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्य स्वाहा, ध्रुवाय भौमाय स्वाहा, ध्रुवक्षितये स्वाहा, अच्युत-क्षितये स्वाहा, मन्त्रों द्वारा प्रत्येक मन्त्र पर अपने हाथ से हवन करें[2] । आपस्तम्ब के मत से क्षार एव लवण का हवन नहीं किया जाता है तथा बिगडे हुए अन्न के साथ मिले हुए भोजन का हवन नहा किया जाता है[3] । यदि हवन न करने योग्य अन्न का हवन करना ही पडे तो अग्नि के उत्तरी भाग से गरम भस्म लेकर उसी में अन्न को होम करें[4] । इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब के अनुसार जिस बालक का उपनयन सस्कार नही हुआ है वह तथा स्त्री अन्न का अग्नि में हवन न करें[5] । आपस्तम्ब के मत से वैश्वदेव कर्म की समाप्ति

---

1. आर्या प्रयता वैश्वदेवेऽन्नसस्कर्तार स्यु । भाषा कास क्षवथुमित्यभिमुखो - ऽन्न वर्जयेत् ।।

-आ०ध०सू० 2/2/3/1-2

2. -वही 2/2/3/16

3. न क्षार लवणहोमो विद्यते। तथाऽवरान्नससृष्टस्य च।।

-वही 2/6/15/14-15

4. अहविष्यस्य होम उदीचीनमुष्ण भस्मापोह्य तस्मिञ्जुहुयात्तदहुतमहुत चाग्नौ भवति।।

-वही 2/6/15/16

5. ना स्त्री जुहुयात् । नाऽनुपेत:।।

-वही 2/6/15/17-18

पर जो भी अन्न की याचना करते हुए आवे उन्हें कुछ अंश प्रदान करें, कुत्तों और चाण्डालों के भी उपस्थित होने पर उन्हें भोजन अंश प्रदान करें[1] एवं आपस्तम्ब ने वैश्वदेव मन्त्र सीखने वाले गृहस्थ को बारह दिन भूमि पर शयन करने, मैथुन न करने, मसालेदार तथा नमकीन भोजन के त्याग का निर्देश दिया है[2]। आपस्तम्ब का कथन है कि वैश्वदेव कर्म स्वर्ग का सुख तथा समृध्दि प्रदान करता है[3] ।

बलिहरण के विषय में भी आपस्तम्ब धर्मसूत्र में नियमोल्लेख प्राप्त होता है । बलिहरण में जीवों को बलि दी जाती है इसे भूतयज्ञ की संज्ञा भी दी जाती है । भूतयज्ञ में बलि अग्नि में न देकर पृथिवी पर दी जाती है । इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि प्रत्येक बलि के लिए अलग- अलग स्थान हाथ से साफ कर, हाथ को नीचे किए हुए जल छिडककर बलियों को रखे और उसके बाद भी उसके चारो ओर जल छिडके[4] । बलियों को अर्पित करने से पहले

---

1. सर्वान्वैश्वदेवे भागिनः कुर्वीता श्वचण्डालेभ्य.।।

—आ०ध०सू० 2/4/9/5

2. तेषां मन्त्राणामुपयोगे व्दादशाहमधश्शय्या ब्रह्मचर्यं क्षारलवणावर्जनं च ।।

—वही 2/2/3/13

3. गृहमेधिनो यदशनीयं तस्य होमा बलयश्च स्वर्गपुष्टिसंयुक्ताः ।।

—वही 2/2/3/12

4. बलीनां तस्य तस्य देशे संस्कारो हस्तेन परिमृज्या वोक्ष्य न्युप्य पश्चात्परिषेचनम् ।।

— वही 2/2/3/15

तथा उसके बाद में भी पहले की तरह ही चारो ओर जल छिड़कें[1]। इसी प्रकार अलग- अलग अर्पित की जाने वाली बलियों के एक साथ एक ही स्थान पर अर्पित करने पर केवल एक ही बार अन्त में जल का परिषेचन किया जाता है[2] एव अग्नि के पीछे सातवें और आठवें मन्त्रो से दो बलियां रखी जाय दूसरी बलि को पहली बलि के उत्तर में अर्पित किया जाय[3]। यहा यह ध्यातव्य है कि प्रथम छ बलियां अग्नि में अर्पित की जाती है तथा देवयजन बलि कहलाती है। जहा तक सातवीं (धर्माय स्वाहा) एव आठवी (अधर्माय स्वाहे) बलि का प्रश्न है ये तथा उसके बाद की बलियां भूमि पर अर्पित की जाती हैं। उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब का मत है कि नवें मन्त्र से "अद्भ्यः स्वाहे" जल के लिए दी जाने वाली बलि उस पात्र के निकट अर्पित की जाय जिस पात्र गृह्य कार्य के लिए जल रखा जाता है[4]। दशवें तथा ग्यारहवें मत्रों से (ओषधिवनस्पतिभ्य. स्वाहा ,रक्षोदेवजनेभ्य स्वाहा)

---

1. उभयत परिषेचनं यथा पुरस्तात् ।।

-आ०ध०सू० 2/2/3/17

2. एव बलीनां देशे देशे समवेतानां सकृत्सकृदन्ते परिषेचनम् ।।

-वही 2/2/3/18

3. अपरेणाऽग्निं सप्तमाष्टमाभ्यामुदगपवर्गम् ।।

-वही 2/2/3/20

4. उदधानसन्निधौ नवमेन ।।

- वही 2/2/3/21

घर के मध्य में दो बलियां अर्पित की जाय जिनमें दूसरी बलि पहली से पूर्व की ओर रखा जाय[1]। उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब के अनुसार चार मन्त्रों से {गृहाभ्य. स्वाहा, अवसानेभ्य स्वाहा, अवसानपतिभ्य स्वाहा, सर्वभूतेभ्य स्वाहा} घर के उत्तर पूर्व भाग में बलियां अर्पित की जाती है, जिनमें दूसरी बलि अपने से पूर्ववर्ती बलि के पूर्व में रखी जाती है। शय्या के निकट एक बलि "कामाय स्वाहा" मन्त्र से अर्पित की जाय। "अन्तरिक्षाय स्वाहा" मन्त्र से देहरी के ऊपर एक बलि दी जाय। उसके आगे के {"यदेजति जगति यच्च चेष्टति नाम्नो भागो यत्ताम्ने स्वाहा"} मन्त्र से एक बलि व्दार के किवाड के पास अर्पित की जाय। आगे के दस मन्त्रों {"पृथिव्यै स्वाहा, अन्तरिक्षाय स्वाहा, दिवे स्वाहा, सूर्याय स्वाहा, चन्द्रमसे स्वाहा, नक्षत्रेभ्य स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा, बृहस्पतये स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा"} से घर के ब्रह्मसदन नामक स्थान पर बलियाँ अर्पित करें, जिनमें प्रत्येक बलि अपने से पहले की बलि के पूर्व रखी जाय[2] तथा

---

1. मध्येऽगारस्य दशमैकादशाभ्यां प्रागपवर्गम् ।।

—आ०ध०सू० 2/2/3/22

2. उत्तरपूर्वे देशेऽगारस्योत्तरैश्चतुर्भिः। शय्यादेशे कामलिङ्गेन। देहल्यामन्तरिक्षलिङ्गेन। उत्तरेणापिधान्याम्। उत्तरैर्ब्रह्मसदने।।

—वही 2/2/3/23 एवं 2/2/4/1-4

दक्षिण की ओर "स्वधा पितृ-भ्यः" मन्त्र से प्राचीनावीती होकर अर्थात् यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे के ऊपर से तथा बायें कक्ष के नीचे से धारण कर तथा दाहिनी हथेली को ऊपर की ओर उठाये हुए बलि अर्पित की जाय। पितृबलि के उत्तर में "नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहा" मन्त्र से; रुद्र के लिए उसी विधि से बलि अर्पित की जाय, जिस विधि से दूसरे देवों के लिए की जाय इसका तात्पर्य यह है कि प्राचीन वीती न होवे और न तो दाहिने हाथ की हथेली को उत्तान करें और इन बलियों के लिए आरम्भ तथा अन्न का जल से परिषेचन का कर्म अलग- अलग करें एवं रात्रि को अन्तिम मन्त्र का पाठ करते हुए आकाश में भूतों के लिए बलि फेंकें[1]।

इस प्रकार आपस्तम्ब धर्मसूत्र में बलिहरण का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। मनु स्मृति में भी बलि वैश्वदेव यज्ञ का वर्णन मिलता है[2]।

इस प्रसंग में आपस्तम्ब का कथन है कि बलिहरण के बाद भोजन से कुछ अंश भिक्षुक को देना चाहिए तथा गृहस्वामी तथा गृहस्वामिनी से भोजन की याचना करने वाले को लौटाना नहीं चाहिए अपितु उसे कुछ न कुछ भोजन

---

1. दक्षिणतः पितृलिङ्गेन प्राचीनावीत्यवाचीनपाणिः कुर्यात्। रौद्र उत्तरो यथा देवताभ्यः। तयोर्नाना परिषेचनं धर्मभेदात्। नक्तमेवोत्तमेन वैहायसम्।।

-आ०ध०सू० 2/2/4/5-8

अवश्य देना चाहिए[1] ।

इस प्रकार आपस्तम्ब ने बलिवैश्वदेव यज्ञ का विस्तृत वर्णन किया है एव उनकी दृष्टि में बलिवैश्वदेव यज्ञ गृहस्थ के लिए स्वर्ग तथा समृध्दि का हेतु है[2] ।

उक्त के अतिरिक्त गृहस्थाश्रम के व्रत का भी धर्मसूत्र में विस्तार से विचार किया गया है । आपस्तम्ब के अनुसार पाणिग्रहण के बाद पति और पत्नी दोनो गृहस्थाश्रम के कर्मो का सम्पादन करें, केवल दो समयों में भोजन करें, तृप्तिपर्यन्त अन्न का भोजन नही करना चाहिए, पर्वों पर पति और पत्नी दोनों ही उपवास रखे । केवल एक बार दिन में भोजन करना भी उपवास आप-स्तम्ब ने माना हे तथा एक बार भोजन करके उपवास करने पर पति और पत्नी को आतृप्ति भोजन की तथा जो अन्न प्रिय हो उसका इस दिन भोजन करने की अनुमति दी है तथा उस रात्रि को दोनों को भूमि पर शयन करने एव मैथुन कर्म को न करने का निर्देश दिया है तथा अपेक्षा की है कि दूसरे दिन

---

1. अग्रं च देयम् । काले स्वामिनावन्नार्थिनं न प्रत्याचक्षीयाताम् ।।

—आ०ध०सू० 2/2/4/10 एवं 13

2. य एतानव्यग्रो यथोपदेशं कुरुते नित्यः स्वर्गः पुष्टिश्च ।।

— वही 2/2/4/9

स्थालीपाक तैयार करना चाहिए[1] । आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्थालीपाक की विधि का वर्णन नहीं मिलता है । अपितु आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में इसके निर्माण की विधि, स्थालीपाक के देवता, पार्वण स्थालीपाक का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है[2] । इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब के अनुसार घर में जो जल के पात्र हों वे कभी खाली न रहें, दिन में गृहस्थ मैथुन न करें, ऋतुकाल में शास्त्र के नियम के अनुसार पत्नी के साथ मैथुन कर्म में प्रवृत्त होवे, मैथुन के समय स्त्रीवास ही धारण करें, केवल मैथुन के समय ही पति-पत्नी साथ एक शय्या पर सोवें उसके बाद में अलग हो जाय, उसके बाद दोनों ही स्नान करें अथवा जहां कहीं वीर्य या रज लग गया हो उसे मिटटी या जल से स्वच्छ करके वे आचमन करें और अपने शरीर पर जल छिड़के[3] ।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गृहस्थ के लिए जो नियम और कर्त्तव्य आपस्तम्ब ने निर्दिष्ट किये वे निश्चय ही गृहस्थ के त्याग और आध्यात्मिक जीवन की ओर अधिक झुके थे । यद्यपि उन्होंने गृहस्थ के लिए भौतिक

---

1. पाणिग्रहणादधि गृहमेधिनोर्व्रतम् ।कालयोर्भोजनम्। अतृप्तिश्चान्नस्य। पर्वसु चोभयोरुपवासः।औपवस्तमेव कालान्तरे भोजनम्। तृप्तिश्चान्नस्य। यच्चैनयोः प्रियं स्यात्तदेतस्मिन्नहनि भुञ्जीयाताम्। अधश्च शयीयाताम्। मैथुनवर्जनं च । श्वो भूते स्थालीपाकः ।।

- आ०ध०सू० 2/1/1/1-10

2. आ०गृ०सू० तृतीय पटल, सप्तम खण्ड

और सामाजिक सुखों को स्वीकार किया फिर भी भौतिक सुखों की तुलना में आध्यात्मिक सुख, ज्ञान व मुक्ति आदि पर अधिक जोर दिया ।

वानप्रस्थाश्रम - वानप्रस्थ होने का ज्ञान धर्मशास्त्रों से दो प्रकार से मिलता है (1) कोई व्यक्ति छात्र जीवन के उपरान्त (2) या गृहस्थ रूप में कुछ वर्ष व्यतीत कर लेने के उपरान्त वानप्रस्थ हो सकता है । मनु (6/2) के अनुसार जब गृहस्थ अपने शरीर पर झुर्रियाँ देखे, उसके बाल पक जाये और जब उसके पुत्रों के पुत्र हो जायें तो उसे वन की राह लेनी चाहिए । जहा तक आपस्तम्ब धर्मसूत्र का प्रश्न है उनके अनुसार वानप्रस्थाश्रम में वही व्यक्ति प्रवेश कर सकता है जो ब्रह्मचारी के नियमों का पालन करता हो[1] । इससे यह स्पष्ट होता है कि वानप्रस्थ ब्रह्मचर्याश्रम के बाद ही ग्रहण किया जा सकता है किन्तु आपस्तम्ब ने 2/9/22/6 में अन्य आचार्यों के मतों का उल्लेख किया है कि वानप्रस्थ के लिए अन्य आश्रमों के कर्मों को क्रमानुसार करना चाहिए[2] ।

---

1. अतएव ब्रह्मचर्यवान् प्रव्रजति ।।

—आ0ध0सू0 2/9/21/19

2. अथ वानप्रस्थस्यैवाऽऽनुपूर्व्यमेके उपदिशन्ति ।।

— वही 2/9/22/6

वानप्रस्थी के नियम - आपस्तम्ब ने वानप्रस्थी के लिए निम्न नियमों का विधान किया है- केवल एक अग्नि प्रज्वलित करे, घर में न रहे, किसी सुख का भोग न करें, किसी शरण में न रहें, मौन रहें केवल दैनिक स्वाध्याय के समय बोलें[1] ।

बन में प्राप्य मृगचर्म या बल्कल बस्त्र ही धारण करें, मूलों, फलों, पत्तों और तिनकों आदि से जीविका निर्वाह करते हुए भ्रमण करे, फिर स्वयं गिरे हुए फलों पत्तों आदि का ही भक्षण करके रहें। तब कुछ दिन तक केवल जल पीकर जीवन धारण करें, फिर कुछ समय तक केवल वायु का सेवन करके रहें और फिर केवल आकाश का ही सेवन करें । इनमें से प्रत्येक उत्तरवर्ती पदार्थों का सेवन करके जीविका निर्वाह करने का अधिकाधिक पुण्यफल होता है[2]।

---

1. तस्योपदिशन्त्येकाग्निरनिकेतस्स्यादशर्माऽशरणो मुनि स्वाध्याय एवोत्सृजमानो वाचम् ।।

   -आ०ध०सू० 2/9/21/20

2. तस्याऽऽरण्यमाच्छादनं विहितम्। ततो मूलै फलै पर्णैस्तृणैरिति वर्तयंश्चरेत्। अन्तत प्रवृत्तानि । ततोऽपो वायुमाकाशमित्यभिनिश्रयेत्। तेषामुत्तर उत्तर-संयोग फलतो विशिष्ट ।।

   -- वही 2/9/22/1-5

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब के मत से वानप्रस्थ गाँव से बाहर वन में एक घर बनाकर वहाँ पत्नी, पुत्र, पुत्रियों तथा अग्नि के साथ निवास करे अथवा अकेले ही रहें। खेतों में गिरे हुए अन्न लाकर अपने जीवन का पोषण करे, किसी भी प्रकार का दान न ग्रहण करें स्नान करने के बाद हवन करें एवं स्नान बिना वेग के शनै जल में प्रवेश कर और जल को हाथ से पीटे बिना सूर्य की ओर मुख करके स्नान करें। कुछ आचार्यों के अनुसार गृहस्थ को चाहिए कि भोजन पकाने तथा खाने के पात्रों तथा काटने के औजार, फरसा हँसिया तथा काम नाम के हथियारों में प्रत्येक के जोड़े बनवायें तथा इन पात्रों और औजारों के जोड़ों में से एक लेकर दूसरे को अपनी पत्नी को देकर वन को प्रस्थान करें। उसके बाद वन की वस्तुओं से ही होम कर्म करें, अपना जीवन निर्वाह करें, अतिथियों का सत्कार करें तथा शरीर का आच्छादन करें एवं जिन कर्मों के लिए पुरोडाश का विधान किया गया है उन कर्मों में पुरोडाश के स्थान पर चरु का प्रयोग करें। सभी मन्त्रों का तथा दैनिक स्वाध्याय का पाठ इस प्रकार करें कि वह दूसरों को न सुनाई पड़े एवं वन के निवासियों को अपने मन्त्रों का पाठ न सुनावे एवं केवल अग्नि की रक्षा के लिए ही एक गृह बनावें, स्वयं खुले हुए स्थान में ही रहें, शय्या और आसन पर किसी प्रकार का आच्छादन न होवे तथा नया अन्न प्राप्त करने पर पुराने संचित अन्न का परित्याग करें[1]।

---

1. आ०ध०सू० 2/9/22/8-24

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब के अनुसार यदि वानप्रस्थ और अधिक कठोर नियम का पालन करना चाहे तो अन्न का संचय न करें अपितु प्रतिदिन साय तथा प्रात काल केवल अपने भिक्षापात्र में खाने भर का भोजन एकत्र करे[1] ।

इस प्रकार हम देखते है कि वान प्रस्थाश्रम में व्यक्ति कठोर व्यवस्थाओं और नियमबध्द कर्त्तव्यों व्दारा अपने चरित्र और व्यक्तित्व को तपाता था। तथा वह अपने पारिवारिक और भावनात्मक सम्बन्ध को विच्छिन्न कर एकात और निर्जनता का जीवन व्यतीत करता था तथा वह अपने तप शील श्रमाशील, दानशील आचरणशील और सत्यशील व्यक्तित्व का निर्माण करता था जो उसके निवृत्तिमूलक व्यक्तित्व को उत्कर्षित करते हुए उसे मोक्ष के मार्ग की ओर अग्रसारित करता था । आपस्तम्ब का पुराण से x श्लोक[2] को उद्धृत करते हुए वानप्रस्थ को प्रशंसा की है तथा कहा है कि ऐसे व्यक्ति की इच्छायें उनके संकल्प से ही सिध्द हो जाती है जैसे वर्षा कराने,पुत्रोत्पत्ति का अमोघ आशीर्वाद,किसी भी प्रकार की वस्तु का दान,दूर तक देखने की

---

1. भूयांसं वा नियममिच्छन्नन्वहमेव पात्रेण सायंप्रातरर्थमाहरेत् ।।

—आ०ध०सू० 2/9/23/1

2. अष्टाशीतिसहस्त्राणि ये प्रजां नेषिर ऋषयः। उत्तरेणार्यम्णः पन्थानं तेऽमृतत्वं हि कल्पते ।।

दृष्टि, मन के समान वेग से विचरण करने की शक्ति तथा इसी प्रकार की दूसरी इच्छाओं की सिद्धि[1]।

सन्यास - आपस्तम्ब के अनुसार ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पालन करने वाला व्यक्ति ही सन्यास ग्रहण कर सकता है[2]। आपस्तम्ब ने सन्यासियों के लिए निम्न नियमों का विधान किया है कि वे बिना अग्नि के रहें अर्थात् उन्हें श्रौताग्नियाँ, गृह्याग्नि एवं लौकिक अग्नि भोजन बनाने के निमित्त नहीं जलानी चाहिए, सुखों तथा शरण का परित्याग करें, मौन रहें केवल दैनिक अध्ययन के समय बोलें, ग्राम में केवल इतने ही अन्न की भिक्षा मांगे जितने से उसकी जीविका चल सके तथा इस संसार की अथवा परलोक की चिन्ता किये बिना चारों ओर घूमता रहे[3]। तथा सन्यासी दूसरों के द्वारा फेंके गये वस्त्रों को पहने[4]।

---

1. अथापि सङ्कल्पसिद्धयो भवन्ति । यथा वर्ष प्रजा दान दूरेदर्शनं मनोजवता यच्चान्यदेवयुक्तम्।।

-आ०ध०सू० 2/9/23/6-7

2. अतएव ब्रह्मचर्यवान प्रव्रजति ।।

- वही 2/9/21/8

3. अनग्निरनिकेतस्स्यादशर्माऽशरणो मुनि. स्वाध्याय एवोत्सृजमानो वाच ग्रामे प्राणवृत्ति प्रतिलभ्या निहोऽनमुत्रश्चरेत्।।

- वही 2/9/21/10

4. तस्य मुक्तमाच्छादनं विहितम् ।।

-वही 2/9/21/11

आपस्तम्ब ने अन्य धर्मज्ञों के मत का उल्लेख करते हुए कहा है कि सभी वस्त्रों का परित्याग कर नग्न होकर घूमें[1] तथा आपस्तम्ब का मानना है कि सत्य और असत्य का सुख और दुःख का, वेदों का तथा इस लोक और परलोक का परित्याग करके सन्यासी को चाहिए कि वह परमात्मा का चिन्तन करें[2]। क्योंकि आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने पर वे मोक्ष (परम कल्याण) प्राप्त करता है[3]। इस प्रकार हम देखते है कि सन्यासी का जीवन अत्यन्त तपस्या और कठोरता का था। परम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए वह समस्त भौतिक और सांसारिक पदार्थों के प्रति अनासक्त होकर मनोनिवेश पूर्वक साधनारत रहता था।

---

1. सर्वत परिमोक्षमेके ।।

-आ०ध०सू० 2/9/21/12

2. सत्यानृते सुखदुःखे वेदानिम लोकममुं च परित्यज्यात्मानम-न्विच्छेत् ।।

- वही 2/9/21/13

3. बुध्दे क्षेमप्रापणम् ।।

- वही 2/9/21/14

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आश्रम व्यवस्था व्यक्ति के जीवन और व्यक्तित्व के उत्थान का एक महत्वपूर्ण आधार था। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन इसी के माध्यम से समग्रता और गतिशीलता प्राप्त करता था।

श्राध्द ।

"श्राध्द" शब्द श्रध्दा से निष्पन्न होता है जिसके अन्दर विश्वास, भक्ति और आदर के भाव सम्मिलित हैं । इसलिये "श्राध्द" वह क्रिया है, जो विश्वास अथवा आदर के व्दारा संपादित होती है । संस्कृत की दृष्टि से श्राध्द शब्द श्रत् और धा धातुओं से निष्पन्न है। इससे इस बात का संकेत मिलता है कि हम सत्य अथवा विश्वास को धारण करें । अतः श्राध्द अपने पूर्वजों की स्मृतियों में दी गई श्रध्दांजलि, पितरों को दिया गया भोजन और मृत व्यक्ति का पवित्र प्रीतिभोज है । इसको पितृयज्ञ कहा जाता है । श्राध्द में तीन कर्म अनिवार्यरूपेण करने होते हैं - होम, ब्राह्मण भोजन और पिण्डदान ।

श्राध्द की उत्पत्ति एवं प्राचीनता - श्राध्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि प्राचीन काल में देवता और मनुष्य इसी संसार में एक साथ निवास करते थे कालान्तर में उस सहवास को अभीष्ट न समझते हुए देवताओं ने श्रौत, स्मार्त और गृह्य कर्मों का यथावत् अनुष्ठान किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे स्वर्ग को चले गये और मनुष्य देवताओं के समान उन श्रौत, स्मार्त और गृह्य कर्मों को यथावत् सम्पन्न न करने के कारण इसी संसार में रह गये । इस प्रकार की कर्मों की सामर्थ्य को देखकर आज भी जो मनुष्य उन कर्मों को देवताओं के समान यथावत् सम्पन्न करते हैं वे देवताओं और ब्रह्मा के

साथ स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करते हैं। देवताओं की अपेक्षा हीन मनुष्यों को वैवस्वत मनु ने "श्राध्द" नाम से अभिहित होने वाले कर्म का उपदेश प्रजाओं के निःश्रेयस के लिए दिया[1]।

आपस्तम्ब के अनुसार श्राध्द प्रत्येक मास में करना चाहिए[2] तथा श्राध्द का कोई कर्म रात्रि को न करें[3]। मास में भी पूर्वपक्ष और अपरपक्ष में से अपरपक्ष को तथा इन अपरपक्ष के दिनों में भी अपराह्न को आपस्तम्ब ने श्राध्द कर्म के लिए श्रेष्ठ माना है[4]। इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब के अनुसार मास के दूसरे पक्ष के अन्तिम दिन अधिक श्रेयस्कर है। तथापि मास के अपर पक्ष में किसी भी दिन को अर्पित किया गया श्राध्द पितरों को सन्तुष्ट करता है और

---

1. सह देवमनुष्या अस्मिंल्लोके पुरा बभूव । अथ देवा कर्मभिर्दिवं जग्मुरहीयन्त मनुष्या । तेषा ये तथा कर्माण्यारभन्ते सह देवैर्ब्रह्मणा चाऽमुष्मिन् लोके भवन्ति। अथैतन्मनुः श्राध्दशब्दं कर्म प्रोवाच । प्रजानिःश्रेयसाय च ।।

 —आ०ध०सू० 2/7/16/1

2. मासि मासि कार्यम् ।।

 — वही 2/7/16/3

3. न च नक्तं श्राध्दं कुर्वीत ।।

 — वही 2/7/17/23

4. अपरपक्षस्याऽपराह्णः श्रेयान् ।।

 — वही 2/7/16/5

करने वाले को भी निर्दिष्ट फल की प्राप्ति होती है[1] । यदि अपर पक्ष के प्रथम दिन को श्राध्द किया जाता है तो श्राध्दकर्त्ता की सन्तान प्राय पुत्रिया होंगी, यदि दूसरे दिन को श्राध्द किया जाता है तो पुत्र प्राय चोर होते हैं, यदि तीसरे दिन श्राध्दकर्म किया जाता है तो जो पुत्र उत्पन्न होते हैं वेदाध्ययन के व्रत का पालन करने वाले ब्रह्मतेज से युक्त होंगे, चौथे दिन श्राध्द कर्म करने वाले छोटे पशुओं से सम्पन्न होते हैं, पांचवे दिन श्राध्दकर्म करने वाले को पुत्र ही उत्पन्न होते हैं वह अनेक पुत्रों का पिता होता है तथा पुत्रहीन बनकर नहीं मरता, छठे दिन श्राध्द करने वाले प्राय देशाटन करने वाले तथा जुआरी होते हैं, सातवे दिन श्राध्द कर्म करने से कृषि में वृध्दि होती है, आठवें दिन श्राध्द कर्म करने से समृध्दि होती है, नवे दिन श्राध्द कर्म करने से समृध्दि होती है, नवे दिन श्राध्द करने से एक खुर वाले पशुओं यथा घोटे आदि की वृध्दि होती है, दसवे दिन श्राध्द करने से व्यापार में उन्नति होती है, ग्यारहवें दिन श्राध्द करने से लोहे और त्रपुस की सम्पत्ति बढ्ती है, बारहवें दिन श्राध्द करने वाला अनेक पशुओं का स्वामी होता है, तेरहवे दिन श्राध्द करने से अनेक पुत्र तथा अनेक मित्र मिलते हैं । श्राध्दकर्त्ता के पुत्र सुन्दर होते हैं, किन्तु उसके पुत्र अल्पायु में ही मर जाते हैं तथा चौदहवे दिन श्राध्द करने पर युध्द में सफलता मिलती एव पन्द्रहवे दिन श्राध्द करने पर युध्द में सफलता मिलती

---

1. तथाऽपरापक्षस्य जघन्यान्यहानि । सर्वेष्वेवाऽपरपक्षस्याऽहस्सु क्रियमाणे पितृन् प्रीणाति। कर्तुस्तु कालाभिनियमात्फलविशेष.।।

-आ०ध०सू० 2/7/16/5-6

है[1]। आपस्तम्ब के अनुसार श्राद्ध करने के दिन उसे भोजन कराने के लिए ब्राह्मणों को निमन्त्रण देना चाहिए जो वेदज्ञ हो तथा विवाह सम्बन्ध, रक्त-सम्बन्ध, मन्त्र पुरोहित सम्बन्ध या गुरु शिष्य सम्बन्ध से सम्बन्धित न हो[2]। यदि दूसरे अर्थात् विवाह, रक्त, मन्त्र, विद्याध्ययन से सम्बन्ध से न जाने जाते ब्राह्मणों में गुणों का अभाव हो तो गुणवान् सहोदर भाई को भी भोजन कराया जा सकता है। अतएव इस नियम से सहोदर भाई के साथ ही साथ दूसरे सम्बन्धी और अन्तेवासी भी भोजन कराये जाने योग्य होते हैं[3]। आपस्तम्ब ने भोजन कराने वाले से सम्बध्द व्यक्तियों को भोजन न कराये जाने के सम्बन्ध में

---

1. प्रथमे हनि क्रियमाणे स्त्रीप्रायमपत्यं जायते। द्वितीये स्तेना। तृतीये ब्रह्मवर्चस्विन। चतुर्थे क्षुद्रपशुमान्। पञ्चमे पुमांसो बह्वपत्यो न चा नपत्य प्रमीयते। षष्ठेऽध्वशीलोऽक्षशीलश्च। सप्तमे कर्षे राध्दि। अष्टमे पुष्टि.। नवम एकखुरा.। दशमे व्यवहारे राध्दि। एकादशे कृष्णायस त्रपुसीसम्। द्वादशे पशुमान्। त्रयोदशे बहुपुत्रो बहुमित्रो दर्शनीयापत्यो युवमारिणस्तु भवन्ति। चतुर्दश आयुधे राध्दि। पञ्चदशे पुष्टि।।

-आ०ध०सू० 2/7/16/7-21

2. प्रयत प्रसन्नमनास्सृष्टो भोजयेद्ब्राह्मणान् ब्रह्मविदो योनिगोत्रमन्त्रान्तेवास्यसम्बन्धान्।।

-वही 2/7/17/4

3. गुणहान्यां तु परेषां समुदेत सोदर्योऽपि भोजयितव्य। एतेनाऽन्तेवासिनो व्याख्याता।।

यह वचन प्रयुक्त किया है कि यदि यज्ञ में भोजन कराने वाले से सम्बन्धित व्य-क्तियों को जो भोजन कराया जाता है वह भोजन पिशाचों को ही मिलता है । वह अन्न न तो पितरों के पास पहुंचता है और न देवताओं के पास । वह भोजन पुण्यफल से विहीन होकर इसी लोक में उसी प्रकार भटकता है जिस प्रकार बछड़े के खो जाने पर गौ गोशाले के भीतर ही ढूंढती हुई घूमती है अर्थात् बा-हर नहीं जा पाती है[1] तथा सम्बन्धियों को दिया गया भोजन तथा दान इसी लोक में एक कुल से दूसरे कुल में जाकर नष्ट होता है[2] ।

आपस्तम्ब ने निमन्त्रित ब्राह्मणों में से उन ब्राह्मणों को जो अवस्था की दृष्टि से वृध्द तथा निर्धन और भोजन करने के इच्छुक हों उन्हें भोजन के लिए बुलाने के लिए कहा है । यदि निमन्त्रित लोगों में सभी के गुण समान हों[3] ।

---

1. सम्भोजनी नाम पिशाचभिक्षा नैषा पितृन् गच्छति नोऽथ देवान् ।
   इहैव सा चरति क्षीणपुण्या शालान्तरे गौरिव नष्टवत्सा ॥

   -आ०ध०सू० 2/7/17/8

2. इहैव सम्भुञ्जतीति दक्षिणा कुलात्कुलं विनश्यतीति ॥

   -वही 2/7/17/9

3. तुल्यगुणेषु वयोवृध्दः श्रेयान्द्रव्यकृशश्चेप्सन् ॥

   -वही 2/7/17/10

एक दिन पहले भोजन के लिये ब्राह्मणों को निमन्त्रण देने के पश्चात्, दूसरे दिन दुबारा निमन्त्रण दिया जाता है । उसके पश्चात् उस दिन भोजन तैयार हो जाने पर भोजन के समय तीसरा निमन्त्रण दिया जाता था[1] ।

श्राध्द में होम अनिवार्यरूपेण किया जाता है होम ब्राह्मणों को भोजन कराने से ठीक पहले किया जाता है । होम के सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि होम के समय "उध्द्रियतामग्नौ च क्रियताम्" मन्त्र से ब्राह्मणों को अभिमन्त्रित किया जाता है मन्त्र का अर्थ है कि इस सिध्द अन्न से अंश निकालने की तथा अग्नि में हवन करने की आप लोग (ब्राह्मण) अनुमति प्रदान करें तत्पश्चात् ब्राह्मण "काममुध्द्रियतां काममग्नौ च क्रियताम्" अर्थात् अपनी इच्छा से अन्न को निकाल कर उसका हवन करो इस प्रकार की अनुमति देते है । तदनन्तर अन्न को अलग निकाल कर हवन किया जाता है[2]। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था । आपस्तम्ब धर्म सूत्र में ऐसे ब्राह्मणों की सूचियां है जो पंक्ति पावन एवं पंक्तिदूषक कहे जाते है । जो ब्राह्मण अपनी उपस्थिति से पंक्ति में बैठने वालों को पवित्र करते है, उन्हे पंक्तिपावन कहा

---

1. पूर्वेद्युर्निवेदनम् । अपरेद्युर्द्वितीयम् । तृतीयमामन्त्रणम् ।।

— आ०ध०सू० 2/7/17/11-13

जाता है और जो पंक्ति दूषित करते हैं उन्हें पंक्तिदूषक कहा जाता है। आप-स्तम्ब ने पंक्तिपावन ब्राह्मण उन्हें माना है जो तीन मधुबद जानते हैं, तीन त्रिसुपर्ण पढ़ते रहते हैं, जिन्होंने नचिकेत अग्नि में होम किया है, जो नाचो का रक्त परिरक्षा हुए हैं, जिन्होंने ज्येष्ठ साम पढ़ा है, पांचो अग्नियों को प्रज्ज्व-लित रखा है जो बेद के छ: अंगों को जानते हैं, जो अंगों सहित सम्पूर्ण बेद का अध्यापन करने में समर्थ ब्राह्मण का पुत्र है, जो तीन विद्याओं के ज्ञाता का पुत्र तथा जो श्रोत्रिय है[1]।

आपस्तम्ब की दृष्टि में श्वेत कुष्ठ के रोगी खल्वाट, व्यभिचारी, आयुधजीवी ब्राह्मण का पुत्र ऐसे ब्राह्मण का ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र, जो पहले शूद्रा पत्नी से विवाह करके शूद्र बन गया है, पंक्तिदूषक है[2]।

---

1. त्रिमधुस्त्रिसुपर्णास्त्रिणाचिकेतश्चतुर्मेध. पंचाग्निर्ज्येष्ठसामिको वेदाध्या-यनूचानपुत्र श्रोत्रिय इत्येते श्राध्दे भुंजाना. षड्,पंक्तिपावना भवन्ति।।

आ०ध०सू० 2/7/17/22

2. श्वित्रशिपिविष्ट परतल्पगाम्यायुधीयपुत्रशूद्रोत्पन्नो ब्राह्मणा-मित्येते श्राध्दे भुजाना पंक्तिदूषणा भवन्ति।।

-वही 2/7/17/21

आपस्तम्ब के अनुसार श्राद्ध में अर्पित की जाने वाली वस्तुएं हैं तिल, माष, व्रीहि, जौ, जल, मूल और फल[1]। उक्त के अतिरिक्त चिकने पदार्थों से युक्त अन्न पितृगणों को अर्पित किया जाता था। सूत्रकार के अनुसार यह दीर्घकाल तक संतुष्टि प्रदान करने वाला है। इसी प्रकार यदि धर्म पूर्वक उपार्जित धन योग्य व्यक्ति को दान में दिया जाता है तो वह दीर्घकाल तक संतुष्टि देने वाला है।

आपस्तम्ब ने गऊ मांस एवं भैंस के मांस को भी पितरों को अर्पित करने का उल्लेख किया है जो क्रमशः एक वर्ष तक एवं उससे भी अधिक समय तक संतुष्टि दायक है। उक्त गऊ मांस एवं भैंस मांस के अतिरिक्त आपस्तम्ब अन्य पालतू तथा जंगली पशुओं का मांस पितरों को अर्पित करने की अनुमति देते हैं तथा इसे अत्यधिक संतुष्टि दायक मानते हैं[2]।

---

1. तत्र द्रव्याणि तिलमाषा व्रीहियवा आपो मूलफलानि च।।

—आ०ध०सू० 2/7/16/22

2. स्नेहवति त्वेवाऽन्ने तीव्रतरा पितृणां प्रीतिर्द्राघीयांसं च कालम्। तथा धर्माहृतेन द्रव्येण तीर्थे प्रतिपन्नेन। संवत्सरं गव्येन प्रीतिः। भूयांसमतो माहिषेण। एतेन ग्राम्यारण्यानां पशूनां मांसं मेध्यं व्याख्यातम्।।

— वही 2/7/16/23-27

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वार्षिक श्राध्द के साथ साथ नित्य श्राध्द विधि का भी वर्णन प्राप्त होता है । सूत्रकार आपस्तम्ब ने नित्य श्राध्द विधि का वर्णन करते हुए कहा है कि गाव से बाहर किसी पवित्र स्थान पर व्यक्ति पवित्र होकर श्राध्द के प्रयोजन से अन्न पकाये । नित्य श्राध्द में जो द्रव्य ग्रहण किए जाते है उन्हीं से अन्न तैयार किया जाय और उन्ही पात्रों में अन्न खाया जाय । भोजन करने के पश्चात् उन पात्रों को उत्तम गुणों से युक्त भोजन करने वाले ब्राह्मणों को दे देना चाहिए तथा उस अन्न का जो अंश पात्रों में शेष बचा हो उसे किसी ऐसे ब्राह्मण को न खिलावे जो गुणो में उन ब्राह्मणो से हीन हो । इस प्रकार उपर्युक्त विधि से आपस्तम्ब ने एक वर्ष तक प्रतिदिन श्राध्द करने का उल्लेख किया है । इनमें अंतिम श्राध्द लाल रंग की बलि के साथ करने का विधान किया । इस मासिक श्राध्द के पश्चात् आपस्तम्ब के अनुसार श्राध्द प्रत्येक मास में किया जाय अथवा बिल्कुल न किया जाय ।

उक्त कथित मासिक श्राध्द के सम्बन्ध में आपस्तम्ब का विचार है कि इसमें चिकनाईयुक्त भोजन देना चाहिए । यद्यपि घी तथा मास से युक्त भोजन सर्वोत्तम है तथापि इन वस्तुओं का अभाव हो तो तैल और शाक भोजन में दिया जाय । इसके अतिरिक्त सूत्रकार प्रत्येक मासिक श्राध्द पर एक द्रोण तिल जिस उपाय से सम्भव हो सके उस उपायक से खर्च करने का निर्देश करते है । मासिक श्राध्द में भी प्रतिदिन किये जाने वाले श्राध्द के समान ब्राह्मण को भोजन

आपस्तम्ब के अनुसार समृध्दि चाहने वाला श्राध्दकर्त्ता उत्तरायण में तिष्य नक्षत्र होने पर प्रथम पक्ष में कम से कम एक दिन और एक रात उपवास करके स्थालीपाक पकवाने और महाराज कुबेर के लिए अर्पित करे, घृत मिला कर उस अन्न से एक ब्राह्मण को भोजन करावे और पुष्टि अर्थ वाले मन्त्र का पाठ करा कर समृध्दि की शुभाशंसा करावे। आपस्तम्ब ने इस विधान को अगले तिष्य नक्षत्र के आने तक प्रतिदिन करने का उल्लेख किया है एवं दूसरे तिष्य दिन को दूसरे मास में दो ब्राह्मणों को भोजन कराने, तीसरे ~~xxx~~ तिष्य दिन को तीसरे मास में तीन ब्राह्मणों को भोजन कराने का उल्लेख किया है। इस प्रकार उपरोक्त कर्म एक वर्ष तक किया जाता है और प्रत्येक मास में एक एक ब्राह्मण की संख्या बढ़ायी जाती है[1]। इस श्राध्द के संदर्भ में आपस्तम्ब ने आगे कहा है कि उपवास केवल प्रथम दिन ही किया जाय। उन वस्तुओं के भोजन का श्राध्दकर्त्ता परहेज करे जिनमें तेल होता है (जैसे तक्र, दधि आदि) भस्म के ऊपर या भूसे के ऊपर न चले। श्राध्दकर्त्ता एक पैर से दूसरे पैर को न धोवे और एक पैर के ऊपर दूसरा पैर न रखे दोनो पैरो को न हिलावे, एक घुटने के ऊपर दूसरी जंघा को न स्थापित करे, नखों से नखों ~~xxxxxx~~ को

---

1. एकमहरहस्यापरस्मात्तिष्यात्। द्वौ द्वितीये। त्रीस्तृतीये। एव संवत्सरमभ्युच्चयेन।

- आप०ध०सू० 2/8/20/4-7

न रगडे। बिना कारण के अंगुलियों से आलाप न करे, उन कर्मों को न करे जिनका निषेध किया गया है, धर्म के अनुसार द्रव्य का उपार्जन करने में संलग्न होवे।

योग्य व्यक्तियों या वस्तुओं के ऊपर धन व्यय करे एवं किसी अयोग्य व्यक्ति को कोई वस्तु न दे, जिससे उसे भय न हो। तथा अर्थ देकर तथा प्रिय वचन से मनुष्यों से मित्रता रखे। उन सुखों का भोग करे जो धर्म के द्वारा निषिध्द नहीं है। आपस्तम्ब का मन्तव्य है कि यदि उक्त आचरणों का पालन करते हुए व्यक्ति श्राध्द करेगा तो वह दोनो लोकों को प्राप्त करता है[2]।

इस प्रकार आपस्तम्ब धर्मसूत्र में श्राध्द का विस्तृत एवं सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

---

1. आदित एवोपवास । आत्ततेजसां भोजनं वर्जयेत् । भस्मतुषाधिष्ठानम्। पदा पदास्य प्रक्षालनमधिष्ठान च वर्जयेत्। प्रेङ्खोलनं च पादयो । जानुनि वाऽत्याधान जङ्घायाम्।। नखैश्च नखवादन ।।

—आ०ध०सू० 2/8/20/9-15

2. वोक्ता च धर्मयुक्तेषु द्रव्यपरिग्रहेषु च। प्रतिपादयिता च तीर्थे। यन्ता चा तीर्थे यतो न भयं स्यात्। संग्रहीता च मनुष्यान्। भोक्ता च धर्माविप्रतिषिध्दान् भोगान्। एवमुभौ लोकावभिजयति।।

—वही 2/8/20/18-23

प्रायश्चित्त[1]

धर्मसूत्रों में निन्दित और प्रतिषिद्ध पापों को करने से तथा इन्द्रियों को वश में न करने से उत्पन्न होने वाले पापों से व्यक्ति की आत्मशुद्धि हेतु प्रायश्चित्त का विधान किया गया है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के आधार पर पापों को मुख्यतः निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है जिनके घटित होने पर प्रायश्चित्त का विधान किया गया था-

(1) पतनीय कर्म- सुवर्ण की चोरी, ब्राह्मण की हत्या, गुरुष का बध, वेदाध्ययन का त्याग, गर्भ की हत्या, माता और पिता के योनिसम्बन्ध वाली स्त्रियों तथा उनकी पुत्रियों के साथ मैथुन, सुरापान तथा उन लोगों के साथ संयोग जिनसे संयोग करना निषिद्ध है[2] ।

---

1. निश्चित्य तस्यो नुष्ठानं प्रायश्चित्तम् - हरदत्त (गौतम 22/1)

2. स्तेयमाभिशस्त्यं पुरुषबधो ब्रह्मोज्झ गर्भशातन मातु पितुरिति योनिसम्बन्धे सहापत्ये स्त्रीगमनं सुरापानमसंयोग- संयोग.।।

-आ0ध0सू0 1/7/21/7-8

(2) अशुचिकर कर्म- उच्च वर्ण की स्त्रियों का शूद्रों के साथ यौन सम्बन्ध निषिध्द मांस का भक्षण, आर्यों का अपात्र स्त्रियों से मैथुन ।

(3) प्रकीर्ण- ब्रह्मचर्य का भंग, पशुवध, समय बीत जाने पर भी उपनयन संस्कार न होना ।

अभिशस्त प्रायश्चित्त - आपस्तम्ब के अनुसार ब्राह्मण पुरुष की हत्या करने वाला, आत्रेयी स्त्री का वध करने वाला पुरुषों का अथवा इन दोनों वर्णों के सोमयाग में दीक्षित पुरुष का वध करने वाला तथा जो अपना या दूसरे का जीवन लेता है अभिशस्त होता है[1] ।

जहां तक आत्रेयी का लक्षण है मनु[2] के अनुसार जन्म से लेकर सब संस्कारों से मन्त्रपूर्वक संस्कृत अथवा गर्भिणी स्त्री आत्रेयी स्त्री है । हरदत्त ने वसिष्ठ को उदधृत करते हुए ऋतुस्नाता स्त्री को आत्रेयी कहा तथा कुछ अन्यों के मत का उल्लेख करते हुए अत्रिगोत्र में उत्पन्न स्त्री को आत्रेयी कहा है[3] ।

---

1. पूर्वयोर्वर्णयोर्वेदाध्यायं हत्वा सवनगतं वाऽभिशस्त । ब्राह्मणमात्रं च। गर्भं च तस्याऽविज्ञातम्। आत्रेयीं च स्त्रियम् ।।
   -आ0ध0सू0 1/9/24/6-9

2. मनु0 स्मृ0 11/87

3. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/9/24/9 पर हरदत्त की टिप्पणी

आपस्तम्ब ने अभिशस्त व्यक्ति के लिए प्रायश्चित्त का विधान करत हुए उसे आदेशित किया है कि बन में वह एक कुटी बनाकर, वाणी को रोक कर, डण्डे के ऊपर मनुष्य की खोपडी रख कर तथा शरीर का नाभि से घुटने तक का भाग सन के वस्त्र के चौथाई भाग से आच्छादित कर रहे तथा ग्राम में प्रवेश करते समय गाडी इत्यादि की दोनों लीको के बीच के भाग से, घटिया किस्म की धातु के पात्र का खर्पर लेकर प्रविष्ट हो एवं दूसरे व्यक्ति को देख कर मार्ग छोडकर हट जांय । तथा मुझ अभिशप्त को कौन भिक्षा देगा ऐसी पुकार लगाते हुए सात घरों में भिक्षाटन करे एवं जो कुछ प्राप्त हो उसी से जीविका का निर्वाह करे यदि उसे कुछ भी प्राप्त न हो तो उपवास करे[1] एव जब गायें गाव से निकलती है और प्रवेश करती वह भिक्षार्थ ग्राम में दुबारा प्रवेश कर सकता है । इस प्रकार प्रायश्चित्त करते हुए वह बारह वर्ष तक प्रायश्चित्त करे तत्पश्चात् शास्त्रोक्त शिष्टाचार को करे जिसके व्दारा वह पुन: सज्जनों के समाज में प्रवेश योग्य हो जाय[2] अथवा बारह वर्ष तक उपर्युक्त प्रायश्चित्त

---

1. अरण्ये कुटिं कृत्वा वाग्यत: शवशिरध्वजोऽर्धशाणीपक्षमधोनाभ्युपरिजान्वाच्छाद्य। तस्य पन्था अन्तरा वर्त्मनी । दृष्टवा चान्यमुत्क्रामेत्। खण्डेन लोहितकेन शरावेण ग्रामे प्रतिष्ठेत। को भिशस्तायाभिक्षामिति सप्तागारं चरेत्। सा वृत्ति:। अलब्ध्वोपवास:।।

   -आ०ध०सू० 1/9/24/11-17

2. वही 1/9/24/19-20

करने के बाद चोरों के मार्ग में कुटी बनाके और चोरों से ब्राह्मणों का आहृत गायों को छुडाने का प्रयत्न करता रहे, तीन बार परास्त होने पर अथवा उन पर विजय पाने पर वह पाप से मुक्त होता है। अथवा अश्वमेध का अवभृथ स्नान करने पर पाप दूर होता है[2]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने अभिशस्त के भांति हो प्रायश्चित्त गुरु, वेद के विद्वान तथा सोमयज्ञ का अन्तिम कर्म समाप्त कर लेने वाले श्रोत्रिय का वध करने वाले व्यक्ति के हेतु विहित किया है परन्तु उसके लिए यह प्रायश्चित्त जीवन भर करने की बात कही है क्योंकि आपस्तम्ब के अनुसार ऐसे कृत्य करने वाले की मुक्ति इस संसार में नहीं हो सकती अपितु मृत्यु के बाद ही उसकी मुक्ति सम्भव है[3]।

---

1. वाजिपथ वा कुटिं कृत्वा ब्राह्मणगव्यो विजगीषमाणो वसेत्त्रि प्रतिराद्धोऽपजित्य वा मुक्तः ।।

   -आ०ध०सू० 1/9/24/21

2. आश्वमेधिकं वाऽवभृथमवेत्य मुच्यते ।।

   - वही 1/9/24/22

3. - वही 1/9/24/24-26

दूसरे स्थल पर आपस्तम्ब ने उल्लेख किया है कि ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति को छोड़कर यदि किसी अन्य वर्ण के व्यक्ति के द्वारा ब्राह्मण की हत्या का जाती है तो ऐसा व्यक्ति युध्द में जाकर दोनो पक्षों के बीच खड़ा हो जाय यहां सैनिक यदि उसका वध करें तो वह मरने पर पाप से शुध्द हो जायेगा अथवा अपने शरीर से रोम, त्वचा, मांस निकलवाकर अग्नि में हवन कराये और स्वयं को अग्नि में झोंक दे[1]।

उक्त से स्पष्ट है कि आपस्तम्ब ने ब्रह्महत्या के प्रसंग में दो प्रकार के प्रायश्चित्त का विधान किया है। प्रथम प्रायश्चित्त ब्राह्मण द्वारा ब्राह्मण की हत्या करने पर तथा दूसरा प्रकार अन्य वर्ण के व्यक्तियों द्वारा ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति की हत्या के लिए विहित किया है।

<u>गुरुतल्पग का प्रायश्चित्त</u> - आपस्तम्ब ने गुरुतल्पग के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया है उन्होंने 'तल्प' का लाक्षणिक अर्थ पत्नी से लिया है अतएव इस आधार पर उन्होंने गुरु पत्नी गमन के पाप के लिए मृत्युदण्ड का विधान

---

1. प्रथम वर्णं परिहाप्य प्रथमं वर्णं हत्वा संग्रामं गत्वाऽवतिष्ठेत तत्रैनं हन्यु। अपि वा लोमानि त्वचं मांसमिति हावयित्वाऽग्निं प्रविशेत्।।

-आ0ध0सू0 1/9/25/12-13

किया है तथा उनके अनुसार मृत्यु के उपरान्त ही गुरुपत्नी गमन का पाप दूर होता है[1]। प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि ऐसा पाप करने वाला अण्डकोष सहित जननेन्द्रिय को काटकर अपनी अञ्जलि में रखकर बिना रुके दक्षिण दिशा को तब तक चलता जाय जब तक गिरकर मृत्यु नहीं प्राप्त कर लेता[2] अथवा जलती हुई स्त्री प्रतिमा का आलिङ्गन करके जीवन को समाप्त करे[3] किन्तु आपस्तम्ब ने हारीत के मत का उल्लेख करते हुए इस प्रायश्चित्त का निषेध किया है।

---

1. एतेनैव लिप्सिनोन्तमाद्धुच्छ्नासच्चरेन्ना सा ऽस्मिल्लोके
   प्रत्यापत्तिर्विद्यते कल्मषं तु निर्हण्यते ।।

   -आ०ध०सू० 1/10/28/18

2. गुरुतल्पगामी सवृषणं शिश्नं परिवास्याञ्जलावा
   धाय दक्षिणा दिशमनावृत्ति व्रजेत् ।।

   - वही 1/9/25/1

3. गुरुतल्पगामी तु सुषिरां सूर्मि प्रविश्योभयत
   आदीप्याऽभिदहेदात्मानम् ।।

   - वही 1/9/28/15

सुरापान का प्रायश्चित्त - आपस्तम्ब ने सभी मादक वस्तुओं को अपेय[1] घोषित किया है तथा इसे पतनीय कर्म माना है[2] तथा प्रायश्चित्त हेतु अग्नि पर खौलायी गई सुरा पीने का विधान किया है[3] ।

स्तेन का प्रायश्चित्त - आपस्तम्ब ने कौत्स, हारीत काण्व तथा पुष्करसादी के मत का उल्लेख करते हुए किसी भी अवस्था में दूसरे की सम्पत्ति को प्राप्त करने का लोभ करने वाले व्यक्ति को स्तेन बताया है[4] एवं ऐसे व्यक्ति के प्रायश्चित्त के लिए 4 प्रकार के प्रायश्चित्तों का विधान किया है- ।।स्तेन अपने केश बिखेरे हुए कंधे पर मूसल रखकर राजा के पास जाये और उससे अपना कर्म बतावे । राजा उस मूसल से स्तेन के ऊपर प्रहार करे, उससे यदि उसका बध हो जाय तो स्तेन के पाप से मुक्ति हो जाती है[5] ।2। अथवा स्वयं को अग्नि में झोंक दे या कठोर तप का बार-बार आचरण करे[6] ।3। अथवा भोजन में

---

1. -आ०ध०सू० 1/5/17/21
2. - वही 1/7/21/8
3. सुरापोऽग्निस्पर्शां सुरां पिबेत् ।।
   -वही 1/9/25/3
4. -वही 1/10/28/1
5. स्तेन प्रकीर्णकेशोंऽसे मुसलमाधाय राजानं गत्वा कर्माऽऽचक्षीत।
   तेनैन हन्यादूधे मोक्षः ।।
   -वही 1/9/25/4
6. -वही 1/9/25/6-7

प्रतिदिन ह्रास करते हुए अपना भोजन समाप्त कर दे[1]। (4) अथवा एक वर्ष तक निरन्तर कृच्छ्र व्रत करे[2]।

शूद्र वध प्रायश्चित्त - शूद्र वध प्रायश्चित्त के लिए आपस्तम्ब ने 10 गायें तथा एक बैल के दान करने का विधान किया है[3] किन्तु आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि ये गायें किसको दी जायेगी सम्भवतः ये गायें ब्राह्मणों को ही दी जाती होंगी क्योंकि आपस्तम्ब धर्मसूत्र में केवल ब्राह्मण को ही दान ग्रहण का अधिकार था।

शूद्रवधवत् प्रायश्चित्त - आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार कौआ, गिरगिट, मोर, चक्रवाक, हंस, भास, मेढक, नेवला, गन्धमूषिका (छछून्दर), कुत्ता तथा दूध देने वाली गाय या बैल को अकारण मारने पर शूद्र के वध के समान प्रायश्चित्त करने का विधान है[4]। इस प्रकार के विधान को देखकर दो प्रकार के

---

1. भक्तापचयेन वाऽऽत्मानं समाप्नुयात्।।

-आ०ध०सू० 1/9/25/8

2. कृच्छ्रसंवत्सरं वा चरेत्।।

-वही 1/9/25/9

3. दश शूद्रे । ऋषभश्चात्राधिक सर्वत्र प्रायश्चित्तार्थः।।

-वही 1/9/24/3-4

4. -वही 1/9/25/14

निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं कि (1) या तो यह सोचा जा सकता है कि धर्मशास्त्रकार ने शूद्र के जीवन को इन पशुओं के जीवन के तुल्य स्वीकार किया है अथवा (2) यह सोचा जा सकता है कि आपस्तम्ब ने तुच्छ से तुच्छ जीव जन्तु के प्राणों को भी इतना महत्व दिया है कि उनको मारने पर वही प्रायश्चित्त अभीष्ट होता है जो प्रायश्चित्त दुर्लभ मनुष्ययोनि में अवस्थित शूद्र को मारने पर करना पड़ता है।

उपर्युक्त शूद्रवधवत् प्रायश्चितों के अन्तर्गत आपस्तम्ब ने उन जानवरों के लिए (जिनमें अस्थियां नहीं होती हैं) शूद्र के वध के प्रायश्चित के बराबर प्रायश्चित का उल्लेख किया है[1]। इसके अतिरिक्त जिन पुरुषों की हत्या करने पर हत्या करने वाला अभिशस्त हो जाता है, उन व्यक्तियों के शरीर का एक अंग काटने पर यदि उनका प्राण संकटापन्न नहीं होता तो आपस्तम्ब सूत्र में शूद्रवधवत् प्रायश्चित का विधान आपस्तम्ब ने किया है[2]।

<u>अवकीर्णी का प्रायश्चित्त</u> - स्त्री सम्पर्क करने वाला ब्रह्मचारी अवकीर्णी कहलाता है[3]। ऐसे ब्रह्मचर्य को भंग करने वाले ब्रह्मचारी के लिए आपस्तम्ब ने पाकयज्ञ की विधि से गर्दभ की बलि देने का

---

1. -आ०ध०सू० 1/9/26/2

2. येष्वाभिशस्त्यं तेषामेकाङ्गं छित्वाऽप्राणिहिंसायाम्।।
-वही 1/9/26/6

निधान किया है तथा आदेशित किया है कि उस गर्दभ की बलि का हवन करने से अवशिष्ट मांस को शूद्र पुरुष से भक्षण कराले । यदि अवकीर्णी ब्रह्मचारी उक्त नियम का अतिक्रमण करता है तो एक वर्ष तक पुण्डरीक गुरु की सेवा करे और केवल, नित्य के स्वाध्याय के समय आचार्य, आचार्य पत्नी से केवल किसी आवश्यक कार्य का निवेदन करते समय और भिक्षाचरण के समय ही बोले[1] ।अथवा काम और मन्यु के लिए "कामो कार्षीत्" मन्युरकार्षीत् कहते हुए हवन करे अथवा काम और मन्यु के मन्त्र का केवल जप करे [2]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने उक्त सभी प्रायश्चित्तों के लिए वर्णित प्रायश्चित्त के अतिरिक्त निम्न प्रायश्चित्त करना अत्यावश्यक माना है । उनका कथन है कि पर्वों पर तिल का भक्षण करके अथवा उपवास करके, दूसरे दिन स्नान करे, प्राणायाम करके गायत्री मन्त्र का एक हजार बार जप अथवा बिना प्राणायाम किये ही गायत्री मन्त्र का एक हजार बार जप करे[3]।

---

1. गर्दभेनाऽवकीर्णी निर्ऋतिं पाकयज्ञेन यजेत। तस्य शूद्रः प्राश्नीयात्। मिथ्याधीतप्रायश्चित्तम्। संवत्सरमाचार्यहिते वर्तमानो वाचं यच्छेत्स्वाध्याय एवोत्सृजमानो वाचमाचार्ये आचार्यदारे वा भिक्षाचर्ये च।।

   —आ०ध०सू० 1/9/26/8-11

2. काममन्युभ्यां वा जुहुयात्कामोऽकार्षीन्मन्युर कार्षीदिति।जपेद्वा।।

   —वही 1/9/26/13-14

3. पर्वणि वा तिलभक्ष उपोष्य वा श्वोभूत उदकमुपस्पृश्य सावित्रीं प्राणायामशस्सहस्रकृत्व आवर्तयेदप्राणायामशो वा।।

   —वही 1/9/26/15

अथवा श्रावण महीने की पौर्णमासी को तिल का भक्षण करके या उपवास करके दूसरे दिन किसी बड़ी नदी में स्नान करे और एक सहस्त्र याज्ञिक वृक्ष की समिधाएँ गायत्री मन्त्र का जप करते हुए अग्नि पर रखे अथवा एक सहस्त्र बार गायत्री मन्त्र का जप करे[1]।

अभक्ष्यभक्षण प्रायश्चित्त.- अभक्ष्यभक्षण करने पर आपस्तम्ब ने प्रायश्चित्त की व्यवस्था की है उनका मत है कि - [1] निषिध्द भोजन का भक्षण करने वाला तब तक उपवास करे जब तक पेट मल रहित नहीं हो जाता । उनकी दृष्टि में पेट मलरहित सामान्यतः सात रात्रियों में होता है । अतएव निषिध्द भोजन का भक्षण करने पर सात दिन तक के उपवास का उन्होंने विधान किया है [2] । [2] अथवा हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में प्रातः और साय ठण्डे जल से स्नान करे[3]। [3] अथवा बारह दिन का कृच्छ्रव्रत करे[4] ।

---

1. श्रावण्यां वा पौर्णमास्यां तिलभक्ष उपोष्य वा श्वो भूते महानदमुदकमुपस्पृश्य सावित्र्या समित्सहस्त्रमादध्याज्जपेद्वा।।

   -आ०ध०सू० 1/9/27/1

2. अभोज्य भुक्त्वा नैष्पुरीष्यम्। तत्सप्तरात्रेणावाप्यते।।

   -वही 1/9/27/3-4

3. हेमन्तशिशिरयोर्वोभयोस्सन्ध्योर्वोदकमुपस्पृशेत्।।

   -वही 1/9/27/5

4. कृच्छ्रद्वादशरात्रं वा चरेत्।।

   -वही 1/9/27/6

पतितसावित्रीक का प्रायश्चित्त - जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो, अर्थात जिन्हे गायत्री का उपदेश न कराया गया हो और इस प्रकार जो व्रात्य हैं तथा आर्य समाज से बहिष्कृत हैं उन्हे पतितसावित्रीक की उपाधि दी गई है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्ण क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए क्रम से 16वें, 22वें तथा 24वे वर्ष तक उपनयन संस्कार की अवधि रहती है, किन्तु इन सीमाओं के उपरान्त उपनयन न करने पर वे सावित्री उपदेश के अयोग्य हो जाते है और उन्हें वेदाध्ययन करना निषिध्द था एवं उनके यज्ञों में जाना एवं उनसे सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करना वर्ज्य था[1]।

आपस्तम्ब पतितसावित्रीक के लिए प्रायश्चित्त का विधान करते हुए लिखते है कि "उपनयन की अवधि बीत जाने पर दो मास, तीन वेदों का अध्ययन करने वालों की तरह ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करने पर उपनयन करके प्रतिदिन तीन बार वर्ष भर स्नान करते हुए वेद का अध्ययन किया जा सकता है[2]। इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्मसूत्र का कहना है कि यदि जिसके पिता

---

1. तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति च वर्जयेत् ।।

-आ० ध० सू० 1/1/1/33

2. अतिक्रान्ते सावित्र्या ऋतु त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यं चरेत्। अथोपनयनम् ।

ततस्संवत्सरमुदकोपस्पर्शनम् ।+ अथाऽध्याप्य ।।

- वही 1/1/1/28-31

और पितामह का उपनयन न किया गया हो तो ऐसे व्यक्ति 'ब्रह्महण' कहे जाते है तथा इनके साथ सामाजिक सम्बन्ध भोजन, विवाह आदि नहीं करना चाहिए किन्तु यदि वे चाहे तो उनका प्रायश्चित्त हो सकता है वे दो मास तीन वेदों का अध्ययन करने वालों की तरह ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करने के बाद उपनयन करके प्रतिदिन तीन बार वर्ष भर स्नान करते हुए वेद का अध्ययन कर सकते है । आगे आपस्तम्ब ने लिखा है कि जितने पूर्वज अनुपेत हो उनमें प्रत्येक के लिए एक- एक वर्ष जोड कर उतने वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का प्रायश्चित्त करें[1] तथा प्रतिदिन यजुष्पवित्र के यदन्ति यच्च दूरक आदि सात पवमान मन्त्रों द्वारा साम्पवित्र तथा अङ्गिरस आदि मन्त्रों से अञ्जलि से जल लेकर सिर पर सिञ्चन करें[2] ।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने उन व्यक्तियों को जिनकी चार पीढ़ियों में (अर्थात प्रपितामह, पितामह, पिता और स्वयं का) उपनयन होने का स्मरण नहीं है उन्हें श्मशान कहा है इससे यह ध्वनित होता है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में ऐसे व्यक्ति पतित हैं । जिस प्रकार श्मशान के समीप वेदाध्ययन नहीं किया जा सकता उसी प्रकार ऐसे उक्त पतित लोगों के समीप वेदाध्ययन नहीं किया जाता था । आपस्तम्ब ने ऐसे लोगों के लिए भी

---

1. -आ०ध०सू० 1/1/1/32-37

2. -वही 1/1/2/2

प्रायश्चित का विधान किया है । प्रायश्चित का विधान करते हुए सूत्रकार का कथन है कि यदि ऐसे व्यक्ति चाहें तो उनका प्रायश्चित सम्भव है । प्रायश्चित स्वरूप ऐसे व्यक्ति बारह वर्ष तक तीन वेदों के अध्येताक ब्रह्मचारी के व्रत का पालन करके, उपनयन करके आपमान आदि मन्त्रों से स्नान करने के बाद गृहस्थ के नियमों से उपदिष्ट किये जा सकते हैं परन्तु उन्हें सम्पूर्ण वेद की शिक्षा न दी जाय तत्पश्चात् गृह्यमन्त्रों का अध्ययन समाप्त होने पर उनका उपनयन प्रथम अतिक्रम के सम्बन्ध में किया गया था, उस प्रकार किया जाय[1]।

इस प्रकार हम देखते है कि पतितसावित्रीक, विहित प्रायश्चित्त को करके पुन उपनयन के योग्य किसी भी अवस्था में हो सकता है ।

<u>अन्य प्रायश्चित्त</u> – आपस्तम्ब ने अनार्य आचरण के दोषी, दूसरों पर दोष लगाने वाले, निषिध्द आचरण का अनुसरण करने वाले, वर्जित वस्तु का भक्षण करने वाले, योनि के अतिरिक्त अन्यत्र (अस्वाभाविक) वीर्य स्खलन करने वाले, दोषयुक्त जान बूझकर अथवा अनजान ही अभिचारिक कर्म करने वाले, स्नान करके तथा अब्लिङ्ग और वरुण के मन्त्रों का पाठ करने पर शुध्द होते है[2] ।

---

1. –आ०ध०सू० 1/1/2/5-10

2. –वही 1/9/26/7

उक्त के अतिरिक्त शूद्रा से सम्भोग करने वाले, ब्याज पर धन देने वाले, मादक द्रव का पान करने वाले, सबको ब्राह्मण की तरह वन्दना करने वाले के लिए आपस्तम्ब ने प्रायश्चित्त स्वरूप घास पर बैठकर अपनी पीठ तपाने का विधान किया है[1] तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्र कहता है कि यदि कोई ब्राह्मण अपनी आजीविका के लिए एकरात्रि शूद्र की सेवा करता है तो ब्राह्मण वर्ण का पुरुष प्रति चतुर्थ समय में स्नान कर तीन वर्षों में उस पाप को दूर कर पाता है[2]।

षष्ठ अध्याय

दार्शनिक विचार

षष्ठ अध्याय

आपस्तम्ब धर्मसूत्र तथा सभी धर्मसूत्रों का वर्ण्य विषय मूलत: आचार, विचार, विधि, निषेध, नियम आदि का सम्यक् व्याख्यान करना है। धर्मसूत्र नाम से ही सर्वप्रथम धर्म की प्रधानता बोधित होती है। भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन की नियोजना के अन्तर्गत पुरुषार्थ चतुष्टय के रूप में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार तत्वों को स्वीकार किया है। मानव जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष है और भौतिक जीवन के लक्ष्य के रूप मे काम को स्वीकार किया गया है। अर्थात् पुरुषार्थों की अवधारणा के मूल में भौतिक जीवन के लक्ष्य को काम के स्वरूप में मानते हुए उसके साधन के रूप में अर्थ को स्वीकार किया गया है और मानव जीवन के परम लक्ष्य जिसको अध्यात्म जगत् मोक्ष के रूप में स्वीकार करता है, की प्राप्ति में सहायक मार्ग के रूप में धर्म को मान्यता दी गई है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र का मूल प्रतिपाद्य धर्म है। आपस्तम्ब ने अपने धर्मसूत्र का प्रारम्भ जिस सूत्र से किया है उसमें धर्म को ग्रन्थ का मूल प्रतिपाद्य माना[1] है। ग्रन्थकार के द्वारा अनुमन्य धर्म की परिधि संकीर्ण नही है अपितु धर्मशास्त्र के समस्त व्याख्याकारों को अपने धर्म के अन्तर्गत अधिगृहीत करते हुए

उन्हें प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है[1]।

आपस्तम्ब ने वर्णाश्रम व्यवस्था को भी बहुत अधिक महत्व दिया है । वर्णाश्रम व्यवस्था को वैदिक दर्शन के अन्तर्गत मूल आधार माना गया है । ग्रन्थकार ने आश्रम व्यवस्था के विश्लेषण के सन्दर्भ में चारो आश्रमों का विस्तृत उल्लेख किया है । आश्रमों में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ,वानप्रस्थ एवं संन्यास के स्वरूप के सन्दर्भ में शोध प्रबन्ध में पर्याप्त उल्लेख किया गया है । आश्रमों के पारस्परिक क्रम के विषय में भी आपस्तम्ब के मत की समीक्षा की गयी है । संन्यास आश्रम का निरूपण करते हुए आपस्तम्ब ने उसी तथ्य का उल्लेख किया है कि व्यक्ति में जगत् के प्रति उदासीनता और आत्मतत्व के प्रति जिज्ञासा का प्रावल्य हो उठता है । ग्रन्थकार की यह अवधारणा वेदान्त दर्शन के अनुरूप है। अत यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि आपस्तम्ब धर्म सूत्र की आध्यात्मिक अवधारणा वेदान्त दर्शन के पर्याप्त निकट है ।

ग्रन्थ के अन्तर्गत अनेक स्थलों पर स्वर्ग का उल्लेख आया है। स्वर्ग के व्दार के रूप में ओंकार का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते है कि ओंकार स्वर्ग का व्दार है अत. वेद का अध्ययन इस ओंकार शब्द से आरम्भ करना चाहिए[2]। स्वर्ग की मान्यता सम्बन्धी अवधारणाएं पूर्वमीमासा दर्शन के अन्तर्गत पर्याप्त दृढता से ग्रहण की गयी है । स्वर्ग कामो यजेत्। अर्थात् स्वर्ग की प्राप्त की कामना से यज्ञादि करना चाहिए ।

ग्रन्थकार को भी स्वर्ग की धारणा अभिप्रेत है अत: वेदान्त दर्शन के साथ ही साथ पूर्वमीमांसा का वह सिध्दान्त भी सूत्रकार को मान्य है जिसके अन्तर्गत यज्ञादि के व्दारा स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता है । स्वर्ग का कथन सूत्रकार ने अनेक स्थलों[1] पर किया है, जिससे इस धारणा को पर्याप्त बल मिलता है कि पूर्व मीमांसा दर्शन के अन्तर्गत अनुमन्य यज्ञादि कर्मकाण्डों के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले स्वर्ग को उसी रूप में स्वीकार किया है ।

आपस्तम्ब ने पुनर्जन्म के सिध्दान्त को भी स्वीकार किया है । सूत्रकार का कथन है कि पूनर्जन्म के पुण्यफल के शेष होने से कुछ लोग पुनर्जन्म लेने पर अपने वेद के ज्ञान के व्दारा ऋषियों के समान होते हैं[2] । इसी सन्दर्भ में आप-स्तम्ब का कथन है कि श्वेतकेतु ने बहुत अल्प अवस्था में चारो वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था क्योंकि पूर्वजन्म के संस्कारो के कारण अगले जन्म में पर्याप्त फल दृष्टिगत होते हैं[3]।

---

1. आ०ध०सू० 1/2/5/15, 2/2/4/9, 2/3/7/5, 2/8/18/4,2/9/24/5

2. श्रुतर्षयस्तु भवन्ति केचित्कर्मफलशेषेण पुनस्सम्भवे ।।

—आ०ध०सू० 1/2/5/5

3. यथा श्वेतकेतु:।।

—वही 1/2/5/6

कहने का तात्पर्य यह कि पुनर्जन्म का सिध्दान्त जो भारतीय दर्शन के मूल तत्त्वों में से एक है उसको भी आपस्तम्ब स्वीकार करते हैं । यदि यह प्रश्न है कि पुनर्जन्म को दर्शन का मूल तत्त्व कैसे कहा जा सकता है? तो इसका उत्तर भारतीय दर्शन की वह अवधारणा है जिसके अन्तर्गत आत्मतत्त्व ही परम सत्य एवं त्रिकालावाधित स्वीकार किया गया है जिसमें माया, अविद्या आदि दोषों के कारण दु:ख और जन्मजन्मान्तर की परिकल्पना की गई है । ग्रन्थकार ने आपस्तम्ब धर्मसूत्र में ही इन समस्त तथ्यों का निरूपण किया है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अन्य आध्यात्मिक तथ्यों का निरूपण अध्यात्म पटल के अन्तर्गत किया गया है जिसका मुख्य प्रतिपाद्य बाह्य जगत् के विषयों से पराङ्मुख करके नित्य सत्य आत्मतत्त्व में इन्द्रियों या चित्त को लगाना है[1]।

आत्मतत्त्व का स्वरूप:- आपस्तम्ब ने इस विषय में उपनिषदों को प्रमाण माना है । सूत्रकार का सुस्पष्ट कथन है कि आत्मतत्त्व के विषय में उपनिषदो को अनुमन्य जो भी सिध्दान्त हैं, वही स्वीकार्य है[2]। इसी कारण अध्यात्म पटल को बड़े ही सीमित सिध्दान्तों से युक्त किया क्योंकि जब सूत्रकार यह स्पष्टत स्वीकार कर लेते हैं कि आत्मतत्त्व के विषय में आत्मज्ञान की प्राप्ति के महत्त्व के

---

1. अध्यात्मिकान् योगाननुतिष्ठेन्न्यायसंहितानैश्चारिकान।।

—आ०ध०सू० 1/8/22/1

2. तत्राऽऽत्मलाभीयाञ्छ्लोकानुदाहरिष्याम:।।

—वही 1/8/22/3

विषय में वही सिध्दान्त प्रतिपादित किये जायेंगे, जो उपनिषदों को स्वीकार्य है।

अतएव आचार विचार एवं कर्मकाण्ड के इस ग्रन्थ में आत्मतत्त्व का विशेष विवेचन नही किया गया है परन्तु किसी को यह सन्देह न उत्पन्न हो कि आपस्तम्ब के अध्यात्म सम्बन्धी कोई विचार ही न थे तथा अध्यात्म जगत् के सिध्दान्तों को उन्होंने अंगीकार नही किया है इसीलिए उन्होने अपने ग्रन्थ में अध्यात्म पटल के अन्तर्गत कुछ मुख्य सिध्दान्तों का विवेचन करके अपना मन्तव्य स्पष्ट कर दिया है ।

आत्मा के स्वरूप का विवेचन करते हुए सूत्रकार ने उल्लेख किया है कि आत्मा ज्ञान स्वरूप है, कमलनाल के बिसतन्तु से भी सूक्ष्म है, सम्पूर्ण विश्व को अपने में समाविष्ट किए हुए स्थित है । पृथ्वी से अधिक भारी है और नित्य है, सत्य है । वह परमात्मा उत्पन्न होने वाले इस संसार के स्वरूप से भिन्न है[1] । इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि आत्मा एव परमात्मा मे सूत्रकार को कोई भेद अभिप्रेत नही है क्योंकि एक ही अर्थ में दोनों पद प्रयुक्त हैं और यही सिध्दान्त उपनिषदों को भी अभिप्रेत है । यदि इस सन्दर्भ में कोई मतभेद होता तो सूत्रकार निश्चय ही यहां उसका स्पष्ट उल्लेख करते । बल्कि विना भिन्नार्थक प्रयोग के एक

---

1. निपुणोऽणीयान् बिसोर्णाया यस्सर्वमावृत्य तिष्ठति। वर्षीयांश्च पृथिव्या ध्रुव: सर्वमारभ्य तिष्ठति। स इन्द्रियैर्जगतोऽस्य ज्ञानादन्योऽनन्यस्य यज्ञात्पर-मेष्ठो विभाज:। तस्मात्काया: प्रभवन्ति सर्वे स मूलं शाश्वतिक स नित्य:।।

-आ०ध०सू० 1/8/23/2

ही अर्थ में दोनों पदों का प्रयोग हुआ है । यही सिध्दान्त उपनिषदों को भी अभिप्रेत है । शंकराचार्य को भी यही सिध्दान्त अभिप्रेत है, आचार्य शंकर की विवरण नामक व्याख्या अध्यात्म पटल पर उपलब्ध है। जहां सुस्पष्टता कहते है कि आत्मा के ज्ञान के लाभ से बढ़कर कोई अन्य लाभ नही है[1]।

इसी सिध्दान्त को आचार्य शङ्.कर ने विस्तार से बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्तर्गत विचार्य बनाया है जहा जगत् की पुत्रवित्तादि समस्त वस्तुओं को अनित्य एवं मिथ्या घोषित करके आत्मज्ञान को ही सर्वोत्कृष्ट लाभ बताया है[2] और यह आत्मज्ञान कुछ और नही अपितु अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान मात्र है । छान्दोग्य उपनिषद् मे भी आत्मतत्त्व के इसी स्वरूप का वर्णन किया गया है । इसके अन्तर्गत नित्य निर्मल, एकरस, अव्दैत आत्मतत्त्व का स्वरूप बताया गया है, जो त्रिकाला वाधित है ।

आपस्तम्ब ने श्वेतकेतु को अपने ग्रन्थ में ग्रहण करके और उनकी मान्यता को स्वीकार करके यह सुस्पष्ट संकेत कर दिया है कि छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित अध्यात्म का पूरी तरह से समर्थन करते हैं ।

---

1. आत्मलाभाद् आत्मन: परस्य स्वरूपप्रतिपत्ते:न परं लाभान्तरं विद्यते।।

—आ0ध0सू0 1/8/22/2 पर शाङ्.करभाष्य

2. तदेतत् प्रेय. पुत्राद्।।

—बृह0उ0 1/4/8

आत्मतत्त्व की व्यापकता - सूत्रकार के मतानुसार आत्मतत्त्व बुध्दिरूपी गुहा में शयन करता है[1] ।

सूत्रकार के अनुसार आत्मा सभी प्राणियों में नित्य अर्थात् अनश्वर शाश्वत रूप में विद्यमान है,अमर है,ध्रुव अर्थात् विकाररहित है,ज्ञानस्वरूप है,अंगहीन तथा शब्द और स्पर्श गुण से परे है। सूक्ष्म शरीर से भी वर्णित है। अत्यन्त शुध्द है वही सम्पूर्ण विश्व है,परम लक्ष्य है । शरीर के भीतर उसी प्रकार से अवस्थित है जिस प्रकार सत्र यज्ञ में विषुवत नाम का दिन मध्य में होता है। आत्मा उसी प्रकार सभी लोगों व्दारा प्राप्य है जैसे अनेक मार्गों से युक्त नगर में सभी लोग आते हैं[2]।

इस प्रकार सूत्रकार ने आत्मतत्त्व की नित्यता एवं पवित्रता को व्याख्यायित किया तथा उसकी सर्व व्यापकता पर विशेष बल दिया है।वृहदारण्यक उपनिषद[3] का भी कथन है "इदं सर्व यदयमात्मे"।

आत्मतत्त्व के लक्षण - आत्मतत्त्व के लक्षण पर प्रकाश डालते हुए सूत्रकार ने उपनिषदों में वर्णित आत्मा के लक्षण को उसी रूप में ग्रहण कर लिया है।ब्रह्मसूत्र में भी आत्मतत्त्व के उन्ही लक्षणों का कथन है जिसे सूत्रकार स्वीकार करते हैं ।

---

1. कविरेतदनुतिष्ठेद्गुदाशयम्।।

-आ०ध०सू० 1/8/22/5

2. सर्वभूतेषु यो नित्यो विपश्चिदमृतो ध्रुव.।अनङ्.गोऽशब्दोऽशरीरोऽस्पर्शश्च-महाञ्छुचि.।।

-वही 1/8/22/7

3. वृ०उ० 4/5/7

सूत्रकार का कथन है कि आत्मा सृष्टि का मूल कारण है नित्य है विकार रहित है और उसी परमात्मा से ही शरीर उत्पन्न होते हैं[1]।

इसी लक्षण को उपनिषदों में आत्मा के तटस्थ लक्षण के रूप में अनेकधा उद्घृ किया गया है[2]।

अत. इस सन्दर्भ में इस तथ्य का स्पष्टत: उल्लेख किया जा सकता है कि उपनिषदों में अनुमन्य आत्मतत्त्व या ब्रह् तत्त्व के जिन दो लक्षणों का उल्लेख मिलता है उन्हीं का अक्षरश समर्थन सूत्रकार भी करते हैं । ये दोनों लक्षण स्वरूप लक्षण एवं तटस्थ लक्षण के रूप में कहे गये हैं । सूत्रकार के व्दारा उद्घृत आत्मतत्त्व का स्वरूप लक्षण हम उसे मानते हैं, जिन सूत्रों में आत्मा को ज्ञानरूप, नित्य, अमर इत्यादि पदों से वोधित किया गया है और तटस्थ लक्षण उपर्युक्त कथन के व्दारा लिखे जा चुके हैं जिसमें आत्मतत्त्व से ही समग्र शरीरों की उत्पत्ति का कथन हुआ है ।

---

1. आ०ध०सू०   1/8/23/2

2. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ।।

-तै० उ० 3/1

आत्मतत्त्व के ज्ञान का महत्त्व - सूत्रकार ने आत्मा के ज्ञान के महत्त्व का मुक्तकण्ठ से गुणगान किया है । आपस्तम्ब का मत है कि जो व्यक्ति शरीर में विद्यमान और चचल प्राण में अवस्थित उस अचल आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है,वह अमर हो जाता है[1]। अन्यत्र आत्मज्ञान के महत्त्व का उल्लेख करते हुए सूत्रकार का कथन है कि जो व्यक्ति आत्मा का सतत् चिन्तन करता है,सर्वत्र और सभी अवस्थाओं में उसके अनुकूल आचरण करता है तथा संशयरहित होकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मा का दर्शन करता है, वह परलोक में समस्त दु:खों से मुक्त होकर निरन्तर सुख का अनुभव करता है[2]।

स्वर्ग एवं मोक्ष की अवधारणा - इसी सन्दर्भ में सूत्रकार का कथन है कि जो सभी प्राणियों को अपनी आत्मा में तथा आत्मा का दर्शन समग्र सृष्टि में करता है व ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मविद् स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित और देदीप्यमान होता है[3]।

---

1. पू प्राणिन. सर्व एव गुहाशयस्या हन्यमानस्य विकल्मषस्या चल चलनिकेतं ये नुतिष्ठन्ति ते मृता ।।

   - आ०ध०सू० 1/8/22/4

2. तं यो नुतिष्ठेत्सर्वत्र प्राध्व चा स्य सदा चरेत्। दुर्दर्शं निपुणं युक्तो य पश्येत्स मोदेत विष्टपे ।।

   - वही 1/8/22/8

3. आत्मन् पशयन् सर्वभूतानि न मुह्येच्चिन्तयन्कवि:।आत्मानं चैव सर्वत्र य पश्यत्स वै ब्रह्मा वाकृपष्ठे विराजाति।।

   - वही 1/8/23/1

सूत्रकार के उक्त कथन से यह शंका उठनी स्वाभाविक है कि क्या आत्मा का दर्शन करने से जिस अमरता का उल्लेख पूर्व में सूत्रकार ने किया है और सर्वत्र आत्मदर्शन करने से ब्रह्मविद स्वर्ग लोक में देदीप्यमान होता है,इस प्रकृत कथन से अमरता और स्वर्गलोक की अवधारणा के विषय में सूत्रकार को क्या कोई भेद अभिप्रेत है ?

समीक्षा.-

इस सन्दर्भ में यही मानना उचित होगा कि जब सूत्रकार ने आत्मा के विषय में उन्हीं समग्र मान्यताओं को स्वीकार किया है जो उपनिषदों में वर्णित हैं तो स्वर्गलोक का उल्लेख और अमरता की स्थिति के उल्लेख में किसी भी तरह का द्वैत अथवा इन दोनो पदों द्वारा उल्लिखित अवस्था के विषय में सशय करना उचित प्रतीत नही होता है क्योंकि सूत्रकार इस तथ्य से भलीभांति अवबुध्द हैं कि स्वर्ग लोक की स्थिति का जो कथन श्रुतियों में पर्याप्त रूप से पाया जाता है,वह पुण्यकर्म जन्म है और पुण्यकर्म के प्रभाव पर्यन्त ही स्वर्गलोक की कल्पना की जा सकती है । इसमें यह हेतु है कि जब स्वर्ग पुण्यकर्मों के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाली स्थिति है चाहे वे पुण्यकर्म स्वर्ग की कामना से किये गये यज्ञों से उत्पन्न हुए हो अथवा तप दानादि कर्मों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुये हो तो जब तक इनके प्रभाव की सत्ता रहेगी तभी तक स्वर्ग लोक की भी स्थिति सम्भव है,क्योंकि यह कार्यकारण अथवा जन्यजनकत्व की परम्परा लोक में भी देखने को मिलती है ।

गीता में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पुण्यकर्मों के क्षीण होने पर जीव स्वर्गलोक से पुन. मृत्युलोक में प्रविष्ट हो जाता है[1] समस्त उपनिषदों में अमरता की स्थिति को आत्मस्वरूप का बोध कहा गया है। इसे ही अपवर्ग, अमृतत्त्व तथा मोक्ष कहा गया है और इस स्थिति की परिकल्पना नित्य, आत्मतत्त्व के ज्ञान के परिणामस्वरूप की गयी है ।

अत. अमरता में नित्य आत्मतत्त्व का ज्ञान हेतु है फलस्वरूप अमरता त्रिकाला वाधित एवं नित्य अवस्था का वाचक है और स्वर्गलोक अनित्य-कर्म जन्य है । दोनों में भेद स्पष्ट है ।

परन्तु सूत्रकार के व्दारा किये गये वर्णन मे स्वर्गलोक के सुख का कथन तथा अमरता की स्थिति का कथन एक ही अर्थ में हुआ है और वह अर्थ मोक्ष या मुक्ति है । इस अवस्था को भारतीय दर्शन के अन्तर्गत अनेक पदों से अभिहित किया गया है- सांख्य योग एवं जैन दार्शनिक सम्प्रदाय में इसको कैवल्य कहा गया है ।

वैशेषिक में इस अवस्था को अपवर्ग के नाम से समझा जाता है।

वेदान्त में इस अवस्था को मोक्ष या मुक्ति के रूप में अनेकशः कहा गया है। बौध्द दर्शन इस अवस्था को निर्वाण के नाम से अभिहित किया है। संक्षेप में ये समस्त पद चाहे जिस सम्प्रदाय के व्दारा अधिग्रहीत किये गये हैं अन्ततः इन सभी पदों का मन्तव्य एक ऐसी अवस्था से है, जिसको प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति या साधक पुनः इस जागतिक दुःख से रहित हो जाता है। इसी स्थिति को सूत्रकार स्वीकार करते हैं और अपने ग्रन्थ में इसी का उल्लेख करते हैं [1]। अतः यहाँ स्वर्गलोक या अमृतत्त्व की स्थिति में भ्रम करना कथमपि न्यायसंगत नहीं है। प्रमाण के रूप में सूत्रकार के इस कथन को उद्धृत किया जा सकता है- जहाँ वह कहते हैं कि प्राणियों को जलाने वाले अर्थात्- समस्त प्राणियों को दुःखी करने वाले काम क्रोधादि दोषों को नष्ट करके पण्डित अर्थात् ब्रह्मविद् क्षेम को प्राप्त करता है [2], यहाँ स्पष्ट है कि क्षेम आत्मबोध के व्दारा प्राप्य नित्य अवस्था है। हरदत्त ने क्षेम शब्द का सुस्पष्ट अर्थ मोक्ष किया है [3] जो समस्त दुःखमय रहित अवस्था है।

---

1. आत्मन् पश्यन् सर्वभूतानि न मुह्येच्चिन्तयन्कवि। आत्मानं चैव सर्वत्र य पश्यत्स वै ब्रह्मा नाकपृष्ठे विराजति ।।

-आ०ध०सू० 1/8/23/1

2. दोषाणां तु निर्घातो योगमूल इह जीविते। निर्हृत्य भूतदाहीयान् क्षेम गच्छति [illegible]:।।

-वही 1/8/23/2

3. क्षेमं अभयं मोक्षम् अभयं वै जनक प्राप्तो सीति बृहदारण्यकम्।

सूत्र 1/8/23/3 पर हरदत्त की टिप्पणी

मोक्ष का स्वरूप:- मोक्ष के स्वरूप का उल्लेख करते हुए सूत्रकार ने अपना यह अभिमत व्यक्त किया है कि जो व्यक्ति निरन्तर आत्मा का चिन्तन करता है सदैव सभी अवस्थाओं में आत्ममय विचार रखता है और तर्क वितर्कों के व्दारा सुनिश्चित रूप से,आत्मतत्त्व के स्वरूप के विषय मे निर्भ्रान्त होकर अर्थात् आत्मतत्त्व के स्वरूप के विषय में उसे किसी भी तरह की शंका नहीं उठती, उसकी सभी जिज्ञासायें समाप्त हो जाती हैं या आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में उठने वाले सभी प्रश्नो का समाधान हो जाता है । ऐसी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त करके साधक परमलोक में सभी दु.खों से मुक्त होकर निरन्तर सुख का अनुभव करता है[1]। श्रुतियो से उद्धृत इस कारिका मे सूत्रकार का मोक्ष के विषय में यही सुस्पष्ट मत प्राप्त होता है ।

आचार्य शङ्कर ने अपने भाष्य मे इस कथन को और भी सुस्पष्ट करते हुए उक्त कारिका की प्रतिपद व्याख्या की है जिसके अन्तर्गत उन्होने अपना मत व्यक्त किया है कि अविद्या के कारण जीवबध्द होता है , संसार को ही सब कुछ मानकर उसमे आचरण करता है और आत्मतत्त्व के यथार्थ ज्ञान या अनुभव से अनभिज्ञ रहता है किन्तु आत्मतत्त्व के विषय मे जिज्ञासा होने पर चिन्तन

---

1. आ०ध०सू० 1/8/22/8

करते- करते इस सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मतत्त्व का दर्शन करने में सक्षम हो जाता है। अन्तत अध्यात्म शास्त्र के सतत्चिन्तन् से समग्र उठने वाले सभी तर्कों का समाधान करके मैं ही आत्मतत्त्व हूँ ऐसा अनुभव करके आनन्दित होता है और यह आनन्द सार्वकालिक होता है[1]।

मोक्ष की स्थिति का वर्णन करते हुए सूत्रकार का यही मत है कि आत्मतत्त्व का ज्ञान ही मोक्ष है, यह आत्मतत्त्व का ज्ञान किस स्वरूप का है इस विषय में स्पष्ट करते हुए सूत्रकार का मत है कि निरन्तर आत्मतत्त्व का चिन्तन करता हुआ विव्दान् अर्थात् आत्मज्ञानी आत्मतत्त्व में समग्र ब्राह्मण को देखता हुआ कभी मोहित नही होता अर्थात् उसे आत्मज्ञान हो जाने पर पुन कभी किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं होता। कहने का तात्पर्य यह है कि सदैव आत्मानुभव होना ही अथवा जीव और आत्मतत्त्व का एकाकार हो जाना ही मोक्ष का स्वरूप है। इसका भाष्य करते हुए शड्.कराचार्य ने इसी कथन को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि आत्मा में एकत्व दर्शन हो जाने पर पुन· अज्ञान उत्पन्न नही होता[2] श्रुतियों को उद्घृत करते हुए इस तथ्य की और भी पुष्टि की है[3]। वृहदारण्यक उपनिषद् में भी मोक्ष के स्वरूप का कथन करते हुए, अविद्या

---

1. अहमात्मेति, समोदेत एवं दृष्ट्वा हर्षमानन्द लक्षणं प्राप्नुयात्।।

-आ०ध०सू० 1/8/22/8 पर शाड्.करभाष्य

2. न ह्यात्मैकत्वदर्शिनो मोहावतार।।

-वही 1/8/23/1 पर शाड्.कर भाष्य

विनाश को ही मोक्ष कहा है एवं जिस अवस्था को प्राप्त होकर पुन: इस जन्म और मृत्यु के बन्धन से सदा के लिए मुक्ति मिल जाती है ।

इस प्रकार हम देखते है कि सूत्रकार ने उपनिषदों में वर्णित मोक्ष के स्वरूप को ही अंगीकार किया है । इस सन्दर्भ में सूत्रकार ने अपना कोई नया विचार प्रस्तुत नही किया है, न ही उसके स्वरूप में किसी तरह की विप्रतिपत्ति नही की । शाड्.कर भाष्य के अनुशीलन से इस मत ही हम और भी पुष्टि कर सकते है कि यदि सूत्रकार को आत्मा के स्वरूप में अथवा मोक्ष के स्वरूप में कुछ अन्य अभिप्रेत होता तो शड्.कराचार्य की तीक्ष्ण तर्क शक्ति व्दारा अवश्य ही विदीर्ण किया गया होता किन्तु उपनिषद भाष्यों की ही भांति अव्दैतमत की प्रतिष्ठापना करते हुए आचार्य ने सूत्रकार के अभिमत को भलीभांति व्याख्यात् किया है ।

मोक्ष प्राप्ति के उपाय:- आत्मतत्त्व के ज्ञान या मोक्ष की प्राप्ति के लिए सूत्रकार ने आध्यात्मिक योग का उल्लेख किया है । अध्यात्म पटल को प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम सूत्रकार ने इसी आध्यात्मिक योग का उपदेश किया है, जिसके व्दारा मुमुक्षु इन्द्रियों की विषयों के प्रति आसक्ति अथवा विषयों के प्रति इन्द्रियों की उन्मुखता को परावर्तित करके आत्मतत्त्व में एकनिष्ठ करता है[1]। इस उल्लेख में

---

1. आ०ध०सू० 1/8/22/1

आध्यात्मिक योग का क्या स्वरूप होना चाहिए ? उसके अनुपालन की पध्दति क्या है ? कौन- कौन से इसके अंग हैं ? क्या पातन्जलि योग आपस्तम्ब के आध्यात्मिक योग से अभिन्न है अथवा भगवान कृष्ण व्दारा उपदिष्ट गीता का योग है या गीता में कहे गये योग के विभिन्न स्वरूपों कर्मयोग,ज्ञानयोग ,भक्तियोग में से कोई एक है ? इस तरह के अनेक प्रश्न उठाये जा सकते हैं । सूत्रकार का सूत्र शैली में वर्णन उक्त आशंकाओं का उत्प्रेरक है ।

आध्यात्मिक योग के सन्दर्भ में उक्त जितनी भी शंकायें हैं उनका उत्तर शङ्.कराचार्य के मत के आधार पर दिया जा सकता है- शङ्.कर के अनुसार वाह्य जगत से इन्द्रियों को पराङ्.मुख करके तथा क्रोध,मोह इत्यादि दोषों से रहित होकर अर्थात् चित्त के वाह्य निमित्तों के प्रति अनपेक्ष हो जाना एवं आत्मतत्त्व के विषय में सर्वथा शंकारहित होना ही आध्यात्मिक योग है ।

अत: शङ्.कराचार्य को ही इस विषय में प्रमाण मानना चाहिए। पातञ्जलि योग के विषय में उठायी गयी शङ्.का का निराकरण तो कालक्रम के आधार पर ही हो जाता है क्योंकि सूत्रकार आपस्तम्ब ,पातञ्जलि से पर्याप्त पूर्ववर्ती हैं । अत: यह मान लेना कि सूत्रकार का प्रभाव पतञ्जलि पर भले ही पड गया हो , पातञ्जलि योगशास्त्र का प्रभाव उक्त आध्यात्मिक योग पर पड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

इस प्रकार आध्यात्मिक योग के स्वरूप के विषय में सूत्रकार का यह कथन कि चित्त की वाह्य विषयों के प्रति होने वाली प्रवृत्ति को शून्य करके आत्मा के प्रति सतत् चिन्तन ही आध्यात्मिक योग है , तर्कसगत एवं समीचीन है। अब यहां प्रश्न उठता है कि चित्त को वाह्य विषयों से किस प्रकार पराङ्.मुख किया जाय । इसके उपाय के स्वरूप में सूत्रकार का कथन है कि क्रोधहीनता, हर्ष का अभाव, रोष न करना, लोभ का न होना, मोह का अभाव, दम्भ रहित होना, द्रोह न करना, सत्यसम्भाषण, आहार विहार में सयम, प्राणि मात्र के प्रति प्रेत, आत्म-चिन्तन के प्रति मन को समाहित करना, विश्वआत्मा प्राप्ति में सहायक है । क्योंकि इन समग्र दोषों में प्रवृत्त होकर जीव निरन्तर सासारिक कर्मो में विवेक-रहित होकर प्रवृत्त होता रहता है । अनेक उचित अनुचित कामनाओं को करके उसकी प्राप्ति हेतु विवेकरहित आचरणकर्त्ता है । फलत. कामनाओं की प्राप्ति में हर्षातिरेक अप्राप्ति में दु खातिरेक जन्म सभी प्रवृत्तियां होती रहती हैं ।

परिणामस्वरूप जीव इसी अज्ञान में सतत् निरत रहते हुए जन्म और मृत्यु के महादु:ख में भटकता रहता है ।

इस प्रकार आध्यात्मिक योग के स्वरूप पर विचार करते हुए और उसकी प्राप्ति के मार्ग में आने वाली वाधाओं का उल्लेख करते हुए सूत्रकार ने

जो अपना अभिमत व्यक्त किया है । उससे यही सुस्पष्ट है कि वेदान्त के अन्तर्गत आत्मतत्त्व के चिन्तन एव आत्मदर्शन के प्रति हो उपदेश हुआ है उसी स्वरूप को इन्होंने भी स्वीकार कर लिया । उपनिषदों में भी आत्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन का उल्लेख आया है[1]।

इसी सन्दर्भ में उक्त इन्द्रिय सम्बन्धी दोषों को नष्ट करने का भी कथन किया गया है ।

<u>आध्यात्मिक योग के साधन</u> - आध्यात्मिक योग के प्राप्ति के लिए किये जाने वाले कर्मों का पर्याप्त उल्लेख सूत्रकार ने सन्यासी के लिए उपदिष्ट कर्त्तव्यों के अन्तर्गत किया है । जिसका उल्लेख मैने शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत उसी प्रकरण में विस्तार से किया है ।

आध्यात्मिक योग का मुख्य लक्ष्य ज्ञान प्राप्त करना है क्योंकि ज्ञान से ही मानव जीवन के परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति होती है[2] ।

---

1. आत्मावाअरे दृष्टव्य: श्रोतव्य. मन्तव्यो निदिध्याशितव्यश्चेति।।

-बृ0उ0 2/4/5

2. बुध्दे क्षेमप्रापणम्।।

-आ0ध0सू0 2/9/21/14

अतएव अब यहां प्रश्न उठता है कि किन कर्त्तव्यों के व्दारा उक्त ज्ञान की प्राप्ति होगी इस सम्बन्ध में सूत्रकार का कथन है कि आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए- सत्य और असत्य का, सुख और दु ख का, वेदों का तथा लोक और परलोक का परित्याग करके व्यक्ति परमात्मा का ही चिन्तन करे[1]।

ज्ञान प्राप्ति के लिए सूत्रकार ने शम दम इत्यादि का उल्लेख किया है । इन्द्रियों को वश में करके क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य आदि सभी दोषों का परित्याग करके जितेन्द्रिय होकर परम साधक के रूप में सन्यासी होकर आत्म चिन्तन करना चाहिए । आत्म तत्व का श्रवण,मनन, निदिध्यासन करते-करते अन्तत: आत्मतत्व के वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाता है ।

कहने का तात्पर्य यह कि शम दम यक नियमादि के व्दारा साधक गीता में कहे हुए स्थितप्रज्ञ की अवस्थाबाला होकर सदैव आत्म चिन्तन करता है तो ज्ञान की वह पराकाष्ठा उसे प्राप्त हो जाती है जिसमें पहुंच कर पुन: अज्ञान की मायाजाल में नहीं फसता है । फलत: आत्मतत्व का अपरोक्ष अनुभव

---

1. सत्यानृते सुखदु :खे वेदानिमं लोकममु च परित्यज्या त्मानमन्विच्छेत्।।

-आ०ध०सू० 2/9/21/13

हो उठता है । शंकराचार्य ने अपने विचारो में मोक्ष के जिन साधनों को स्वीकार किये है उनका मूल सूत्रकार के ग्रन्थ में उपलब्ध है । यह मूल और विशेष कोई सिध्दान्त नहीं है अपितु उपनिषदों में वर्णित सिध्दान्तों पर आधारित ही हैं।

अत: एवं संक्षेप में दार्शनिक चिन्तन के इस अध्याय के अन्तर्गत सूत्रकार ने जिन विचारों को प्रस्तुत किया है उसका निष्कर्ष हम यही मानते हैं कि दार्शनिक विचार पूर्णतया उपनिषदों से प्रभावित हैं । सूत्रकार का अपना पृथक कोई सिध्दान्त विकसित होकर प्रकाश में नही आ सका है । दूसरे शब्दों में ग्रन्थ के अन्तर्गत उपनिषदों से भिन्न कोई अन्य मान्यता का उल्लेख नही हुआ है ।

सप्तम अध्याय

राजनीतिक एवं आर्थिक विचार

सप्तम् अध्याय

अति प्राचीन काल से ही धर्मशास्त्र के अन्तर्गत राजधर्म की चर्चा होती रही है क्योंकि संस्कृत साहित्य में धर्म शब्द का प्रयोग संकुचित अर्थ में नहीं किया गया है । धर्म शब्द "धृ" धातु से निर्मित्त है । धृ धातु का अर्थ धारणा करना है । अतएव किसी भी वस्तु की धारण करने की शक्ति को धर्म कहा जायेगा। धारण शक्ति का अभिप्राय वस्तु के उस गुणा से है जो वस्तु को अपने स्वरूप में स्थिर रखती है, जिसके न रहने पर वस्तु अपने स्वरूप से च्युत हो जाती है । यह ज्ञातव्य है कि मनुष्य बनाये रखने वाले गुण मानव धर्म कहे जायेगें, तथा मनुष्यों में जो व्यक्ति किसी विशेष प्रकार के उत्तरदायित्व से युक्त होगा उसका सामान्य धर्म भी उस साधारण से भिन्न होगा। धर्मसूत्र राजा और राज्य को उसके इसी धर्म के स्वरूप में चित्रित करती हैं तथा उसके इसी धर्म को निरूपित करने के लिये इन धर्मसूत्रों मे राजधर्म शब्द का प्रयोग किया है । राजा तथा उसके धर्म से सम्बन्धित नियमों को राजधर्म की संज्ञा प्रदान करके वर्णित करने का यही एक मात्र अभिप्राय है । इसलिये धर्मसूत्र धर्मप्रधान होते हुए भी राज धर्म के सिध्दान्तों का विस्तार के साथ उल्लेख करते है । परन्तु भिन्न- भिन्न दृष्टि -निक्षेप के अंतर के कारण इन धर्मसूत्रों में किसी मे अधिक विस्तार तथा किसी मे संकेत मात्र ही मिलता है । जहाँ तक आपस्तम्ब धर्मसूत्र का प्रश्न है, उसमे राजधर्म विषयक बातों का उल्लेख संक्षिप्त ढंग से किया गया है ।

धर्मग्रन्थ मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति बतलाते हैं । इस अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ तथा काम ये तीन साधन माने गये है । इन तीनों का अपना अलग महत्व होते हुए भी अन्योन्याश्रित स्वरूप है तथा मनुष्य के अन्य आनुषंगिक प्रयत्न चाहे वे इन तीनों में से किसी एक साधन के ऊपर आधारित हों अथवा इन तीनों पर ही आधारित हों उसके अंतिम लक्ष्य की सिद्धि में सहायक कहे जा सकते हैं । मनुष्यों के इन्हीं प्रयत्नों का परिणाम राज्य है । अत: राज्य भी चतुर्वर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए एक आवश्यक और महत्वपूर्ण साधन है । इस महत्व को दृष्टि में रख कर ही धर्मसूत्रों ने उसके विभिन्न अंगों के कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला है ।

राज्य के सबसे महत्वपूर्ण तत्व (1) स्वामी (2) शासन व्यवस्था (3) निश्चित भूमि एवं जनसंख्या माने गये । आपस्तम्ब को भी ये चारो तत्व विदित थे[1]।

<u>राजा</u>:- सूत्र युग मे राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का ही पता चलता है ।

---

1. क्षेमकृद्राजा यस्य विषये ग्रामे रण्ये वा तस्करभयं न विद्यते।।

-आ0ध0सू0 2/10/25/15

गुरुनमात्यांश्च नातिजीवेत्।।

-वही 2/10/25/10

राजा वंश परम्परानुसार होता था और राजपद वशानुगत था । सम्भवत:, राजा के किसी प्रकार के निर्वाचन से सूत्र लेखक अनभिज्ञ थे । आपस्तम्ब धर्मसूत्र भी इस सम्बन्ध में मौन है । उसमें केवल राजा के गुण, कर्त्तव्य और शक्ति के बारे में ही पता चलता है ।

ऋग्वेद में राजा को देव माना गया है[1]। यजुर्वेद में राजा को दिव सून: कहा गया है तथा साथ ही इसमें अनेक ऐसे प्रसंग है जिनके व्दारा राजा (राज्य) की दैवी उत्पत्ति के सिध्दान्त की स्थापना की गई है[2]। इसी प्रकार का उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है । तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार इन्द्र प्रजापति के व्दारा ही देवताओं के अधिपति बनाये गये[3]। मनुस्मृति, महाभारत, कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी राजा की दैवी उत्पत्ति सिध्दान्त का प्रतिपादन किया गया है । इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत के प्राचीन साहित्य में राजा के दैवी उत्पत्ति के सिध्दान्तों का प्रतिपादन किया गया था।

---

1. ऋ0 4/1/2

2. यजु0 21/9, 28/10, 30/10, 24/10

3. तै0ब्रा0 10/2

जहाँ तक आपस्तम्ब धर्मसूत्र का प्रश्न है वह राजा की दैवी उत्पत्ति के सम्बन्ध में मूक है किन्तु आपस्तम्ब का यह कहना कि देवताओं तथा राजा के विषय में कोई निन्दापरक वचन न कहें[1] से यह स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब राजा के दैवी स्वरूप और दैवतुल्यता को स्वीकार करते हैं। यही बात दूसरे ढंग से गौतम (11/32) एवं मनु० 7/4-5 , मत्स्य०पु० 226/9-12 में भी कही गयी है।

सामान्य रूप से प्राचीन भारत का राजतन्त्र वंशानुक्रम पर आधारित था तथा ज्येष्ठ पुत्र को ही गद्दी मिलती थी। शतपथ ब्राह्मण (12/9/3/1 एवं 3) ने दस पीढ़ियों तक चले आते हुए राजत्व का उल्लेख किया है। ऋग्वेद (1/5/6, 3/50/3) ने इन्द्र के ज्येष्ठ्य पद की ओर संकेत किया है। आपस्तम्ब ने ज्येष्ठ पुत्र के महत्त्व का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया है। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकालना असंगत नहीं होगा कि आपस्तम्ब भी ज्येष्ठ पुत्र के राज्यारोहण के पक्षधर थे।

---

1. परुषं चोभयोर्देवतानां राज्ञश्च ॥

-आ०ध०सू० 1/11/31/5

प्राचीन भारत के राजनीतिक ग्रन्थों में राजा के गुणों तथा उनमें अपेक्षित योग्यता को विशेष प्रश्रय दिया गया है । ब्राह्मण ग्रन्थों में इस विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है । महाभारत में भी अनेक स्थलों पर राजा के अभीष्ट गुणों का उल्लेख मिलता है । शान्तिपर्व §70§ ने राजा के 36 गुणों की सूचना दी है यथा- उसे परुष वचन नहीं बोलना चाहिए, उसे धर्मनिष्ठ होना चाहिए ,दुष्टता से दूर होना चाहिए,हठी न हो, प्रिय वचन बोले आदि, कामन्दक §1/21-22§, मानसोल्लास §2/1/2-7§,अग्निपुराण §239/2-5§ ने भी गुणों का वर्णन किया है । जहां तक आपस्तम्ब का प्रश्न है वे इस सम्बन्ध में मौन हैं ।

सभी ग्रन्थकारों ने स्वीकार किया है कि राजा का प्रधान कर्त्तव्य है प्रजा रक्षण । गौतम[1] का कहना है कि राजा का विशिष्ट उत्तरदायित्व है सबको सुरक्षा प्रदान करना, वर्णाश्रम को सुरक्षित रखना,उचित दंड प्रदान करना । आपस्तम्ब धर्मसूत्र[2] ने भी राजा को प्रजा रक्षार्थ युध्द करने के

---

1. गौ०ध०सू० 10/7-8, 11/9-10

2. ब्राह्मणस्वान्यपजिषगीमाणो राजा यो हन्यते तमाहुरात्मयूपो यज्ञोऽनन्तदक्षिण इति। एतेनाऽन्ये शूरा व्याख्याता: प्रयोजने युध्यमानास्तनुत्यज:।।

-आ० ध०सू० 2/10/26/2-3

लिये प्रेरित किया है एवं आपस्तम्ब ने अपेक्षा की है कि उक्त कर्त्तव्य के अतिरिक्त राजा को चाहिए कि वह अतिथियों विशेषकर वेदज्ञाताओं की सेवा शुश्रुषा करे[1]। अत्यधिक भोग विलास का जीवन व्यतीत न करे[2] तथा प्रजा की सेवा में तत्पर रहे एवं प्रजा की अभाव के कारण भूख, शीत, ताप आदि से रक्षा करे अर्थात् प्रजा की उन्नति एवं कल्याण मे विशेष ध्यान दे[3]।

उक्त के अतिरिक्त सूत्रकार ने राजा से अपेक्षा की है कि वह प्रजा को चोरों के भय से मुक्त करे[4]।

---

1. तेषां यथागुणमावसथा: शय्या न्नपानं च विदेयम्।।

   -आ०ध०सू० 2/10/25/9

2. गुरुनमात्यांश्च नातिजीवेत्।।

   - वही 2/10/25/10

3. न चास्य विषये क्षुधा रोगेण हिमातपाभ्यां वा वसीदेदभावाद्बुध्दिपूर्व वा कश्चित्।।

   - वही 2/10/25/11

4. क्षेमकृद्राजा यस्य विषये ग्रामेऽरण्ये वा तस्करभयं न विद्यते ।।

   - वही 2/10/25/15

   ग्रामेषु नगरेषु चाऽऽर्याञ्छुचीन् सत्यशीलान् प्रजागुप्तये निदध्यात्।।

   -वही 2/10/26/4

अतएव आपस्तम्ब व्दारा वर्णित कर्त्तव्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि राजा को वेद का अध्ययन करने वाला, वृध्दसेवी, योग्य मन्त्रियों की नियुक्ति करने वाला, उचित दंड प्रदान करने वाला होना चाहिए[1]। इतना ही नहीं आपस्तम्ब ने नैतिक नियमों की रक्षा तथा धर्म का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देना राजा का परम कर्त्तव्य माना है। आपस्तम्ब के अनुसार राजा ऐसे पुरुष को दण्ड दे जो युवती स्त्रियों पर दुर्भावनापूर्ण दृष्टि डालता है एवं राजा को अधिकार दिया है कि वह व्यभिचार में प्रवृत्त होने वाले पुरुष की प्रजननेन्द्रिय को कटवा दे[2]।

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने व्यभिचारी व्दारा दूषित की गयी कन्या का भरण पोषण भी राजा का कर्त्तव्य माना है[3]।

---

1. आ०ध०सू० 2/10/26/4, 2/5/10/7, 2/5/10/3

2. सन्निपाते वृत्ते शिश्नच्छेदनं सवृषणस्य ।।

-आ०ध०सू० 2/10/26/20

3. आ०ध०सू० 2/10/26/24

आपस्तम्ब ने ऐसे राजा को कल्याणकारी माना है जिस राजा के राज्य में ग्राम में अथवा वन में चोरों का भय नहीं होता [1]।

अमात्य :- राज्य के सात अंगों में दूसरा अमात्य है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र[2] मे अमात्य शब्द मन्त्री के अर्थ में प्रयुक्त हुआ । धर्मसूत्र का कथन है कि राजा को अपने गुरुओं एवं अमात्यों से बढ कर सुखपूर्वक नही जीना या रहना चाहिए[3]। अमात्य शब्द ऋग्वेद[4] में भी आया है किन्तु वहा यह विशेषण है जिसका अर्थ है "स्वयं हमारा" या "हमारे घर में रहने वाला" बौधायन धर्मसूत्र(1/12/7) में अमात्य शब्द घर में पुरुष सम्बन्धियों के पास के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है परन्तु

---

1. आ०ध०सू० 2/10/25/15

2. "अमात्या मन्त्रिण:" आ०ध०सू० 2/10/25/10 पर हरदत्त की टिप्पणी

3. गुरुनमात्यांश्च नातिजीवेत्।।

   -वही 2/10/25/10

4. ऋ० 7/15/3

आपस्तम्ब ने जो अमात्य शब्द मन्त्री के अर्थ मे प्रयुक्त किया है वह वस्तुत लोक प्रचलित अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है । अमरकोष [2] में आया है कि अमात्य जो धी सचिव है मन्त्री कहलाता है । रामायण [1/7/3] मे भी सुमन्त्र को अमात्य एवं सर्वश्रेष्ठ मन्त्री कहा गया है ।

आपस्तम्ब ने अमात्य का नामोल्लेख के अतिरिक्त उसके अधिकार एवं कर्तव्य के सम्बन्ध मे कुछ उल्लेख नहीं किया है ।

पुरोहित:- आपस्तम्ब.धर्मसूत्र में पुरोहित के गुणों की तालिका उपस्थित की गयी है । पुरोहित का पद ऋग्वेद काल से अस्तित्व मे था । वह राजा के आत्मा का अर्ध भाग समझा जाता था। महाभारत शांतिपर्व [74] का वर्णन पुरोहित की उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि जो राजा पुरोहित विहीन होता है वह अपवित्र के समान है । इसलिए राजा को चाहिएकि धर्म को अच्छी तरह समझने वाले विव्दान् को नियुक्त करें । यदि वह अपनी उन्नति चाहता है,तो ऐसे निस्वार्थी और विव्दान् ब्राह्मण को जो भी भूमि वह विजय मे प्राप्त करता है, उसे सौप दे । अकेले राजा के लिये यह सम्भव नहीं कि वह अपनी शक्ति का धर्मानुकूल प्रयोग कर सके राजशक्ति के निरपेक्ष भाव से प्रयुक्त होने के लिए यह आवश्यक है कि कोई निरपेक्ष व्यक्ति राजशक्ति

का मार्ग प्रदर्शन करें, इसीलिए निरपेक्ष पुरोहित राजा के प्रमुख सलाहकारों में आता है ।

आपस्तम्ब ने पुरोहित को धर्म एवं अर्थ मे पारंगत होना आवश्यक माना है[1] । कामन्दक[2] के अनुसार पुरोहित को वेदों, इतिहास, धर्मशास्त्र का दण्डनीति, ज्योतिष एवं भविष्यवाणी शास्त्र तथा अथर्ववेद में पाये जाने वाले शान्तिक संस्कारों मे पारंगत होना चाहिए, उच्चकुल का होना चाहिए, शास्त्रों में वर्णित विधाओं एवं शुभ कर्मों में प्रवीण एवं तप: पूत हो।

आपस्तम्ब[3] ने पुरोहित को नियम का अतिक्रमण करने वाले ब्राह्मणों के लिये प्रायश्चित्त व्यवस्था देने का अधिकार दिया है ।

सभा-समिति:- आपस्तम्ब के समय तक पूर्वप्रथित दो प्रकार की राज्य संस्थायें विद्यमान थीं- सभा और समिति[4]। इनको नरिष्ठा भी कहा जाता था। प्रतीत होता है कि सभा तो राजसभा या संसद के तुल्य थी और समिति पौर सदस्यों

---

1. राजा पुरोहितं धर्मार्थकुशलम् ।।

   -आ०ध०सू० 2/5/10/15

2. का० नि० 4/32

3. आ०ध०सू० 2/5/10/16

4. सभा च या समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने (अथर्व 7/2/1)
   विद्म ते सभे नाम नरिष्ठा नाम वा असि (अथर्व 7/12/2)

की लोकसभा थी जो राजकाज मे राजा की सहायता करती थी ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में सभा, सभाभवन के लिये प्रयुक्त हुआ है[1]। द्यूत खेलने का भवन भी आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे "सभा" कहा गया है[2] तथा आपस्तम्ब ने छात्रों एवं स्नातकों का इन स्थलों पर प्रवेश वर्जित माना है[3] । इससे यह स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब के समय में सभा का पूर्व स्वरूप वर्तमान नहीं रहा एवं उसकी कोई राजनैतिक उपयोगिता न रह गयी ।

---

1. दक्षिणेन पुरं सभा दक्षिणोदग्द्वारा यथोभयं सन्दृश्येत बहिरन्तरं चेति ।।

-आ०ध०सू० 2/10/25/5

सभाया मध्येऽधिदेवनमुध्दत्या वोक्ष्या क्षान्निवपेद्युग्मान् वैभीत कान् यथार्थान्* ।

आर्या: शुचयः सत्यशीला दीवितारस्स्यु:।।

-वही 2/10/25/12-13

2. सभा: समाजांश्चाऽगन्ता ।।

-वही 1/1/3/12

<u>न्याय व्यवस्था</u>.- प्राचीन काल से ही भारत में न्याय की प्रधानता रही है । समाज मे काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि जो मनुष्य के प्रबल शत्रु है उनके वशीभूत होकर, मनुष्य अपने धर्म का उल्लंघन कर अन्य व्यक्तियों को हानि पहुंचाते है जिससे समाज में कलह तथा व्देष भावना की वृध्दि होती है । उसी कलह को रोकने के लिये प्राचीन काल में न्याय व्यवस्था का विधान किया गया था।

धर्मसूत्रकारों ने अपने आपको विधि-निर्माता [illegible] नहीं किया अपितु उन्होंने पवित्र ग्रन्थों,आचारों ,व्यक्तियों के कार्यों आदि पर आधारित धर्म की व्याख्या प्रस्तुत की है । गौतम धर्मसूत्र मे कहा गया है कि वेद तथा उन वेदों के ज्ञाताओं की स्मृति तथा उनके धर्मानुकूल आचरण धर्म का मूल है[1]।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र[2] में धर्म को जानने वाले वेद का मर्म समझने वाले व्यक्तियों का मत ही वेद का प्रमाण माना गया है । इससे यह स्पष्ट होता है कि धर्मसूत्रों में जो कुछ कहा गया है उसका आधार वेद ही है ।

---

1. वेदो धर्ममूलम्। तव्दिदां च स्मृतिशीले।।

-गौ०ध०सू० 1/1-2

2. धर्मज्ञसमय: प्रमाणम् ।।

-आ०ध०सू० 1/1/1/2

इसी प्रकार धार्मिक ग्रन्थों, परम्परा तथा आचरण भी न्याय के स्रोत माने गये है । गौतम धर्मसूत्र के अनुसार[1] राजा के व्यवहार के साधन है वेद धर्मशास्त्र, वेदांग, उपवेद और पुराण वेदादि के अनुकूल देश, जाति, कुल के धर्म प्रमाण है एवं अपने अपने वर्ग कृषक व्यापारी, गोपालक, महाजन और शिल्पी भी प्रमाण होते है अतएव राजा को चाहिए कि उन वर्गो के अधिकार के अनुकूल नियमों को समझ कर धर्म की व्यवस्था करे ।

आपस्तम्ब ने भी देश धर्म एवं कुल धर्म के आधार पर धर्म की व्याख्या का निर्देश दिया है[2]।

दण्ड व्यवस्था:-

अपराध की प्रकृति के आधार पर दण्ड की व्यवस्था थी। निष्पक्ष न्याय करना एवं अपराधी को दण्ड देना राजा का कार्य था[3] । यदि राजा किसी अपराधी को दण्ड नहीं देता तो आपस्तम्ब के अनुसार वह पाप उसी को मिलता था[4]।

---

1. गौ०ध०सू० 11/19-21
2. आ०ध०सू० 2/6/15/1
3. वही 2/10/26/4, 1/5/10/7, 1/5/11/3
4. वही 2/11/28/1

कार्याधिक्य के कारण राजा अन्य निर्णायकों को नियुक्त कर सकता था। इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि अर्थी प्रत्यर्थी के विवाद में विद्या से सम्पन्न, कुलीन, वृध्द ,बुध्दिमान तथा धर्मशास्त्र में सावधान पुरुष निर्णायक होवें।[1]

न्यायालय में सम्भवत. उस युग में भी असत्य वक्तव्य देने वालों की कमी नही रही होगी। यही कारण है कि जिन लोगों की सत्यवादिता के सम्बन्ध में समाज को सन्देह नहीं होता था, उन्हीं को साक्षी बनने के योग्य माना जाता था । साक्षी किस प्रकार के हों इसका उल्लेख आपस्तम्ब ने नहीं किया है । साक्षी किस प्रकार के होने चाहिए इस सम्बन्ध में साधारण नियम इस प्रकार मिलते है कि- वे गृहस्थ हों, पुत्रवान् हो, कुल परम्परा से वहां के वासी हो धनी हो चरित्रवान हो[2] एवं कौटिल्य 3/11 कात्यायन [348] ने व्यवस्था दी है कि सामान्यतः साक्षी को पक्ष के वर्ण या जाति का होना चाहिए , स्त्रियों के विवाद में स्त्रियों को ही साक्ष्य देना चाहिए अन्त्यजों के विवाद में अन्त्यजों को साक्ष्य देना चाहिए ।

---

1. विवादे विद्याभिजनसम्पन्ना वृध्दा मेधाविनो धर्मेष्वविनिपातिन:।।

-आ0ध0सू0 2/11/29/5

2. मनु0 स्मृ0 8/61-63, गौ0ध0सू0 13/2

गौतम [9/21] का कथन है कि खेतिहरों, व्यापारियों, चरवाहों, महाजनों, शिल्पकारों के वर्गों के सदस्यों के बीच विवादों में उसी वृत्ति वाले सदस्य होते है एवं वे ही मध्यस्थता का कार्य कर सकते हैं ।

कुछ कोटियों के व्यक्ति साक्षी बनने के योग्य नहीं माने जाते थे - अर्थ से सम्बन्धित लोग मित्र, साथी, जिसने पहले झूठी गवाही दी हो पापी, दास, छिद्रान्वेषी, अधार्मिक, अल्पवयस्क, शराबी, पागल, असावधान व्यक्ति, दुःखित व्यक्ति, नपुंसक, अभिनेता, नास्तिक, व्रात्य, पूर्व शत्रु, गुप्तचर, नर्तक, कीनाश, उपपातकी आदि[1] ।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि साक्षी के वक्तव्य देने के पहले उसकी योग्यता विचारणीय होती थी तथा साक्षी सभी पक्षों को स्वीकृत हो ।

आपस्तम्ब के अनुसार इस प्रकार सबके व्दारा स्वीकृत साक्षी को अपना वक्तव्य किसी पवित्र दिन प्रात.काल, जलती हुई अग्नि के समक्ष, जल के

---

1. कौ0 अर्थ0 3/11 , मनु0 स्मृ0 8/64,67 , कात्यायन 360-364

निकट राजा या न्यायाधीश की उपस्थिति मे और सत्यासत्य का परिणाम सुन कर देना पड़ता था[1]।

साक्ष्य ग्रहण के उपरान्त मुख्य न्यायाधीश एवं सभ्य लोग साक्षियों पर विचार विमर्श करते हैं। न्यायालय को इसका पता चलाना पड़ता है कि किन साक्षियों पर विश्वास करना चाहिए और कौन से साक्षी कूट या कपटी है। आपस्तम्ब ने निर्देश दिया है कि यदि साक्षी असत्य भाषण करे तो उसे दण्डित किया जाय तथा कहा है कि यदि साक्षी असत्य भाषण करता है तो उसे मृत्यु के बाद नरक प्राप्त होता है तथा सत्य भाषण करने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है और सभी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं[2]। इतना होने पर भी आपस्तम्ब को विश्वास न था कि साक्षी सत्य बोलेगा ही अतएव उन्होंने

---

1. पुण्याहे प्रातरग्नाविध्देऽपामन्ते राजवत्युभयतस्समाख्यायूय सर्वानुमते मुख्यस्सत्यं प्रश्नं ब्रूयात् ।।

   -आ०ध०सू० 2/11/29/7

2. अनृते राजा दण्डं प्रणयेत । नरकश्चात्राधिकः साम्पराये । सत्ये स्वर्गस्सर्वभूतप्रशंसा च ।।

   -वही 2/11/29/8-10

उन्होंने निर्णायकों को निर्देश दिया कि वे जो विषय सन्देहास्पद हो उन विषयों में अनुमान, दैव परीक्षण आदि साधनों से तथ्य का निर्धारण करें[1]। एक अन्य स्थान पर आपस्तम्ब ने कहा है कि दिव्य प्रमाण से एव साक्षियों से प्रश्न करके राजा को दण्ड देना चाहिए [2]।

अब यहां प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि दिव्य किसे कहते हैं ? स्मृतिकारों के अनुसार दिव्य उसे कहते हैं जिसमे दैवी शक्तियों के व्दारा सत्य का अन्वेषण किया जाय उदाहरणार्थ अग्नि में प्रवेश करने पर अग्नि यदि जलाती नहीं है तब अग्नि में प्रविष्ट होने वाले का कथन सत्य माना जाता है । दिव्य में दोनों पक्ष वादी तथा प्रतिवादी सम्मिलित रहते हैं, एक पक्ष दिव्य का आश्रय लेता है तथा दूसरा उसके निर्णय को मानने का वचन देता है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/11/29/7 के आधार पर दो प्रकार के दिव्यों का उल्लेख प्राप्त होता है । यथा अग्नि का दिव्य एवं जल का दिव्य ।

---

1. सन्देहे लिङ्गतो देवेनेति विचित्य ।।

- आ०ध०सू० 2/11/29/6

2. सुविचित विचित्या दैवप्रश्नेभ्यो राजा दण्डाय प्रतिपद्यत ।।

-वही 2/5/11/3

याज्ञ० §2/95§, विष्णु धर्मसूत्र §9/14§ एवं नारद 4/252 ने पांच प्रकार के दिव्य तथा तुला, अग्नि, जल, विष एवं कोश एवं वृहस्पति तथा पितामह ने नौ प्रकार के दिव्यों का उल्लेख किया है । प्रमुख दिव्यों का विवरण निम्नवत् है :-

तुला का दिव्य.- तुला परीक्षा में दण्ड के सिरों से रस्सी या श्रृंखला से बंधे हुए पलड़े लटकते थे एक प पलड़े पर शोध्य को बैठाकर उसे मिट्टी, ईटों तथा प्रस्तर खण्डो से तोला जाता था। फिर शोध्य को उतार दिया जाता था और उसके द्वारा तुला की इन शब्दों में प्रार्थना की जाती थी- हे तुले तुम सत्य की प्रतिष्ठा हो, देवताओं ने इसीलिए तुम्हारी रचना की है । सत्य की घोषणा करो । इस सन्देह से मुझे मुक्त करो माँ । यदि मैं पापी हूं तो मुझे नीचे ले जाओ । यदि मैं शुध्द हूं तो मुझे ऊपर ले जाओ । फिर वह दूसरी बार पलडे पर रखा जाता था । एक ज्योतिषी पाँच पलों की गणना करता था। उसकी दूसरी बार की तोल ले ली जाती है । यदि वह दूसरी बार पहली बार की तुलना में कम ठहरता है तो उसे निरपराधी घोषित कर दिया जाता है । किन्तु यदि वह ज्यों का त्यों अथवा कुछ भारी ठहरता है तो, अपराधी माना जाता है ।

<u>अग्नि का दिव्य:-</u> अग्नि परीक्षा में अग्नि वरुण वायु आदि के नाम पर 16 अंगुल व्यास के 9 वृत्त गोबर से बनाकर उस पर कुश रख दिये जाते हैं और प्रत्येक में शोध्य को अपना पाँव रखना पड़ता था फिर अग्नि में 108 बार घृत की आहुतियाँ दी जाती थी । एक लोहार जाति का व्यक्ति आठ अंगुल लम्बा और 50 पल भारी लोहे को अग्नि में इतना तप्त करता था कि उससे चिनगारि-याँ निकलने लगे फिर न्यायाधीश सेत में अश्वत्थ की सात ------याँ, चावल तथा दही को बाँधकर शोध्य के हाथों पर रख कर तपते लोहे के चमटे को रख देता था। उसे लेकर शोध्य पहले वृत्त से लेकर आठवें वृत्त तक मन्द गति से चलता था और नवें वृत्त वृत्त में उस लोहे को गिरा देता था। यदि शोध्य ऐसा करने में कोई हिचकिचाहट नहीं करता तथा उसका हाथ अक्षुण्य रहता तो वह निरपराधी घोषित हो जाता था यदि लोहखण्ड आठवें वृत्त तक पहुँचने से पूर्व ही गिर जाता या कहीं सन्देह उत्पन्न हो जाता था कि उसका हाथ जला कि नही तो उसकी पुन: परीक्षा होती थी ।

<u>जल का दिव्य.-</u> जल के दिव्य में न्यायाधीश एक तोरण कि,शोध्य के कान तक ऊंचा किसी जलाशय में खड़ा करता था। उस जलाशय में एक स्तम्भ-150 हाथ गाड़ कर किसी अभिजात और सच्चरित्र व्यक्ति खड़ा कर दिया जाता था । न्यायाधीश वरुण, धनुष और तीन बाणों की अर्चना चन्दन लेप आदि से

करता था । तब न्यायाधीश शोध्य को भी स्तम्भ के निकट खडे व्यक्ति के पास स्थित कर देता था। इसके उपरान्त धनुर्धर तोरण से लक्ष्य तक तीन बाण फेंकता था। जहां दूसरा बाण गिरता था, वहीं एक व्यक्ति उसे लेकर बैठ जाता था। न्यायाधीश तीन बार ताली बजाता था । तीसरी ताली के साथ ही शोध्य जल में खडे व्यक्ति की जाँघ पकड़ कर डुबकी मारता था और न्यायाधीश के समीप खडा व्यक्ति तेजी से दूसरे बाण वाले व्यक्ति के पास दौडता था और उसके वहाँ पहुंचते ही बाण वाला व्यक्ति न्यायाधीश के पास दौड़ आता था। वहां आने पर यदि शोध्य दिखाई नही देता था या केवल उसके सिर का ऊपरी भाग मात्र दिखता था तो शोध्य निर्दोष सिध्द हो जाता था यदि कहीं वह उसके कान या नाक देख लेता था या उसे अन्यत्र बहते हुए देखता था तो शोध्य अपराधी सिध्द हो जाता था।

विष का दिव्य:- विष के दिव्य में धूप आदि से महेश्वर की अर्चना कर उनके समक्ष रखे हुए विष को शोध्य खाता था । यदि उस पर विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था तो उसे निर्दोष प्रमाणित किया जाता था ।

कोष का दिव्य.- कोष के दिव्य में शोध्य के उग्र देवताओं ﴾यथा रुद्र, दुर्गा, आदित्य﴿ की चन्दन पुष्प आदि से पूजा एवं उनकी मूर्ति को जल से

अभिषिक्त किया जाता था और अभिषिक्त जल को शोध्य को पिलाकर 14 दिनों तक उसका परिणाम देखा जाता था कि उस पर कोई विपत्ति पडी की नहीं यदि उस पर कोई असाधारण विपत्ति पडती तो उसे अपराधी माना जाता था, अन्यथा वह निर्दोष प्रमाणित होता था।

तण्डुल का दिव्य:- तण्डुल के दिव्य मे शोध्य को सूर्य की मूर्ति के अभिषिक्त जल से धुला हुआ तण्डुल दिया जाता था। उसे पीपल या मूर्ज की पत्ती पर थूकना पडता है। यदि उसके थूक में रक्त पाया जाता था तो उसे अपराधी घोषित किया जाता था।

तप्तमाष का दिव्य.- तप्त माष के दिव्य मे सोलह अंगुल व्यास वाले तथा चार अंगुल गहरे ताम्र, लोहे या मिट्टी के पात्र में घृत या तेल डाल कर उसे खौलाया जाता था फिर उसमें सोने का एक मासा तौल कर टुकडा डाल दिया जाता था। शोध्य को अंगूठे एवं तर्जनी तथा मध्यमा की सहायता से उसे निकालना होता था। यदि शोध्य की अँगुलियों मे जलन नहीं होती थी तो शोध्य निर्दोष सिध्द हो जाता था।

तप्तमाष की एक दूसरी विधि में गाय के घी को तपाया जाता था और उसमें एक अंगूठी डाल कर घी से प्रार्थना की जाती थी हे घृत, आप

यज्ञों में पवित्रतम वस्तु हैं। आप अमृत है । शोध्य यदि पापी है तो उसे जलाइये, अन्यथा हिम की शीतलता प्रदर्शित कीजिये तब शोध्य अंगूठी को निकालता था यदि वह जल जाता था तो अपराधी अन्यथा निर्दोष सिध्द होता था।

फाल का दिव्य:- फाल के दिव्य में हल का फाल इतना तपाया जाता था कि वह लाल हो जाता था फिर अपराधी को उसे अपनी जीभ से चाटना पड़ता था। जल जाने पर वह अपराधी और न जलने पर निर्दोष सिध्द होता था ।

धर्म का दिव्य.- धर्म के दिव्य में धर्म और अधर्म के चित्र क्रमश: श्वेत एवं कृष्ण वर्ण के भोजपत्र या वस्त्र खण्ड पर बनाये जाते थे उनको गोबर या मिट्टी के पिण्डों में रखा जाता था फिर उन पिण्डों को मिट्टी के नये बरतन में रखा जाता था तब शोध्य कहता था-{"यदि मैं निरपराधी हूँ तो धर्म की मूर्ति या चित्र मेरे हाथों में आये"} । वह उसमें से एक पिण्ड निकालता था । धर्माधर्म के अनुसार उसके दोषी होने या निर्दोष होने का प्रमाण माना जाता था[1]।

---

1. द्रष्टव्य- डा० काणे,धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-2 ,पृ० 747-756

<u>दण्ड निर्णय</u>:- आपस्तम्ब के अनुसार राजा साक्षियों के आधार पर प्रश्न करके तथा शपथ दिलाकर अपराध पर विचार करके दण्ड देता था[1]। इससे यह स्पष्ट होता है कि अपराधी को दण्ड देने का अधिकार केवल राजा को प्राप्त था । संदेह का लाभ हमेशा अपराधी को दिया जाता था यही कारण है कि आपस्तम्ब ने कहा है कि संदेह होने पर राजा दण्ड न दे[2] । धर्मसूत्र से यह भी भासित होता है कि तत्समय न्यायाधीश अपराधी को दण्ड देते समय अपराधी की शारीरिक स्थिति, अपराध की प्रकृति ,अपराधी के वर्ण एव अपराध की संख्या का ध्यान रखते थे [3] ।

आपस्तम्ब ने अपराधी को क्षमा करने का भी उल्लेख किया है किन्तु मृत्यु दण्ड प्राप्त अपराधी को क्षमा नहीं किया जाता था । इतना ही नहीं आचार्य , ऋत्विज , स्नातक और राजा किसी अपराधी को जिसे मृत्यु दण्ड को छोड कर कोई अन्य दण्ड मिला हो क्षमा कर सकते थे[4]।

---

1. आ०ध०सू० 2/5/11/3
2. वही 2/5/11/2
3. वही 1/9/24/1-4, 2/10/27/11-13
4. आचार्य ऋत्विक्स्नातको राजेति त्राणं स्युरन्यत्र वध्यात्।।

-वही 2/10/27/21

आपराधिक विधि .- आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अपराध एव उनके लिए दिये जाने वाले दण्डों का विवरण निम्नवत् है ।

(क) बलात्कार एव व्यभिचार:- समाज मे बलात्कार एवं व्यभिचार को घृणित अपराध माना गया है । अतएव इसके लिये मृत्यु, निष्कासन, सम्पत्ति का हरण अथवा जननेन्द्रिय को काटने का दण्ड दिया जाता था ।

आपस्तम्ब का कथन है कि यदि आभूषणों आदि से अलंकृत युवक अनजान में ऐसे स्थान पर प्रवेश करता है जहाँ एक विवाहित स्त्री या विवा ह योग्य कन्या हो तो उसे डाँट कर रोकना चाहिए । यदि वह ऐसा बुरी नियत से जान बूझकर करता है तो उसे दण्ड देना चाहिए[1]। इससे यह भाषित होता है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में आपराधिक मनःस्थिति का होना दण्ड के लिए अत्यावश्यक है । अर्थात् कोई कार्य तब तक अपराध नहीं होता जब तक कि उस अपराधी व्यक्ति का आशय अपराध करना न रहा हो ।

आपस्तम्ब के अनुसार यदि कोई व्यक्ति पर स्त्री से मैथुन करता है तो उसकी जननेन्द्रिय कटवा देनी चाहिए । किन्तु यदि उसने कुमारी कन्या

---

1. अबुध्दिपूर्वमलङ्.कृतो युवा परदारमनुप्रविशन् कुमारीं वा वाचा बाध्य:।।

-आ०ध०सू० 2/10/26/18

के साथ मैथुन किया हो तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण कर उसे देश से निष्कासित कर देना चाहिए। उसके बाद ऐसी परस्त्री तथा कुमारी कन्या का मैथुन किये जाने से रक्षा तथा उनका भरण पोषण राजा का कर्त्तव्य है ।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब का मत है कि यदि प्रथम तीन उच्च वर्णों का पुरुष शूद्र वर्ण की स्त्री से मैथुन करे तो उसे देश से निकाल देना चाहिए एव यदि शूद्र वर्ण का पुरुष प्रथम तीन उच्च वर्णों की स्त्री से मैथुन करता है तो वह मृत्युदण्ड का भागी होता है।[1]

इस सम्बन्ध में हरदत्त का मानना है कि यह दण्ड उस शूद्र को दिया जाता है जो उच्चवर्ण की स्त्री का रक्षक बनाकर भेजा जाय और अवसर पाकर उसके साथ मैथुन करे, अन्यथा परस्त्री संभोग के लिये जननेन्द्रियों के कटवा लेने का दण्ड पहले उल्लिखित है ही क्योंकि गौतम के अनुसार व्दिजाति स्त्री के साथ सम्भोग करने पर शूद्र की जननेन्द्रिय कटवाकर उसकी सारी सम्पत्ति छीन ले । यदि वह शूद्र उस व्दिजाति स्त्री का रक्षक हो तो पूर्वोक्त दण्डों के अतिरिक्त उसे वध का दण्ड भी दे[2]।

---

1. नाश्य आर्यश्शूद्रायाम्। वध्यश्शूद्र आर्यायाम्।।

-आ०ध०सू० 2/10/27/8-9

2. आ०ध०सू० 2/10/27/9 पर हरदत्त की टिप्पणी

आपस्तम्ब व्दारा ब्राह्मण के लिए परस्त्री से मैथुन करने पर तीन वर्ष तक पतित के लिए विहित प्रायश्चित्त के सदृश ,प्रायश्चित्त करने का उल्लेख किया है[1]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने गुरु पत्नी के साथ मैथुन करने वाले को अण्डकोष सहित जननेन्द्रिय को काटकर अपनी अ जलि में रखकर बिना रुके दक्षिण दिशा को तब तक चलते रहने का निर्देश किया है जब तक वह गिर का मृत्यु को नहीं प्राप्त कर लेता[2]। उक्त प्रायश्चित्त के अतिरिक्त ऐसे अप-राध करने वाले व्यक्ति के लिए जलती हुयी स्त्री प्रतिमा का आलिङ्गन करके जीवन समाप्त करने का विधान किया है[3]।

---

1. सवर्णायामन्यपूर्वायां सकृत्सन्निपाते पाद: पतती त्युपदिशन्ति।।

   -आ०ध०सू० 2/10/27/11

2. गुरुतल्पगामी सवृषणं शिश्नं परिवास्याऽञ्जलावा धाय दक्षिणां दिशमनावृत्ति व्रजेत्।।

   -वही 1/9/25/1

3. ज्वलिता वा सूर्मि परिष्वज्य समाप्नुयात्।।

   -वही 1/9/25/2

(ख) हत्या :- आपस्तम्ब के अनुसार क्षत्रिय की हत्या करने वाले अपराधी को अपना पाप दूर करने के लिए एक सहस्त्र गायें एवं एक बैल दान करना चाहिए उसी प्रकार वैश्य एवं शूद्र का वध करने पर क्रमशः सौ गायों एवं एक बैल तथा दस गायों एवं एक बैल का दान करना चाहिए[1]।

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णों के वेदज्ञ विव्दान्, ब्राह्मण आत्रेयी स्त्री के हत्यारे के लिये प्रायश्चित्त स्वरूप बन में एक कुटी बनाकर वाणी को रोककर, कुण्डे के ऊपर मनुष्य की खोपडी रखकर तथा शरीर का नाभि से घुटने तक का भाग सन के वस्त्र के चौथाई भाग से आच्छादित कर रहने का एवं भिक्षा पर जीविका निर्वाह करने का विधान किया है[2]। आपस्तम्ब के अनुसार उक्त प्रायश्चित्त को बारह वर्ष तक करने के बाद यदि अपराधी चोरों के मार्ग में कुटी बनाकर रहता है और चोरों से ब्राह्मणों की अपहृत गायों को छुड़ाने का प्रयत्न कर विजय पाने पर वह पाप से मुक्त हो

---

1. क्षत्रियं हत्वा गवां सहस्रं वैरयातनार्थं दद्यात् । शतं वैश्ये । दश शूद्रे ।
ऋषभश्चात्राधिकः सर्वत्र प्रायश्चित्तार्थः ।।

- आ०ध०सू० 1/9/24/1-4

2. अरण्ये कुटिं कृत्वा वाग्यतः शवशिरध्वजो र्धशाणीपक्षमधोनाभ्युपरिजानु-न्वाच्छाद्य । सा वृत्तिः ।।

वही 1/9/24/11 एवं 16

जाता है अथवा अश्वमेघ का अवभृथ स्नान करने पर पाप दूर होता है[1]। परन्तु आपस्तम्ब ने गुरु वेदज्ञ तथा सोमयज्ञ का अन्तिम कर्म समाप्त कर लेने वाले श्रोत्रिय का वध करने वाले व्यक्ति के लिये उक्त प्रायश्चित्त को आचरण अन्तिमश्वास तक करने का विधान किया है क्योंकि उसकी मुक्ति मृत्यु से पूर्व सम्भव नहीं है[2]।

सूत्रकार के अनुसार शूद्र व्दारा किसी पुरुष की हत्या करने पर शूद्र की सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण कर उसकी हत्या करने का निर्देश देते है तथा यदि ब्राह्मण इस अपराध को करते हैं तो उसके लिए विधान किया है कि उसकी आँखों को पट्टबन्ध आदि से इस प्रकार बन्द करा देना चाहिए कि वह जीवन भर देख न सके[3] ।

<u>मानहानि</u> :- इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि यदि शूद्र प्रथम तीन वर्णों के गुणवान् व्यक्ति की निन्दा करता है या उसको अपशब्द कहता है तो शूद्र की जीभ काट लेनी चाहिए[4]।

---

1. आजिपथे वा कुटिं कृत्वा ब्राह्मणगव्यो पजिगीषमाणो वसेत्त्रि: प्रतिराध्दो पजित्य वा मुक्त:। आश्वमेधिकं वा वभृथमवेत्य मुच्यते।।
   -आ०ध०सू० 1/9/24/21-22
2. गुरु हत्वा श्रोत्रियं वा कर्मसमाप्तमेतेनैव विधिनोत्तमादुच्छ्वासाच्चरेत्। नास्यास्मिल्लोके प्रत्य पत्तिविघते।कल्मषं तु निर्हण्यते।।
   -वही 1/9/24/24-26
3. आ०ध०सू० - 2/10/27/16-17
4. जिह्वाच्छेदनं शूद्रस्याऽर्यं धार्मिकमाक्रोशत:।

चोरी :- आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे चोरी के अपराध के लिये निम्न दण्ड की व्यवस्था की है । चोर अपने केश विखेरे हुए तथा कंधे पर मूसल रखकर राजा के पास जावे और उससे अपना कर्म बतावे । राजा उस मूसल से चोर के ऊपर प्रहार करे, उससे यदि उसका वध हो जाय तो चोरी के पाप से मुक्ति हो जाती है यदि राजा उसे क्षमा कर दे तो उसका पाप क्षमा करने वाले राजा को ही लग जाता है । इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब का कथन है कि चोर स्वयं को अग्नि में झोंक दे अथवा भोजन में प्रतिदिन ह्रास करते हुए अपना जीवन समाप्त कर दे ।

फसल को नुकसान:- इस अपराध के सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि गौशाले मे बंधे हुए पशु यदि तुडाकर या गोशाले से निकलकर किसी की फसल आदि खा लें तो उन पशुओं को घेरकर, फसल का स्वामी अथवा राजा के परुष कृश बना दें किन्तु पशुओं को अत्यधिक कष्ट नहीं देना चाहिए[1]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने उन व्यक्तियों के वस्त्र के अपहरण का उल्लेख किया है जो व्यक्ति ईन्धन, जल, मूल, फूल, फल, घास, शाक आदि को जानबूझ

---

1. हित्वा व्रजमादिन· कर्शयित्पशून । नाऽतिपातयेत्।।

आ0ध0सू0 2/11/28/5-6

नुक्शान पहुंचाता है[1]।

<u>वर्णगत नियमों का उल्लंघन</u>.- वर्णगत नियमो एवं कर्त्तव्यों का उल्लंघन अपराध माना गया है और इस अपराध के लिए सूत्रकार ने दण्ड की व्यवस्था की है ।आप-स्तम्ब का कथन है कि यदि शूद्र प्रथम तीन वर्णों के पुरुषों के साथ वार्तालाप में मार्ग मे चलने में ,शय्या,पर,बैठने के आसन पर तथा अन्य कर्मों में समानता का व्यवहार करे तो उसे डण्डे से पीटने का दण्ड दिया जाना चाहिए।[2]

उक्त सन्दर्भ में आपस्तम्ब का मत है कि राजा इस प्रकार की व्यवस्था करे कि नियमों का उल्लघन न हो यदि कोई व्यक्ति वर्णगत नियमों का उल्लंघन करता है तो राजा को चाहिए , कि वह उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को एकान्त में बंधन में रखे तथा जब तक वह अपराधी यह प्रतीज्ञा न करे कि मैं नियम का पालन करूंगा तथा निषिध्द कर्मों से दूर रहूंगा तब तक उसे बन्धन में रखें । यदि वह अपराधी इस प्रकार की प्रतीज्ञा नहीं करता है तो उसे देश से निकाल देना चाहिए ।[3]

1.आ०ध०सू० 2/11/28/11-12

2. वाचि पथि शय्यायामासन इति समोभवतो दण्डताडनम्।।

-वही 2/11/28/15

3. नियमातिक्रमिणामन्यं वा रहसि बन्धयेत्। आसमापत्ते;। असमापत्तौ नाश्य:।।

व्यावहारिक विधि -

व्यावहारिक विधि के अन्तर्गत आपस्तम्ब ने दाय भाग एवं संविदा भग से सम्बन्धित विधि का निरूपण किया है ।

दाय भाग.-

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के द्वितीय पटल में दाय भाग का विवेचन किया गया है । दाय शब्द का अर्थ आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे पैतृक सम्पत्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[1]। आपस्तम्ब धर्मसूत्र से विदित होता है कि पिता जीवन काल में ही पुत्रों में सम्पत्ति विभाजित करता था[2]। तथा सम्पत्ति का विभाजन शास्त्रोक्त विधि से किये गये विवाह से उत्पन्न पुत्रों के मध्य ही किया जा सकता था[3]। पुत्र न होने पर दाय का भाग सपिण्ड को प्राप्त होता था । इससे यह भासित होता है कि पुत्रहीन व्यक्ति की विधवा पत्नी सम्पत्ति की अधि-कारिणी नहीं होती थी किन्तु आपस्तम्ब ने पुत्री को दाय का उत्तराधि-कारिणी माना है[4]।

---

1. आ0ध0सू0 2/6/2/1।

2. वही 2/6/14/1

3. सवर्णापूर्वशास्त्रविहितायां यथर्तु गच्छत पुत्रास्तेषां कर्मभिस्सम्बन्धः। दायेन वा यतिक्रमश्चोभयोः।।

-वही 2/6/13/1-2

4. पुत्राभावे य. प्रत्यासन्नः सपिण्ड.। दुहिता वा ।।

-वही 2/6/14/2,4

आपस्तम्ब के मतानुसार यदि सपिण्ड का अभाव हो तो दाय का अधिकारी आचार्य होता है, आचार्य के भी न होने पर उसका शिष्य उस दाय को ग्रहण कर मृतव्यक्ति के नाम से धार्मिक कर्मों में उस धन को लगावे अथवा स्वयं ही उस धन का उपयोग करे[1]।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब का कथन है कि यदि दाय के अधिकारी सपिण्ड और आचार्य आदि सब का अभाव होता है, तो सम्पत्ति राजा की हो जाती है[2]।

आपस्तम्ब ने अन्य आचार्यों के मत का उल्लेख किया है जिनके अनुसार सभी पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र ही दाय का उत्तराधिकारी होता है[3]। आपस्तम्ब कुछ देशों के नियम का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि ज्येष्ठ पुत्र को कुछ विशेष अंश प्राप्त होता था यथा स्वर्ण, काले रंग के गाय बैल तथा पृथ्वी से

---

1. तदभाव आचार्य आचार्याभावे ऽन्तेवासी हृत्वा तदर्थेषु धर्मकृत्येषु वोपयोजयेत्।।

-आ०ध०सू० 2/6/14/3

2. सर्वाभावे राजा दायं हरेत्।।

- वही 2/6/14/5

3. ज्येष्ठो दायाद इत्येके ।।

-वही 2/6/14/6

उत्पन्न काले रग के अनाज । इसी प्रकार रथ और काष्ठोपकरण पिता के अधि-कार में ही रहते थे तथा आभूषण तथा अपने बन्धुबान्धवों से प्राप्त धन पत्नी का अंश होता था[1]।

आपस्तम्ब को यह विचार मान्य नही है कि केवल ज्येष्ठ पुत्र ही दाय का अधिकारी हो । आपस्तम्ब ने वैवस्वत मनु के दाय विभाजन का उदाहरण देकर यही मत पुष्ट किया है कि उसने सभी पुत्रों में समान दाय भाग बाँटा[2]।

<u>संविदा-भंग</u> आपस्तम्ब धर्मसूत्र में संविदा भग के परिणामस्वरूप होने वाली हानि के लिये परितोष का उल्लेख प्राप्त होता है।सूत्रकार के अनुसार यदि कोई व्यक्ति दूसरे की भूमि कृषि कार्य हेतु लेकर उसमें कृषि कर्म नहीं करता,जिसके परि-णाम स्वरूप भूमि में फसल नहीं उत्पन्न होती तो यदि वह पुरुष धनी हो तो उससे संभावित फसल का मूल्य लेकर खेत के स्वामी को दिलाया जाय[3]।

---

1. देशविशेषे सुवर्णं कृष्णा गाव. कृष्णं भौमं ज्येष्ठस्य । रथ:पितु: परिभाण्डं च गृहे ।।

-आ०ध०सू० 2/6/14/7,8

2. "मनु. पुत्रेभ्यो दायंव्यभज"दित्यविशेषेण श्रूयते ।।

-वही 2/6/14/12

3. क्षेत्र परिगृह्योत्थानाभावात्फलाभावे यस्समृध्दस्स भावि तदपहार्य.।।

-वही 2/11/28/1

आपस्तम्ब के अनुसार यदि मजदूर अपना कार्य बीच में ही छोड दे तो उसे दण्ड स्वरूप प्रताड़ित करना चाहिए । आपस्तम्ब ने यही दण्ड उस चरवाहे के लिए भी कहा है जो बीच में ही कार्य छोड देता है [1] ।

उक्त के अतिरिक्त यदि चरवाहा बीच में ही कार्य छोड़ दे तो आपस्तम्ब ने दण्ड स्वरूप उससे दिये गये पशुओं को छीन कर दूसरे को देने का उल्लेख किया है । यदि पशुओं का रखवाला पशुओं को निगरानी करने के लिए लेकर उन्हें मर जाने दे या चोरों आदि से अपहृत हो जाने दे तो आपस्तम्ब ने दण्ड स्वरूप पशुओं का मूल्य स्वामी को देने का निर्देश किया है [2] । इससे स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में किसी कार्य को बीच में ही छोड देना अपराध है और संविदा भंग के लिए उन्होंने परितोष की व्यवस्था की है ।

---

1. अवशिन: कीनाशस्य कर्मन्यासे दण्डताडनम् । तथा पशुपस्य ।।

-आ०ध०सू० 2/11/28/2,3

2. अवरोधनं चाऽस्य पशूनाम् । पशून्मारणे नाशने वा स्वामिभ्योऽवसृजेत्।।

- वही 2/11/28/4,7

आर्थिक विचार

धर्मसूत्रों का वर्ण्य विषय मूलत. आचार, विधि, निषेध, नियम आदि का सम्यक् व्याख्यान करना ही है । धर्मसूत्र नाम से ही सर्वप्रथम धर्म की प्रधानता वोधित होती है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी इन्हीं आचार, विधि, नियमों का ही वर्णन प्राप्त होता है किन्तु इनके निरूपण में आर्थिक तत्त्वों का भी यत्र तत्र उल्लेख प्राप्त होता है, इन्हीं को सकलित करके तत्कालीन आर्थिक विचारों को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है जो निम्नवत् है ।

व्यवसाय:- आपस्तम्ब धर्मसूत्र से विदित होता है कि व्यवसाय वर्ण आधारित था । यदि कोई व्यक्ति अपने वर्ण विशेष के लिए विहित व्यवसाय से इतर व्यवसाय करते थे तो उनका सामाजिक वहिष्कार कर दिया जाता था । समाज में कृषि एवं पशुपालन मुख्य व्यवसाय था । साथ ही आपस्तम्ब धर्मसूत्र §1/6/18/18§ में प्रयुक्त शिल्पजीव शब्द से स्पष्ट है कि तत्समय कला एवं शिल्प लोगों का एक व्यवसाय था । साथ ही आपस्तम्ब धर्मसूत्र §1/6/18/21§ से चिकित्सा व्यवसाय का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।

कृषि.- भारत भूमि कृषि के लिए उत्तम रही है । यहा की जलवायु कृषि की उन्नति मे विशेष रूप से साधक हुई है । यही कारण है कि यह देश कृषि प्रधान होकर रहा है । सूत्र युग मे कृषि एक लोकप्रिय जीविकोपार्जन का साधन

था। यद्यपि कृषि वैश्य का साधारणत. कर्म माना गया है फिर भी अन्य वर्ण के व्यक्तियों को भी कृषि कर्म की अनुमति थी। यद्यपि आपस्तम्ब ने कृषि पशुपालन तथा व्यापार को वैश्य का कर्म बताया है परन्तु उन्होंने ब्राह्मण को स्वयं उत्पादित मूँज, बल्व, घास, मूल और फल के विक्रय की अनुमति दी है इससे स्पष्ट होता है कि तत्समय अन्य वर्णों को भी कृषि कर्म की कुछ प्रतिबन्धों के साथ अनुमति थी[1]।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में निम्न प्रकार के पौधों, वृक्षों एवं पुष्पों के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है।

(1) बल्बज (1/7/21/1) हरदत्त ने इसको तृण विशेष कहा है

(2) करञ्ज (1/5/17/26) हरदत्त के अनुसार यह रक्तलहसुन (प्याज) है

(3) पलण्डु (1/5/17/26) हरदत्त के अनुसार पलण्डु लहसुन है

(4) परारीक (1/5/17/26) शलजम

(5) पिप्पली (1/7/20/12)

(6) मरिच (1/7/20/12)

(7) तिल (2/7/16/22)

(8) माष (2/7/16/22)

(9) व्रीहि (2/7/16/22)

(10) यव (2/7/16/22)

---

1. आ०ध०सू० 2/5/10/8 एवं 1/7/21/1

(11) मुञ्ज (1/1/2/33,35)

(12) न्यग्रोध (1/1/2/38)

(13) पलाश (1/1/2/38)

(14) तमाल (1/1/2/37)

(15) तण्डुल (1/7/20/13)

(16) शाणी (1/1/2/40) शणस्य विकार शाणी- हरदत्त

(17) क्षौम् (7×2×2/40) क्षुमा अतसी तस्या विकार क्षौमम्- हरदत्त

(18) तोक्म् (1/7/20/12) तोक्मं ईषदकुरितानि ब्रीह्यादीनि - हरदत्त

(19) औदम्बुर (1/1/2/38)

(20) विभीतक (2/10/25/12)

भूमि व्यवस्था - आपस्तम्ब धर्मसूत्र के विवेचन से तत्कालीन भूमि व्यवस्था का परिज्ञान होता है । धर्मसूत्र में भूमि को उत्पादन क्षेत्र के रूप में माना गया है । गृह्य सूत्रों में[1] भूमि के दो प्रकार - उवर्रा एवं अनुपजाऊ भूमि का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु आपस्तम्ब धर्मसूत्र में इस प्रकार का कोई उल्लेख दृष्टि-गोचर नही होता ।

---

1. आ०गृ०सू० 1/8/12

§11§ मुन्ज §1/1/2/33,35§

§12§ न्यग्रोध §1/1/2/38§

§13§ पलाश §1/1/2/38§

§14§ तमाल §1/1/2/37§

§15§ तण्डुल §1/7/20/13§

§16§ शाणी §1/1/2/40§ शणास्य विकार शाणी- हरदत्त

§17§ क्षौम् §7×2×2/40§ क्षुमा अतसी तस्या विकार क्षौमम्- हरदत्त

§18§ तोक्म् §1/7/20/12§ तोक्मं ईषदकुरितानि ब्रीह्यादीनि - हरदत्त

§19§ औदम्बुर §1/1/2/38§

§20§ विभीतक §2/10/25/12§

<u>भूमि व्यवस्था</u>.- आपस्तम्ब धर्मसूत्र के विवेचन से तत्कालीन भूमि व्यवस्था का परिज्ञान होता है । धर्मसूत्र में भूमि को उत्पादन क्षेत्र के रूप में माना गया है । गृह्य सूत्रों में[1] भूमि के दो प्रकार - उवर्रा एवं अनुपजाऊ भूमि का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु आपस्तम्ब धर्मसूत्र में इस प्रकार का कोई उल्लेख दृष्टि-गोचर नही होता ।

---

1. आ०गृ०सू० 1/8/12

सूत्र साहित्य से स्पष्ट होता है कि भूमि पर व्यक्ति का व्यक्तिगत अधिकार होता है तथा उसे भूमि को दान देने, बेचने और पट्टे पर देने का अधिकार था। आपस्तम्ब भूमि को पट्टे पर देने के सम्बन्ध में भी वर्णन करने से नही चूके उन्होंने उल्लेख किया है कि यदि कोई व्यक्ति कृषि हेतु दूसरे का खेत लेकर उसमे खेती करने का न तो कोई यत्न करता है , उसके परिश्रम के अभाव में उस खेत से संभावित फसल नही प्राप्त होती तो वह पुरुष यदि धनी हो तो उससे सभावित फसल का मूल्य खेत के स्वामी को दिलाया जाय[1]। इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्समय भूमि कुछ निर्धारित शुल्क लेकर पट्टे पर दी जाती थी ।

पशुपालन :- पशुपालन सूत्र युग में एक महत्वपूर्ण व्यवसाय था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार पशुपालन वैश्य का प्रमुख कर्म है[2] । आपस्तम्ब धर्मसूत्र से ज्ञात होता है कि कुछ व्यक्ति धन लेकर चरवाहे का कर्म करते थे । इस सम्बन्ध में आ-पस्तम्ब धर्मसूत्र ने निम्न नियम विहित किया है । यदि चरवाह बीच में काम छोड दे तो ऐसे चरवाहे को पीटना चाहिए अथवा उसे रक्षार्थ जो पशु दिये गये हों उनका अपहरण करके उन्हे दूसरे चरवाहे को दे देना चाहिये एव यदि चरवाह

---

1. क्षेत्रं परिगृह्योत्थानाभावात्फलाभावे यस्समृध्दस्स भावि तदपहार्य:।।

-आ०ध०सू० 2/11/28/1

2. क्षत्रियवध्दैश्यस्य दण्डयुध्दवर्जं कृषिगोरक्ष्यवणिज्याऽधिकम्।।

-वही 2/5/10/8

पशुओं को मर जाने दे या चोरों आदि से अपहृत हो जाने दे तो वह उनका मूल्य स्वामी को दे[1]।

आय के साधन:- राष्ट्र के सम्बर्धन हेतु आवश्यक होता था कि राजा अपने कोश में वृध्दि करे। उत्पादित वस्तुओं से कर प्राप्त करना आय का प्रमुख श्रोत था। धर्मशास्त्रों में भांति- भांति के करों का उल्लेख हुआ है। प्राय सभी सूत्रकारों ने कर प्राप्ति का उल्लेख अपने सूत्र ग्रन्थों में किया है। बौधायन ने उत्पादन का 1/6 भाग राज्य कोश के रूप में देने का आग्रह किया है[2]। इसी प्रकार वसिष्ठ ने भी उत्पादन का 1/6 भाग राज्यकोश में कर के रूप में देने का आग्रह किया।

सामान्यत. सभी उत्पादन वस्तुओं पर कर लगाया जाता था और सभी वर्ग के लोगों को उसका भुगतान करना पडता था, किन्तु कुछ लोग कर से मुक्त भी कर दिये जाते थे। आपस्तम्ब के अनुसार श्रोत्रिय, ब्राह्मण, स्त्रियां, बालक उस समय तक जब तक उनमें युवावस्था के चिन्ह प्रकट नहीं हो जाते तथा अध्ययनार्थ गुरुकुल में निवास करने वाले, धर्म के आचरण में संलग्न तपस्वी, शूद्र, नौकर, अन्धे, गूंगे, बहरे, रोगी तथा जिन लोगों के लिये धन ग्रहण करना शास्त्र

---

1. तथा पशुपस्य। अवरोधनं चा स्य पशूनाम्। पशून्मारणे नाशने वा स्वामिभ्योऽवसृजेत्।।

 -आ0ध0सू0 2/11/28/3-4,7

2. बौ0ध0सू0 1/10/1

से निषिध्द है वे सन्यासी कर से मुक्त होते है[1] ।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्मसूत्र से विदित होता है कि कर ग्रहण के लिए तीन उच्च वर्णों के व्यक्ति ही नियुक्त किये जाते थे । इनकी योग्यता के सम्बन्ध में आपस्तम्ब का कथन है कि येह पवित्र आचरण वाले तथा सत्यवादी पुरुष होवें[2]।

<u>व्यापार:-</u> सूत्रकाल में व्यापार नि:सन्देह महत्त्वपूर्ण व्यवसाय था। धर्मसूत्रों में तीनों उच्च वर्णों के व्यक्तियों को कुछ प्रतिबन्ध के साथ व्यापार की अनुमति दी गई है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्मण आपत्ति के समय उन वस्तुओं का व्यापार कर सकता है जिनका विक्रय करना विहित है । आपस्तम्ब के अनुसार मनुष्य रस, रंग, सुगन्धि, अन्न, चमडा, गौ, लाख, जल, हरा अन्न, सुरा की तरह के पदार्थ, पीपर, मरिच, अनाज, मांस, हथियार और अपने पुण्यफल का विक्रय, ब्राह्मण के लिये वर्ज्य है[3]। उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने तिल और चावल का क्रय विक्रय ब्राह्मण के लिये विशेषरूप से वर्जित किया है[4]।इस सम्बन्ध

---

1. अकर. श्रोत्रिय । सर्ववर्णानां च स्त्रियः। कुमाराश्च प्राक् व्यञ्जनेभ्य.। ये च विद्यार्थी वसन्ति। तपस्विनश्च ये धर्मपरा:।शूद्रश्च पादावनेक्ता। अन्धमूकबधिररोगाविष्टाश्च। ये व्यर्था द्रव्यपरिग्र है.।।

 -आ०ध०सू० 2/10/26/10-17

2. वही 2/10/26/4 एव 9

3. वही 1/7/20/12

हरदत्त का कथन है कि स्वयं उगाये गये तिल और चावल के विषय में प्रतिषेध का नियम नहीं है[1]।

आपस्तम्ब ने जिन वस्तुओं को खरीदा न गया हो, जो स्वयं उत्पादित हैं - मूंज, बल्वज घास मूल और फल एवं तृणों काठ का जिनसे काट छाट कर कोई उपयोगी वस्तु न बनायी गयी है विक्रय की अनुमति दी है[2]।

विनिमय:- आपस्तम्ब धर्मसूत्र से वस्तु के विनिमय सम्बन्धी नियमों का भी पता चलता है । आपस्तम्ब ने ब्राह्मणों के लिये जिन वस्तुओं का विक्रय वर्ज्य बताया था उनके विनिमय का निषेध किया है परन्तु उन्होंने अन्न से अन्न का मनुष्यों से मनुष्यों का, रसों से रसों का, ग्रन्थों से ग्रन्थों का तथा विद्या से विद्या के विनिमय की अनुमति दी है[3] ।

---

1. स्वयमुत्पादितेषु नाऽयं प्रतिषेध ।।

-आ०ध०सू० 1/7/20/13 पर हरदत्त की टिप्पणी

2. अक्रीतपण्यैर्व्यवहरेत। मु जबल्बजैर्मूलफलै.। तृणकाष्ठैराविकृतै ।।

-आ०ध०सू० 1/7/20/16 एवं 1/7/21/1

3. अन्नेन चाऽन्नस्य मनुष्याणां च मनुष्यै रसानां च रसैर्गन्धानां च गन्धैर्विद्यया च विद्यानाम्।।

-वही 1/7/20/15

व्याज.- सूत्र ग्रन्थों में व्याज के लेन देन तथा उसके दर निर्धारण के सम्बन्ध में पर्याप्त विवेचन किया गया है । आपस्तम्ब धर्म (1/6/8/12) में वार्धुषिक शब्द का और 1/9/27/10 में वृध्दि शब्द का प्रयोग किया गया है । वौधायन धर्मसूत्र 1/3/93-94 के अनुसार वार्धुषिक वह है जो सस्ते भाव में खरीदा हुआ अन्न देकर बदले में अधिक मूल्य वाला अन्न ग्रहण करता है ।

रहन, बन्धक.- आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/6/8/20 मे आधि शब्द का प्रयोग हुआ है । आधि का तात्पर्य है चल सम्पत्ति के विषय में न्यास या अचल सम्पत्ति के विषय में बन्धक ।

इस प्रकार उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र तत्कालीन आर्थिक विचारों को कुछ अंशों में व्यक्त करता है ।

अष्टम अध्याय

उपसंहार

अष्टम अध्याय

उपसंहार

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में विवेचित धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक विचारों एव व्यक्त दार्शनिक तत्वों का समग्ररूप से निरूपण के पश्चात् सम्प्रति सिंहावलोकन के रूप में निष्कर्षो को प्रस्तुत किया जा रहा है-

प्रारम्भ के अध्याय में सूत्र साहित्य पर विचार करते हुए हम पाते हैं कि सूत्रकाल अध्ययन और चिन्तन की परम्परा का प्रतिनिधि है । भारतीय मनीषियों के लिए अपनी समृध्द परम्परा, आचार, व्यवहार एवं कर्मकाण्ड से सम्बन्धित ज्ञान को सतत् रखना एक समस्या थी, क्योंकि लेखन के अभाव में लुप्त होने की सम्भावना अधिक थी तथा वृहद् मन्त्रों को कण्ठस्थ रखना एवं शुध्दता को बनाये रखना असम्भव था । फलत॰ इन कठिनाइयों के निराकरण हेतु सूत्र साहित्य की रचना की गई ।

सूत्र साहित्य के सन्दर्भ में यह आलोचना करना की इन रचनाओं में अन्विति या अर्थ के विकास की कोई सम्भावनायें नहीं है, रचना की जटिलता इसकी सरलता को लुप्त कर देती है तथा ये अत्यधिक नीरस हैं तर्कसंगत नहीं है क्योंकि सूत्रों की इस विशिष्ट शैली के कारण ज्ञान निरन्तर अब तक अक्षुण्ण बना है ।

कल्पसूत्रों के विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ श्रौतसूत्रों का स्वरूप कर्मकाण्डीय है वहाँ गृह्यसूत्रों में गृहस्थाश्रम में गृहस्थ के व्यक्तिगत जीवन के करणीय कर्त्तव्यों का विवेचन मुख्य रूप से हुआ है । साथ ही मासिक पर्वों पर किये जाने वाले कर्मों, वार्षिक कर्मों, आभिचारिक कर्मों का भी उल्लेख है । शुल्बसूत्रों में ज्यामिति का सम्पूर्ण विषय बोध रेखा, त्रिभुज, चतुर्भुज वृत्त, प्रमेय आदि का वर्णन उपलब्ध होता है ।

धर्मसूत्रों की विवेचना से स्पष्ट होता है कि धर्मसूत्र, भारतीय धर्म के परिज्ञान के लिए अत्यावश्यक है । इतना ही नहीं धर्मसूत्र मनुष्य की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक स्थिति के आचरण का प्रतिपादन करता है । व्यक्ति के सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक और पारिलौकिक सभी पक्षों पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से विचार करता है । व्यक्ति के लिए कर्तव्यों की दिशा देता है, जीवन के लक्ष्यों को प्रदर्शित करता है ।

कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बध्द आपस्तम्ब धर्मसूत्र भी तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन को प्रतिबिम्बित करता है जिसका काल 600 ई0 पू0 से 300 ई0 पू0 के मध्य माना गया है । आपस्तम्ब के नाम से श्रौत तथा गृह्य सूत्र भी उपलब्ध होते हैं परन्तु पाश्चात्य लेखकों का मत है कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र के रचयिता पृथक- पृथक आचार्य हैं । पाश्चात्यों के

ये मत स्वीकार्य एवं विश्वसनीय नहीं हैं क्योंकि धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र तथा श्रौतसूत्रों के आन्तरिक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण कल्पसूत्र के रचयिता आपस्तम्ब ही हैं ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र तथा सभी धर्मसूत्रों का वर्ण्य विषय मूलत आचार, विचार, विधि, निषेध, नियम आदि का सम्यक् व्याख्यान करना है । धर्मसूत्र नाम से ही सर्वप्रथम धर्म की प्रधानता बोधित होती है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र भी आरम्भ में सामयाचारिक धर्मों को मुख्य प्रतिपाद्य विषय बताता है । धर्म के ज्ञाताओं की सहमति से व्यवस्थापित दैनिक आचार को सामयाचारिक धर्म कहा जाता है ।

धर्म के सम्बन्ध में आपस्तम्ब का विचार अधिक आधुनिक और व्यावहारिक है । उन्होने धर्म का मूल प्रमाण वेद को ही माना है, तथापि उसके साथ ही धर्मज्ञों की संविदा या सहमति द्वारा की गयी आचारव्यवस्था को मुख्य रूप से प्रमाण माना है परन्तु आचार के सम्बन्ध में आपस्तम्ब ने सदैव विवेक से काम लेने की सलाह दी है क्योंकि महान पुरुषों में भी कई दुर्बलताएँ होती हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि आपस्तम्ब की दृष्टि में वेद, स्मृति का अन्धानुकरण मात्र धर्म नही अपितु स्वविवेक का आश्रय लेकर उसके पक्ष एवं विपक्ष

पर सम्यक्रूपेण विचार कर आचरण क्या धर्म है ? इतना ही नही उन्होंने धर्म का आडम्बर करने वालों से सतर्क और सावधान किया है । उनका कथन है कि "दुष्टों शठों, नास्तिक, वेदज्ञानहीन व्यक्तियों के वचनों से कुपित नही होना चाहिए और उनके धोखे में नहीं पडना चाहिए " ।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब का मत है कि सदाचारी व्यक्ति जो आचरण करता है वह विश्वात्मा को प्राप्त करता है । वस्तुत आपस्तम्ब ने प्रत्येक प्रसंग मे आचरण की शुध्दता पर जोर दिया है जैसा कि आश्रम व्यवस्था के वर्णन एवं वर्णों के कर्त्तव्यों के प्रसंग में स्पष्ट किया जा चुका है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र में धर्म का स्वरूप कोरा आदर्शवादी नहीं है बल्कि नैतिकता, सदाचारिता, ज्ञानता और बौध्दिकता का समन्वय है ।

प्राचीन भारतीय धर्म, संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था पर वर्णव्यवस्था इतनी अधिक छायी हुई है कि जीवन के प्राय सभी विषयों पर वर्ण के आधार पर ही विचार किया गया है । छोटे- छोटे कर्मों में भी वर्ण-व्यवस्था के आधार पर पार्थक्य स्थापित किया गया है, जिसका कोई औचित्य

नही दिखायी पड़ता है । उदाहरण के लिए यज्ञोपवीत के समय ब्राह्मण; क्षत्रिय, वैश्य को आयु, दण्ड, आदि के अलावा भिक्षाचरण के लिए सम्बोधन का भी अलग-अलग नियम बताया गया है । और प्रायश्चित, अपराध और दण्ड, मृत्यु या जन्म-विषयक अशौच भी वर्णानुसार निर्धारित किया गया है । वर्ण का विचार नैतिक भावना के ऊपर भी हावी होता दिखाई पड़ता है । भोजन और संभाषण के शिष्टाचार आदि में भी वर्ण के विचार को प्राथमिकता दी गयी है । वर्ण - व्यवस्था की इस कठोरता के बावजूद प्राणरक्षा और जीविका निर्वाह के लिए इसके उल्लङ्घन की भी अनुमति दी गयी है, किन्तु इस बात की चेतावनी दी गयी है कि दूसरे वर्ण के कर्म करते हुए भी उस वर्ण के निन्दित आचरण न अपनाये जाय । धर्मसूत्रों के काल में वर्णव्यवस्था पूर्णावस्था पर थी । आपस्तम्ब धर्मसूत्र में तो समायाचिक धर्म की व्याख्या की प्रतिज्ञा कर पहला विवेच्य विषय वर्ण ही है ।

आपस्तम्ब ने वर्ण का आधार जन्म को माना है । इससे स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब युग में जाति व्यवस्था सुदृढ हो गयी थी तथा गुण कर्मो के अनुसार वरण किये जाने वाला वर्ण क्रमश: जन्मना जाति के रूप में परिणत हो गया था । इसी चिन्तना पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्तव्यों एवं अधिकारों का वर्णन आपस्तम्ब धर्मसूत्र में प्राप्त होता है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के विवेचन से स्पष्ट होता है कि समाज में ब्राह्मण को सर्वप्रमुख स्थान प्राप्त था तथा अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे। इतना सब होते हुए भी आपस्तम्ब की दृष्टि में उक्त विशेषाधिकार केवल योग्य ब्राह्मण के लिये ही है क्योंकि उनका कथन है कि "जो ब्राह्मण वेदाध्ययन से सम्पन्न न हो उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित न किया जाय " ।

धर्मसूत्रों का अवलोकन करते समय वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में सबसे अधिक चिन्ताजनक बिन्दु शूद्रों के प्रति उसका अन्याय और भर्त्सना से भरा हुआ दृष्टिकोण है/यद्यपि आपस्तम्ब धर्मसूत्र में शूद्रवर्ण की निम्न स्थिति का भान होता है तथापि आपस्तम्ब की दृष्टि मे शूद्र उतना घृणित न था जितना की परवर्ती युग में होता गया । आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अनेक स्थलों पर शूद्र के प्रति उदारता एवं मानवता के दर्शन होते है । आपस्तम्ब ने शूद्र का अन्न भोज्य बताया है यदि वह धार्मिक हो । इतना ही नहीं शूद्रों की विद्या को अथर्ववेद के ज्ञान का परि-शिष्ट अंश माना है तथा कहा है कि इसका ज्ञान प्राप्त करने पर ही सभी विद्याओं का ज्ञान पूरा होता है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में नारी की समाज में स्थिति अत्यन्त विचित्र थी एक तरफ उसे सर्वशक्तिमान, विद्या, शील, ममता, यश और सम्पत्ति का प्रतीक समझा गया वही दूसरी तरफ उसको हेय दृष्टि से देखा गया उसको अनेक मामलों

में आश्रित एवं परतन्त्र माना गया है । इतना सब होते हुए भी कुछ विषयों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक अधिकार एवं स्वत्व रखती थी । स्त्रियों की हत्या नहीं की जा सकती थी और न वे व्यभिचार में पकडे जाने पर त्याज्य थीं । मार्ग में उन्हें पहले आगे निकल जाने का अधिकार प्राप्त था । वे वेदज्ञ ब्राह्मणों की भांति कर से मुक्त थी । परिवार की सम्पत्ति पर पत्नी को समान अधिकार प्राप्त था तथा स्त्रियों के के ज्ञान को विद्या की अन्तिम सीमा माना गया है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्वतन्त्र रूप से केवल उपनयन, समावर्त्तन एवं विवाह संस्कारों का ही उल्लेख किया गया है । आपस्तम्ब ने उपनयन संस्कार के लिए आयु, काल इत्यादि में वर्ण के आधार पर भिन्नता स्पष्ट की है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में विवाह संस्कार का विवेचन विस्तृत एवं सार-गर्भित किया गया है । आपस्तम्ब की दृष्टि में विवाह का उद्देश्य है कि पत्नी, पति को धार्मिक कृत्यों के योग्य बनाती हैं तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा पति की नरक से रक्षा करती है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में विवाह के छ भेदों का ही उल्लेख किया गया है, जब कि सामान्यत. आठ भेद धर्मसूत्रों में वर्णित हैं । ये छ भेद हैं- ब्राह्म, आर्ष, दैव, गान्धर्व,आसुर और राक्षस । प्राजापत्य तथा पैशाचविवा

के विषय में यह धर्मसूत्र मौन है । इसका कारण सम्भवत पैशाच विवाह का धर्मशास्त्र ग्रन्थों में अत्यन्त निन्दनीय माना जाना है । जहाँ तक प्राजापत्य विवाह प्रकार का प्रश्न है ब्राह्म विवाह प्रणाली और प्राजापत्य विवाह प्रणाली में कोई विशेष अन्तर न था । यही कारण है जिससे आपस्तम्ब ने प्राजापत्य विवाह प्रणाली का उल्लेख नहीं किया है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में विवाह की पवित्रता पर जिस कारण से अत्यधिक जोर दिया गया है वह स्पष्टत यही है कि जैसा विवाह होता है, वैसा ही पुत्र होता है- "यथायुक्तो विवाहस्तथा युक्ता प्रजा भवति" 2/4/12/4 । आपस्तम्ब धर्मसूत्र में एक पत्नीत्व की प्रवृत्ति को प्रमुखता प्राप्त हुई है -"धर्मप्रजासम्पन्ने दारे नाऽन्यां कुर्वीत" 2/3/11/12

आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे नियोग को हेय ठहराया गया है जब कि गौतम, बौधायन (2/2/17/62) और वसिष्ठ नियोग को प्रशस्त मानते हैं ।

समाज के उत्थान, विकास एव पतन शिक्षा की व्यवस्था के ऊपर आधारित रहता है । सांस्कृतिक, बौध्दिक तथा वैज्ञानिक प्रगति शिक्षा की समुचित व्यवस्था अभाव में सम्भव नहीं । इसी कारण भारतीय मनीषियों ने शिक्षा की व्यापकता एवं उपयोगिता को ध्यान में रखकर उसे महत्त्व प्रदान किया है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी शिक्षा के प्रत्येक आयाम पर सम्यक्रूपेण विचार किया गया है ।

अध्ययन एक तप है अत इसके लिए वातावरण की अनुकूलता, मानसिक शान्ति एकाग्रता,पवित्रता तथा आचरण के नियमों का पालन अत्यावश्यक है इसीलिए धर्मसूत्र में विद्यार्थी के तपोमय जीवन की रूपरेखा स्पष्ट की गयी है ।

आचार्य के लिए भी उसका आचरण प्रधान होता है । अतएव आपस्तम्ब ने आचार्य के लिए अनेक नियमों की व्यवस्था की है । आचार्य के धर्मभ्रष्ट होने पर आपस्तम्ब ने उसके त्याग का विधान किया है । इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने शिष्य को विवेक से कार्य करने की सलाह दी है तथा इस प्रसंग में निर्देश दिया है यदि गुरु की आज्ञा का पालन करने से पतनीय कर्म का दोष होता है तो उस आज्ञा का पालन नहीं करना चाहिए ।

आपस्तम्ब ने शिष्य के प्रति गुरु के कर्त्तव्य को महत्त्वपूर्ण माना है उनका कथन है कि गुरुशिष्य को पुत्रवत् माने, हृदय से उसकी उन्नति की कामना करे और ईमानदारी के साथ विद्या प्रदान करे । गुरु शिष्य का किसी प्रकार से शोषण न करे । गुरु जब शिष्य को विद्या प्रदान करने में प्रमाद करता

है तो वह गुरु नही रह जाना और शिष्य को चाहिए ऐसे गुरु का त्याग कर दे।

वस्तुत आपस्तम्ब धर्मसूत्र में गुरु शिष्य सम्बन्ध जीवन के प्रमुख लक्ष्य की सिद्धि की ओर उन्मुख है । यह केवल जीविका या औपचारिकता का सम्बन्ध नही है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भोजन सम्बन्धी नियमों एवं प्रतिबन्धों के विषय मे विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है । धर्मसूत्र में भोजन की शुध्दता पर पर्याप्त जोर दिया है । इस काल तक शूद्र व्दारा स्पृष्ट भोजन अभोज्य माना जाने लगा । शिल्पियों, चिकित्सा एवं व्याज देकर जिविका निर्वाह करने वाले व्यक्तियों का अन्न भी अभोज्य था । आपस्तम्ब के अनुसार गाय तथा बैल का मास भक्ष्य था ।

आश्रम व्यवस्था हिन्दू संस्कृति का मुख्य स्तम्भ है । आश्रमों की कल्पना हमारे ऋषियों ने मान,जीवन को नियमित,संयमित एव आध्यात्मिक बनाने के लिए की है । आश्रम व्यवस्था पर आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पर्याप्त जोर दिया गया है । आश्रमों की व्यवस्था संस्कारों की आधारभूमि पर की गई है । आपस्तम्ब का कथन है कि जिस प्रकार उत्तम और अच्छी प्रकार जोते हुए खेत

में पौधों और वनस्पतियों के बीज अनेक प्रकार के फल उत्पन्न करते हैं, इसी प्रकार गर्भाधानादि संस्कारों से युक्त व्यक्ति भी फल का भागी होता है । इसी पृष्ठभूमि पर आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे चार आश्रमों का निम्नक्रम में उल्लेख प्राप्त होता है- गार्हस्थ्य, आचार्य कुल में निवास, मौन अर्थात सन्यास,वानप्रस्थ ।

इस प्रकार आपस्तम्ब व्दारा गृहस्थाश्रम का उल्लेख सर्वप्रथम किया गया है । वस्तुत गृहस्थ आश्रम की महत्ता के कारण ही गृहस्थ आश्रम का प्रथमत उल्लेख किया गया है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्रों से ज्ञात होता है कि व्यक्ति को क्रम से चारो आश्रमों में निवास करना अनिवार्य नहीं था अपितु आपस्तम्ब की धारणा थी कि कोई व्यक्ति जिस आश्रम मे रहना चाहे उसमें रह सकता था परन्तु ब्रह्मचर्याश्रम में निवास सबके लिये अनिवार्य था ।

ब्रह्मचर्याश्रम उपनयन संस्कार से आरम्भ होता है । उपनयन का मुख्य प्रयोजन विद्याग्रहण है एतदर्थ ब्रह्मचर्यावस्था का मुख्य लक्ष्य अध्ययन है । अध्ययन एक तप है अतएव इसके लिए उचित स्थान,एकाग्रता का होना अत्यावश्यक है इसी कारण से ब्रह्मचारी के जीवन को अत्यन्त व्यवस्थित,संयमित और नियमबध्द करने के लिये आपस्तम्ब ने अनेक नियम विहित किये हैं ।

गृहस्थाश्रम के वर्णन मे आपस्तम्ब ने गृहस्थ के धर्मो एवं कर्त्तव्यों की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है । इसी प्रसंग में अतिथि सत्कार को गृहस्थाश्रम का एक प्रधान कर्त्तव्य कहा है तथा अतिथि की पूजा को शान्ति और स्वर्ग की प्राप्ति का साधन माना है । अतिथि सत्कार के नियम में यह निर्देश किया गया है कि अतिथि के आने पर उठकर उसकी अगवानी करनी चाहिए और अवस्था के अनुसार उसका आदर करना चाहिए । वस्तुत: अतिथि सत्कार के पीछे हमारे शास्त्रकारों की उदात्त भावना छिपी है, दया के व्दारा मानवसमाज का सम्वर्द्धन करने की यह भारतीय परम्परा है । इसी भारतीय परम्परा से यात्रियों को एव यतियों को पर्याप्त आतिथ्य मिलता आ रहा है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में सन्यास एवं वानप्रस्थ आश्रमों की भी विस्तृत चर्चा प्राप्त होती है । सन्यास आश्रम को महत्त्वपूर्ण माना गया है ।वानप्रस्थ को केवल गृहस्थ और सन्यास आश्रमों के बीच की कडी कहा जा सकता है ।जिस प्रकार गृहस्थाश्रम के लिए ब्रह्मचर्याश्रम विशेष तैयारी का समय है उसी प्रकार सन्यास के लिए तैयारी और दीक्षा का समय है वानप्रस्थ । सन्यास नितान्त आध्यात्मिक उद्देश्य का आश्रम है । जिसका लक्ष्य है भौतिक जगत के ऐन्द्रिक सुखों से विमुख होकर इन्द्रियों और मन को वश मे करके अंतिम लक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में सर्वत्र सदाचरणों पर जोर दिया गया है। पाप और प्रायश्चित की धारणा के पीछे भी आचार के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? जब तक व्यक्ति आचार का पालन करता है तब तक समाज में वह महत्त्वपूर्ण है, यदि वह आचार का उल्लघन करता है तो उसे जीने का अधिकार नहीं, उसे पाप से तभी मुक्ति मिल सकता है जब वह प्रायश्चित्त करे, अर्थात् पाप यदि गम्भीर हो तो जीवन का अन्त कर दे, क्योंकि ऐसा व्यक्ति समाज के अन्य लोगों के लिए एक बुरा उदाहरण प्रस्तुत करेगा। उसके अतिरिक्त प्रायश्चित्त का उद्देश्य पाप से विरक्ति उत्पन्न करना है। अर्थात् प्रायश्चित्त का भय दिखाकर पाप से दूर करने का उपाय किया जाय। परन्तु प्रायश्चित्त के विषय मे सूत्रकार की धारणायें कुछ असंगतिपूर्ण है प्रायश्चित्त के ऊपर भी वर्ण का विचार हावी है। ब्राह्मण की हत्या करने वाला मृत्यु का भागी होता है। किन्तु शूद्र का वध करने वाला 10 गायें तथा एक बैल का दान करके मुक्त हो जाता है।

धर्मसूत्रों का अनिवार्य विषय राजधर्म भी आपस्तम्ब का विवेच्य विषय रहा है। उन्होंने राजा के कर्त्तव्यों एवं अधिकारों की विस्तृत समीक्षा की है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र से लोकव्यवस्था जनतांत्रिक प्रतीत होती है।

राजा निरंकुश नही है,अपितु वह धर्म के लिए ब्राह्मण पर या योग्य विधि-वेत्ताओं पर निर्भर है । न्याय-व्यवहार की व्यवस्था और प्रक्रिया तो बहुत ही जनतांत्रिक है और दण्ड देने के प्रत्येक पहलू पर विचार किया गया है । न्याय हो अन्याय न हो यही दण्डव्यवहार का लक्ष्य बार- बार दुहराया गया लगता है । साक्षी के सत्यभाषण पर बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है ।

उक्त के अतिरिक्त आपस्तम्ब ने नैतिक नियमों की रक्षा तथा धर्म का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देना राजा का धर्म माना है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अपराध एवं उनके लिए दिये जाने वाले का दण्डों का सुविस्तृत वर्णन प्राप्त होता है । उक्त के अतिरिक्त दायभाग का विवेचन भी आपस्तम्ब ने किया है । आपस्तम्ब के अनुसार, पिता अपने जीवन-काल में ही पुत्रों को समान दाय भाग दे देवे,परन्तु क्लीव उन्मत्त और पतित पुत्र को दाय अंश नहीं देना चाहिए । पुत्र के अभाव में सपिण्ड दाय का अधि-कारी होता था अथवा पुत्राभाव में पुत्री दाय की अधिकारिणी होती थी । आपस्तम्ब ने वैवस्वत मनु के दाय विभाजन का उदाहरण देकर यही मत पुष्ट किया है कि उसने सभी पुत्रों में समान भाग बाँटा है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्रों का वर्ण्य विषय मूलत. आचार, विधि निषेध

नियम आदि का सम्यक् व्याख्यान करना ही है किन्तु इनके निरूपण में आर्थिक तत्त्वों का भी यत्र तत्र उल्लेख प्राप्त होता है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र से विदित होता है कि व्यवसाय वर्ण आधारित था । यदि कोई व्यक्ति अपने वर्ण विशेष के लिए विहित व्यवसाय से इतर व्यवसाय करते थे तो उनका सामाजिक वहिष्कार कर दिया जाता था । समाज में कृषि एवं पशुपालन मुख्य व्यवसाय था । आपस्तम्ब धर्मसूत्र काल में कृषि को प्रचुर महत्त्व प्राप्त था । कृषि कार्य हेतु पट्टे पर भूमि देने का उल्लेख प्राप्त होता है जिससे स्पष्ट होता है भूमि पर स्वामित्व एवं काश्तकारी रूप बहुत कुछ स्थिर हो गया था । इसी प्रकार मजदूरों की या चरवाहों को दी गयी प्रताडना से यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज में सामन्तवादी व्यवस्था का बीजारोपण हो गया था ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अनेक दार्शनिक विचारों को यथा-आत्मतत्त्व का स्वरूप, आत्मतत्त्व की व्यापकता, आत्मतत्त्व के लक्षण, स्वर्ग एवं मोक्ष का स्वरूप इत्यादि को प्रथम प्रश्न के आठवें पटल में अभिव्यक्त किया गया है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में जिन उक्त दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत किया गया है वे पूर्णतया उपनिषदों से प्रभावित हैं । सूत्रकार का अपना कोई पृथक्

सिध्दान्त विकसित होकर प्रकाश में नही आ सका । दूसरे शब्दों में ग्रन्थ के अन्तर्गत उपनिषदों से भिन्न कोई अन्य मान्यता का उल्लेख नही हुआ है ।

इस प्रकार उक्त के आलोक में यह कहना असगत नही होगा कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र की उपादेयता वर्तमान युग में भी प्रासगिक है । यह भौतिकवादी दृष्टिकोण से संत्रस्त मानवता के लिए आत्मिक शान्ति और सुख का बोध कराने में समर्थ है । इसमें वर्णित नैतिक मूल्य बदलते परिवेश तथा बदलते हुई युगधारा में भी मनुष्य की अस्मिता के अवबोध में समर्थ हैं ।

सहायक ग्रन्थ सूची

1- अथर्ववेद संहिता - संपादक - श्रीपाद दामोदर सातवलेकर हिन्दी भाष्य 1950

2- आदर्श संस्कृत हिन्दी कोश- डा० राम स्वरूप रसिकेश, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी ।

3- आपस्तम्ब श्रौतसूत्र- रुद्रदत्त (भाष्य सहित) चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी 1971

4- आपस्तम्ब गृह्य सूत्र- श्री हरदत्त मिश्र प्रणीत अनाकुला वृत्ति-श्री सुदर्शनाचार्य प्रणीत तात्पर्य दर्शन व्याख्या सहित- चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी 1971

5- आपस्तम्ब धर्मसूत्र- श्री हरदत्त प्रणीत उज्ज्वला वृत्ति सहित चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी 1983

6- ऋग्वेद संहिता- सम्पादक पं० राम गोविन्द शुक्ल बनारस 1990

7- ऋग्वेद संहिता- रामगोविन्द त्रिवेदी कृत हिन्दी भाष्य चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी

8- काशिका वृत्ति- सम्पादक- आर्येन्द्र शर्मा चौखम्भा विद्या भवन ग्रन्थमाला बनारस 1988

9- कृत्य कल्पतरु- गृहस्थ काण्डम्- लक्ष्मीधर भट्ट ओरियण्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा

10- कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता- सायण भाष्य आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली

11- गौतम धर्मसूत्र- गोविन्द स्वामी प्रणीत विवरण सहित-चौखम्भा संस्कृत संस्थान 1983

12- चतुर्वर्ग चिन्तामणि- काशी संस्कृत ग्रन्थमाला सं0 235 वाराणसी 1986

13- छान्दोग्य उपनिषद्- गीताप्रेस गोरखपुर

14- धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 1 से 5- डा0 पी0वी0काणे अनुवादक-अर्जुन चौबे काश्यप हिन्दी समिति लखनऊ

15- धर्मकोश- लक्ष्मण शास्त्री जोशी- चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी 1971

16- धर्मद्रुम- राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय- चौखम्भा विश्व भारती वाराणसी 1989

17- निरुक्त- भगीरथ शास्त्री हिन्दी भाष्य दिल्ली 1963

18- पाणिनिकालीन भारतवर्ष - डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल मोती लाल बनारसीदास

19- प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की एक झलक- नारायण प्रसाद बलूनी

20- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास- डा0जयशंकर मिश्र-बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी 1980

21- प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन- डा0 लक्ष्मी दत्त ठाकुर,हिन्दी समिति लखनऊ 1965

22- बृहदारण्यक उपनिषद्- गीताप्रेस गोरखपुर

23- बोधायन श्रौत सूत्र- डा0 गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ-इलाहाबाद

24- बोधायन धर्मसूत्र- गोविन्द स्वामी प्रणीत विवरण सहित, चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी 1971

25- बीस स्मृतियां- (भाग 1 एवं 2)- सं0 पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य; संस्कृति संस्थान ख्वाजा कुतुब बरेली 1968

26- ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य, सत्यानन्दी दीपिका सहित-गोविन्द मठ टेढी नीम वाराणसी- सम्वत् 2040

27- भारतीय दर्शन- आचार्य बलदेव उपाध्याय- चौखम्भा ओरियन्टालिया 1979

28- मनुस्मृति- सार्वदेशिक प्रेस दरियागंज दिल्ली- सम्वत् 2016

29- याज्ञवल्क्य स्मृति- मिताक्षरा टीका नाग पब्लिकेशन दिल्ली 1985

30- वेदों का यथार्थस्वरूप- प0 धर्मदेव विद्यावाचस्पति विद्या मार्तण्ड गु0कां0वि0 विद्यालय 1960

31- वेद रहस्य- श्री अरविन्द- अनुवादक आचार्य अभयदेव विद्यालंकार 1960

32- वैदिक साहित्य का इतिहास- आचार्य बलदेव उपाध्याय- 1970

33- वासिष्ठ धर्मसूत्र- ए0ए0फ्यूरर बम्बई संस्कृत सीरीज पूना 1930

34- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी 1967

35- श्रीमद्भगवत गीता- गीताप्रेस गोरखपुर

36- शतपथ ब्राह्मण- अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय वाराणसी सं0 1994

37- षड्दर्शन रहस्य- प0 रङ्गनाथ पाठक, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्- पटना 1958

38- स्मृतीनां समुच्चय - आनन्दाश्रम 1905

39- सर्वदर्शन समन्वय- डा0 गोपाल शास्त्री- लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली

40- सामवेद संहिता- सं0 पं0 रामस्वरूप शर्मा हिन्दी भाष्य बनारस 1962

41- संस्कार पध्दति- भास्कर शास्त्री आनन्दाश्रम 1924

42- संस्कार प्रकाश- चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी 1971

43- संस्कृत साहित्य का इतिहास- बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन रवीन्द्रपुरी दुर्गाकुण्ड,वाराणसी 1972

44- संस्कृत हिन्दी कोश- वामन शिवराम आप्टे, मोती लाल बनारसीदास, वाराणसी

45- संस्कृत भाषा एव साहित्य का संक्षिप्त इतिहास- डॉ0टी0जी0माईणकर, राष्ट्रिय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्

46- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास-डा0 कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान,इलाहाबाद

47- इण्डिया ऑफ वैदिक कल्प सूत्राज- राम गोपाल, मोतीलाल बनारसीदास 198

48- सम आस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर 1974

49- हिस्ट्री ऑफ एन्शियन्ट संस्कृत लिटरेचर, इलाहाबाद 1912

50- दि सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट भाग-2, मोतीलाल बनारसीदास 1986

51- धर्मसूत्राज- स्टडी इन देयर ओरीजन एण्ड डेवलपमेन्ट-,सुरेश चन्द्र बनर्जी पन्थी पुस्तक कलकत्ता 1962